जातक

[द्वितीय खण्ड]



अनुवादक
भदन्त आनन्द कौसल्यायन

ी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

जातक

[द्वितीय खण्ड]

जातक

(द्वितीय खण्ड)

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

शक १९०७ : सन् १९८५

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

प्रकाशक : प्रभात मिश्र शास्त्री
प्रधानमंत्री : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

द्वितीय संस्करण : ११००

मूल्य : ७५.०० मात्र

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
१३, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने जातक के द्वितीय खण्ड का प्रकाशन संवत् २०१४ में किया था। इस अनुवाद के माध्यम से जिज्ञासु पाठकों ने जातक के बौद्ध साधना, संस्कृति और आख्यान का आस्वाद प्राप्त किया है। स्वाधीन भारत में बौद्ध-साहित्य के गहन अध्ययन में अध्येता प्रवृत्त हुए हैं और जातकों की कथाओं ने सहृदय पाठकों एवं सुधी विद्वानों को आकृष्ट किया है। अतएव जातक के सभी भागों का पुनर्मुद्रण किया जा रहा है। जातक का द्वितीय खण्ड सुधी पाठकों और तत्त्वान्वेषी विज्ञजनों की ज्ञान-तृप्ति हेतु प्रस्तुत करते हुए हम प्रसन्नता एवं गौरव का अनुभव करते हैं।

डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल
साहित्य मंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

विजयादशमी
संवत् २०४२ वि०

प्राक्कथन[1]

जातक के प्रथम खण्ड की वस्तु-कथा में २३-८-४१ को लिखा था—"प्रथम खण्ड में जातकट्ठकथा की निदान कथा और सौ कथाएँ हैं। दूसरे खण्ड में (जो प्रेस में है) दो सौ कथाएँ रहेंगी। इस प्रकार प्रथम दो खण्डों में तीन सौ कथाओं का समावेश हो जायेगा।" उक्त कथन के दस महीने बाद आज हमें जातक (द्वितीय खण्ड) को प्रकाशित होते देख विशेष प्रसन्नता हो रही है। पाठकों ने प्रथम खण्ड का जो स्वागत किया और विद्वानों ने उसकी जो समालोचना की है, उसने हमें उत्साहित किया। हमें आशा थी कि हम इससे भी पहले इस खण्ड को प्रकाशित देख सकेंगे। किन्तु युद्ध के कारण मुद्रण साधनों की कठिनाइयाँ, विशेषकर कागज का अभाव, कुछ इतना बढ़ गया कि जातक के द्वितीय खण्ड के प्रकाशन के लिए हमें सम्मेलन के साहित्य मन्त्री श्री रामचन्द्र जी टण्डन के विशेष परिश्रम का कृतज्ञतापूर्ण उल्लेख करना ही पड़ रहा है। पुस्तक का बड़ा अंश छप चुकने के बाद जातक के लिए कागज की एकदम कमी पड़ गयी, उसे श्री टण्डन जी ने ही अपनी प्रत्युत्पन्नमति से दूर किया। खर्च अधिक पड़ा किन्तु जातक हर दृष्टि से प्रथम खण्ड जैसा ही मुद्रित हुआ। हाँ, पहले इस द्वितीय खण्ड में जहाँ दो सौ कथाएँ देने का विचार था, पीछे डेढ़ सौ कथाएँ देना ही उचित जँचा। दो सौ कथाएँ देने से द्वितीय खण्ड बहुत ही बड़ा हुआ जा रहा था।

चित्र, विषय-सूची आदि सब कुछ प्रथम खण्ड की ही तरह है। प्रथम खण्ड के चित्र के लिए हम जातक के अंग्रेजी अनुवाद तथा द्वितीय खण्ड के चित्र के लिए श्री ए० फुशेर की 'बुद्धिस्ट आर्ट' के ऋणी हैं।

आ० धर्म्मानन्द जी कोसम्बी ने इस द्वितीय खण्ड को भी प्रथम खण्ड की तरह लगभग सारा-का-सारा सुन लिया है। उनकी यह कृपा सदा बनी रहे।

मूलगन्ध-कुटी विहार
सारनाथ
११-६-४२

आनन्द कौसल्यायन

---

१. जातक द्वितीय खण्ड के प्रथम संस्करण का प्राक्कथन।

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ

बिषय पृष्ठ

●

पहला परिच्छेद

११. परोसत वर्ग

१०१. परोसत जातक

परोसतञ्चेपि समागतानं
झायेयुं ते वस्ससतं अपञ्ञा,
एकोव सेय्यो पुरिसो सपञ्ञो
यो भासितस्स विजानाति अत्थं ॥

[प्रज्ञाहीन शताधिक आये-हुए मनुष्य यदि सौ वर्ष तक भी ध्यान लगाते रहें तो उनकी अपेक्षा एक प्रज्ञावान् मनुष्य जो कही हुई बात के (गम्भीर) अर्थ को जान लेता है, अच्छा है।]

कथा की दृष्टि से, व्याख्या (व्याकरण) की दृष्टि से, सारांश की दृष्टि से यह जातक (कथा) परोसहस्स जातक[1] के समान ही है। इसमें केवल 'ध्यान करें' पद की विशेषता है। जिसका अर्थ है कि प्रज्ञा रहित मनुष्य सौ वर्ष भी ध्यान करते रहें, देखते रहें, धारण करते रहें; इस प्रकार देखते हुए भी वह गूढ़ (अर्थ) को अथवा (असली) बात को नहीं देख पाते। इसलिए जो मनुष्य कही बात के अर्थ को जानता है वह प्रज्ञावान् अकेला ही अच्छा है।

---

[1] परोसहस्स जातक (९९)।

१०२. पण्णिक जातक

"यो दुक्ख फुट्ठाय भवेय्य ताणं. . ." आदि (की कथा) शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक दुकानदार उपासक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती-निवासी उपासक नाना प्रकार की जड़ी-बूटी तथा लौकी-कद्दू आदि बेच कर गुजारा करता था। उसकी एक लड़की थी। रूपवान्, सुन्दर, सदाचारिणी तथा लज्जा-भय से युक्त; (लेकिन साथ ही) सदा हँसती रहती थी। बराबरी के कुल वालों के लड़की को ब्याहने आने (की इच्छा करने) पर, वह सोचने लगा--"इसकी शादी होगी। यह सदैव हँसती रहती है। कँवारपन को नष्ट करके यदि कुमारी दुसरे कुल में जाती है, तो माता पिता के लिए निन्दा का कारण होती है। मैं इसकी परीक्षा करूँगा कि इसका कँवारपन सुरक्षित है कि नहीं ?"

एक दिन उसने लड़की से टोकरी उठवा, पत्तों के लिए जंगल में जाकर, उसकी परीक्षा करने की इच्छा से, कामासक्त की भाँति हो, गुप्त बात कह उसे हाथ से धर लिया। जैसे ही उसे पकड़ा उसने रोते-चिल्लाते हुए कहा--"तात! यह नामुनासिब हैं; यह पानी से आग निकलने के सदृश है। ऐसा न करें।"

"अम्म! मैंने केवल परीक्षा करने के लिए ही तुझे हाथ से धरा था। अब, बता कि तेरा कँवारपन (सुरक्षित) है या नहीं ?"

"हाँ तात! है। मैंने राग के वशीभूत हो किसी भी पुरुष की ओर नहीं देखा।"

उसने लड़की को आश्वासन दे, घर ले जा, विवाह करके पराये कुल भेजा। (फिर) शास्ता की वन्दना करने की इच्छा से, गन्ध-माला आदि हाथ में ले, जेतवन पहुँच, शास्ता की वन्दना तथा पूजा करके एक ओर बैठा।

"चिरकाल के बाद आये ?" पूछे जाने पर उसने भगवान् को वह सब हाल कहा। शास्ता ने "उपासक ! कुमारी तो चिरकाल से सदाचारिणी है ! लेकिन तूने न केवल अभी किन्तु, पहले भी उसकी परीक्षा की है', कह पूर्वजन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व जंगल में वृक्ष-देवता होकर उत्पन्न हुए। उस समय वाराणसी में एक दूकानदार उपासक था. . . इत्यादि कथा वर्तमान कथा के सदृश ही है। हाँ, परीक्षा करने के लिए उसने जब लड़की को हाथों से धरा, तो लड़की ने रोते-रोते यह गाथा कही—

यो दुक्खफुट्ठाय भवेय्य ताणं
सो मे पिता दूभि वने करोति,
सा कस्स कन्दामि वनस्स मज्झे
यो तायिता सो सहसा करोति ।।

[कष्ट में पड़ने पर, जिसे त्राता होना चाहिए, वही मेरा पिता जंगल में विश्वास-घात कर रहा है। सो मैं जंगल में किसे (सहायता के लिए) बुलाऊँ ? जो त्राता है, वही दुस्साहस कर रहा है ।]

यो दुक्खफुट्ठाय भवेय्य ताणं का अर्थ है कि जो शारीरिक अथवा मानसिक दुःख से पीड़ित का त्राण करता है, परित्राण करता है तथा प्रतिष्ठा का कारण होता है। **सो मे पिता दूभि वने करोति** का अर्थ है कि वह दुःख से परित्राण करनेवाला मेरा पिता ही यहाँ इस प्रकार का मित्र-द्रोही कर्म करता है, अपनी निज की पुत्री (के शील) को ही लाँघना चाहता है। **सा कस्स कन्दामि** का मतलब है कि किसके पास रोऊँ ? कौन मुझे बचायेगा ? **यो तायिता सो सहसा करोति**, का अर्थ हुआ कि जो पिता मेरा त्राता है, रक्षक है, आश्रयदाता होने योग्य, वह पिता ही दुस्साहस कर रहा है ।

तब पिता ने उसे अश्वासन देकर पूछा—"अम्म ! तूने अपने आप को सुरक्षित तो रखा है?"

"हाँ, तात ! मैंने अपने आपको (सँभाल कर) रखा है।"

उसने उसे घर ले जा विवाह कर, पराये कुल भेज दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना सुना, (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाया। सत्यों (के प्रकाशन) के अंत में उपासक स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय का पिता ही इस समय का पिता; लड़की ही इस समय की लड़की है। लेकिन उस बात को प्रत्यक्ष देखनेवाला वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

⊙

१०३. वेरी जातक

"यत्थ वेरी निवसति . . ." आदि गाथा शास्ता ने जेतवन में रहते समय अनाथपिण्डिक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथपिण्डिक ने अपने भोग-ग्राम[1] से लौटते हुए रास्ते में चोरों को देखकर सोचा—"रास्ते में रहना ठीक नहीं। श्रावस्ती ही जाकर रहूँगा।" यह सोच जल्दी-जल्दी बैलों को हाँक, श्रावस्ती पहुँच, अगले दिन जब विहार गया, तो शास्ता को यह बात कही। शास्ता ने "गृहपति ! पूर्व समय में भी पण्डित-जन रास्ते में चोरों को देखकर रास्ते में न ठहर, अपने रहने के स्थान पर ही चले गये" कह उसके पूछने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व महासम्पत्तिशाली सेठ होकर पैदा हुआ। एक गाँव में निमन्त्रण खाकर लौटते समय रास्ते में चोरों को देख वहाँ नहीं ठहरा। जल्दी-जल्दी बैलों को हाँक, अपने घर ही आकर नाना प्रकार के श्रेष्ठ रसों से युक्त भोजन करके महाशय्या पर लेटा। उस समय 'चोरों के हाथ से निकलकर भयरहित स्थान अपने घर पर आ गया हूँ' सोच, उल्लासपूर्वक यह गाथा कही—

यत्थ वेरी निवसति न वसे तत्थ पण्डितो,
एकरत्तं द्विरत्तं वा दुक्खं वसति वेरिसु ॥

[जहाँ पर वैरी का निवास हो, पण्डित आदमी को चाहिए कि वहाँ निवास

---

१. भोगग्राम = जमींदारी का ग्राम।

न करे । क्योंकि वैरी के साथ एक या दो रात्रि रहने वाला भी दुःख ही भोगता है ।]

वेरी, वैर-भाव से युक्त आदमी । **निवसति,** प्रतिष्ठित रहता है । **न वसे तत्थ पण्डितो,** जहाँ वह वैरी आदमी प्रतिष्ठित होकर रहता है, पांडित्य से युक्त पण्डित-जन को चाहिये कि वहाँ न रहें । किस कारण से ? **एकरत्तं द्विरत्तं व दुक्खं वसति वेरिसु,** वैरियों के बीच में (केवल) एक या दो दिन रहता हुआ भी दुःख ही भोगता है ।

बोधिसत्त्व इस प्रकार हर्ष-ध्वनि करके दान-आदि पुण्य-कर्म कर यथाकर्म (परलोक) सिधारे । शास्ता ने इन धर्म-देशना को ला, जातक का मेल बैठाया कि उस समय मैं ही वाराणसी का सेठ था ।

⊙

१०४. मित्तविन्द जातक

"**चतुब्भि अट्ठज्झगया**" आदि शास्ता ने जेतवन में रहते समय, एक दुर्भाषी भिक्षु के बारे में कही ।

क वर्तमान कथा

पहले आयी **मित्तविन्द जातक** की कहानी के सदृश ही यह कहानी भी जाननी चाहिए ।

ख. अतीत कथा

लेकिन यह जातक कथा है काश्यप-सम्बुद्ध के समय की । उस समय एक नरक-निवासी ने, जिसके सिर पर घूमनेवाला चक्र[1] था और जो नरक में जल रहा था, बोधिसत्व से पूछा--"भन्ते ! मैंने क्या पापकर्म किया है ?" बोधिसत्व ने "तूने अमुक और अमुक पापकर्म किया है" कह यह गाथा कही--

चतुब्भि अट्ठज्झगमा अट्ठाहिति च सोळस
सोळसाहि च बत्तिस अत्रिच्छं चक्कमासदो;
इच्छाहतस्स पोसस्स चक्कं भमति मत्थके ॥

(चार से आठ, आठ से सोलह, और सोलह से बत्तीस की इच्छा करने के कारण यह सिर पर घूमनेवाला चक्र प्राप्त हुआ । क्योंकि इच्छा (लोभ) से ताड़ित मनुष्य के सिर पर चक्र भ्रमता है ।)

---

१. उरचक्र—पालि कोष में (रीजडेविड्स ने) उर-चक्र का अर्थ छाती पर रखा लोहे का चक्र किया है, जो यथार्थ नहीं । 'उर' शब्द वैदिक है, जिसका अर्थ है गतिमान ।

चतुब्भि अट्ठज्झगमा, समुद्र में चार परियों (विमान-प्रेतनियों) को पाकर, उनसे सन्तुष्ट न हो, लोभ के कारण और आठ को प्राप्त किया। शेष दो पदों का अर्थ भी इसी प्रकार है। **अत्रच्छं चक्कमासदो** इस प्रकार स्वकीय लाभ से असन्तुष्ट इस-इस चीज़ की प्राप्ति होने पर, और-और चीज़ की इच्छा करते हुए, अब इस उर-चक्र को प्राप्त हुए। उसके इस प्रकार **इच्छाहतस्स पोसस्स** से प्रताड़ित तेरे **चक्कं भमति मत्थके**, पत्थर तथा लोहे के दो प्रकार के चक्रों में से तेज़ धार वाला लोहे का चक्र, फिर-फिर उसके माथे पर गिरने से ऐसा कहा गया।

यह कहकर (बोधिसत्व) स्वयं देवलोक को गये। वह नरकगामी प्राणी भी अपने पापकर्मों के क्षीण होने पर कर्मानुसार अवस्था को प्राप्त हुआ। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला जातक का मेल बैठाया--उस समय मित्र-विन्दक (अब का) दुर्भाषी भिक्षु था, और देवपुत्र तो मैं ही था।

१०५. दुब्बलकट्ठ जातक

"बहुम्पेतं वने कट्ठं" आदि शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक भयभीत भिक्षु के बारे में कहीं।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती-निवासी तरुण, शास्ता का धर्मोपदेश सुन, प्रव्रजित हो मरने से भयभीत रहता था। रात या दिन में हवा के चलने पर, सूखी-डण्ठलों के गिरने पर तथा पक्षियों या चौपायों के कुछ शब्द करने पर, मरण-भय से डरकर वह ज़ोर से चिल्लाता हुआ भागता। 'मुझे भी मरना होगा', इसका उसे ध्यान तक न था। यदि वह यह जानता कि "मैं मरूँगा" तो उसे मरने से डर न लगता। वह मरण-स्मृति योग-विधि (=कर्मस्थान) का अनभ्यासी होने से ही डरता था। उसकी मृत्युभय से भयभीत होने की बात भिक्षु-संघ को पता लग गयी। सो एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बात चलायी—आयुष्मानो! अमुक मरण-भीरु भिक्षु मृत्यु से डरता है। भिक्षु को तो चाहिए कि वह 'मुझे अवश्य ही मरना है' इस मरण-स्मृति कर्मस्थान की भावना करे। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओं! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "यह बातचीत" कहने पर भगवान् ने उस भिक्षु को बुलवाया और पूछा—क्या तुझे सचमुच मरने से डर लगता है?

"भन्ते! सचमुच।"

"भिक्षुओं! इस भिक्षु से असन्तुष्ट मत होओ। यह भिक्षु केवल अब ही मरने से भयभीत नहीं है; पहले भी भयभीत ही रहा है" कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व हिमालय में वृक्ष-देवता की योनि में उत्पन्न हुए। उस समय वाराणसी-नरेश ने

हस्ति-शिक्षकों को अपना हाथी दिया था ताकि वे उसे निर्भय बनावें। उन्होंने भाले ले, हाथी को पक्की तरह से खूँटे से बाँध, उसे घेर, उसका डर निकालना शुरू किया। इस पीड़ा को न सह सकने के कारण हाथी ने खूँटा तुड़ा, मनुष्यों को भगा, स्वयं हिमालय में प्रवेश किया। आदमी उसको न पकड़ सकने के कारण वापिस लौट आये। हाथी को वहाँ मरण-भय लग गया। वायु के शब्द को सुनकर, काँपता हुआ, मरने के भय से भयभीत अपनी सूँड़ को धुनता हुआ ज़ोर से भागता। उसको ऐसा लगता था जैसे खूँटे पर बाँध कर साधा जा रहा हो। शरीर-सुख वा मानसिक सुख एक भी नहीं मिलता था। काँपता हुआ भटकता था। वृक्ष-देवता ने यह देखकर वृक्ष की शाखा पर खड़े होकर यह गाथा कही—

बहुम्पेतं वने कट्ठं वातो भञ्जति दुब्बलं,
तस्स चे भायसि नाग! किसो नून भविस्ससि ॥

[जंगल में हवा से बहुत सारी दुर्बल लकड़ी टूटकर गिरती है। हे नाग! यदि तू इससे डरेगा, तो तू निश्चय से कमज़ोर हो जायगा।]

एतं दुब्बलं कट्ठं, पुरवा आदि **वातो भञ्जति**, यह इस जंगल में बहुत सुलभ जहाँ-तहाँ है, यदि तू उससे **भायसि**, तो ऐसा होने पर तो नित्य ही भयभीत रहने के कारण रक्त-मांस क्षीण होकर **किसो नून भविस्ससि**; इस वन में तेरे भयभीत होने की बात है ही नहीं, इसलिए अब से मत डर।

इस प्रकार देवता ने उसे उपदेश दिया। वह भी उस समय से लेकर निर्भीत हो गया। शास्ता ने इस धर्मोपदेश को ला, चारों आर्य- (सत्यों) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्य प्रकाशित होने पर वह भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय हाथी तो यह भिक्षु था, वृक्ष-देवता मैं ही था।

●

१०६. उदञ्चनि जातक

"**सुखं वत मं जीवन्तं**" आदि शास्ता ने जेतवन में रहते समय 'प्रौढ़ कुमारी के साथ आसक्ति' के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

मूल कथा (=वस्तु) तेरहवें परिच्छेद की **चूल नारद काश्यप**[1] जातक में आयेगी। उस भिक्षु से शास्ता ने पूछा—"भिक्षु! क्या तू सचमुच आसक्त है?"

"भगवान्! सचमुच।"

"तुझे किसमें आसक्ति हुई?"

"एक प्रौढ़ कुमारी में।"

"भिक्षु! यह तेरे लिये अनर्थकारी है। पहले जन्म में भी तू इसी के कारण सदाचार भ्रष्ठ हो काँपता हुआ भटकता था। (फिर) पण्डितों के कारण सुख को प्राप्त हुआ" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ग. अतीत कथा

"पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय" आदि पूर्व समय की कथा भी **चुल्ल नारद काश्यप** जातक में ही आयेगी। उस समय बोधिसत्व शाम को फल-फूल ले आकर पर्ण-शाला में प्रवेश करके विचरने लगे और अपने पुत्र चुल्ल तापस को कहा—

"तात! और दिन तो तुम लकड़ी लाते थे, पेय तथा खाद्य-सामग्री लाते थे, आग जलाते थे। आज क्या कारण है कि कोई भी काम न करके बुरा मुँह बनाये चिन्तित पड़े हो?"

---

१. **चूलनारदजातक** (४४७)

"तात ! आप जब फल-फूल लेने चले गये थे, तब एक स्त्री आयी जो मुझे लुभा कर ले जाना चाहती थी। लेकिन मैं 'आपसे आज्ञा लेकर जाऊँगा' सोच नहीं गया। उसको अमुक स्थान में बिठा कर आया हूँ। तात ! अब मैं जाता हूँ।"

बोधिसत्व ने 'यह रोका नहीं जा सकता' सोच "तो तात ! जाओ ! यह तुम्हें ले जाकर जब मत्स्य-मांस आदि खाने की इच्छा करेगी और घी, नमक तथा तेल आदि माँगेगी और कहेगी कि 'यह ला,' 'यह ला', तब तू मुझे याद करना और भागकर यहीं आ जाना" कह चलता किया। वह उसके साथ बस्ती गया। उसे अपने वश में कर वह 'मांस ला', 'मछली ला' जो-जो चाहती, मँगाती तब उसने 'यह तो मुझे गुलाम की तरह नौकर की तरह पीड़ा देती है' सोच भागकर पिता के पास आ, उन्हें प्रणाम कर, खड़े-ही-खड़े यह गाथा कही—

सुखं वत मं जीवन्तं पचमाना उदञ्चनी।
चोरी जायप्पवादेन तेलं लोणञ्च याचति॥

[जल निकालने की मटकी सदृशा 'भार्या' रूप में यह चौरिणी, सुख-पूर्वक रहते हुए मुझे मीठे शब्दों से लुभाकर नून-तेल माँग-माँगकर जलाती है।]

सुखं वत मं जीवन्तं, तात ! तुम्हारे पास सुखपूर्वक रहते हुए; **पचमाना**, संतप्त करती हुई, पीड़ा देती हुई, जो-जो खाना चाहती वह पकाती; उदक (= पानी) खींचा जाता है इससे, अतः उदञ्चनी। चाटी या कुएँ से पानी निकालने की घटी। उसे उदञ्चनी इसलिए कहा क्योंकि वह घटी (= घटिका) के पानी निकालने की तरह जो-जो चाहती सो अवश्य निकालती। **चोरी जायप्पवादेन**; "नाम से तो भार्या" लेकिन एक चौरिणी मीठे-मीठे शब्दों से मुझे लुभा वहाँ ले जाकर नमक, तेल तथा और भी जो-जो चाहती वह सब माँगती; जैसे दास या नौकर से वैसे मँगवाती। (यह) कह उसकी निन्दा की।

बोधिसत्व ने उसे आश्वासन देकर "तात ! जो हुआ सो हुआ। आ अब

तू मैत्री भावना कर। करुणा भावना कर" कह चोरों ब्रह्मविहारों को कहा। योगक्रिया कही। वह थोड़े ही समय में अभिञ्ञा तथा समापत्तियों को प्राप्त कर ब्रह्मविहारों की भावना कर, अपने पिता सहित ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, आर्य-सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के प्रकाशित होने पर वह भिक्षु स्त्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय की प्रौढ़ कुमारी ही आजकल की प्रौढ़कुमारी तथा चूलतापस ही आसक्त भिक्षु था। पिता तो मैं था ही।

⊙

१०७. सालित्त जातक

"साधु खो सिप्पकं नाम" आदि शास्ता ने जेतवन में रहने समय एक हस-मार भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्तीवासी कुलपुत्र **सालित्तक शिल्प** में पारङ्गत था। सालित्तक शिल्प कहते हैं ठीकरी चलाने के हुनर को। एक दिन उसने धर्मोपदेश सुन, बुद्ध (-शासन) में श्रद्धायुक्त हो प्रव्रजित होकर उपसम्पदा प्राप्त की। लेकिन न उसे शिक्षा की इच्छा थी न उसके अनुसार आचरण करने की। एक दिन वह एक छोटे भिक्षु को साथ ले **अचिरवती** (नदी) पर गया। वहाँ स्नान करके खड़ा था कि, उसी समय आकाश में दो सफेद हंसों को उड़ते देखा। उसने छोटे भिक्षु से कहा--

"इनमें जो पिछला हंस है, उसकी आँख को कंकर से बींधकर हंस को को अपने पैरों में गिराता हूँ।"

"कैसे गिरायेगा ? मार ही न सकेगा।"

"इधर की आँख रहे। में इसकी उधर की आँख में मारूँगा।"

"असम्भव बात कहते हो ?"

"तो देख" कह उसने एक तीखी ठीकरी ले उँगली से तान उस हंस के पीछे फेंकी। ठीकरी ने 'रू" करके आवाज की। हंस "खतरा होगा" सोच, रुककर शब्द सुनने लगा। उसने उसी समय एक गोल कंकर ले, रुककर देखते हुए हंस के दूसरी ओर की आँख में मारा। कंकर दूसरी ओर की आँख बींधता गया। हंस चिल्लाता हुआ पैरों में आकर गिरा।

भिक्षुओं ने इधर-उधर से आकर उसकी निन्दा की कि "तू ने नामुनासिब किया और शास्ता के पास ले जाकर कह दिया कि 'इसने यह-यह किया।

शास्ता ने उसकी निन्दा करते हुए "भिक्षुओ ! न केवल अभी यह हुनर में हुशियार है, बल्कि पहले भी हुशियार ही था" कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके आमात्य (होकर उत्पन्न हुए) थे। राजा का तत्कालीन पुरोहित बड़ा बुलक्कड़ था——बोलना आरम्भ करता तो किसी दूसरे को बोलने का मौका ही न मिलता। राजा सोचने लगा—'इसका मुंह बन्द करने वाला कोई कब मिलेगा ?' और तब से ऐसे आदमी की खोज में रहने लगा।

उन दिनों वाराणसी में एक कुबड़ा कंकर फेंकने के हुनर में पारंगत था। गाँव के लड़के बाले उसे ठेले (रथक) पर चढ़ा खींच कर, वाराणसी नगर के दरवाजे पर शाखाओं से युक्त एक महान्न्यग्रोध (वृक्ष) के नीचे ले आते और उसे घेर कर तथा कौड़ी आदि दे कहते "हाथी की शकल बनाओ। घोड़े की शकल बनाओ।" वह कंकर चला-चलाकर न्यग्रोध के पत्तों में भिन्न-भिन्न तरह की शक्लें बनाता। सभी पत्तों में छेद हो गये।

वाराणसी नरेश सैर को जाते समय उस जगह आये। भगा दिये जाने के भय से लड़के वाले भाग गये। कुबड़ा वहीं पड़ा रहा। राजा ने न्यग्रोध वृक्ष के नीचे रथ पर बैठे-ही-बैठे, छिद्रित पत्तों के कारण धूप-छनी छाया देख, सभी पत्तों को छिद्रित पा पूछा—"ऐसा किसने किया ?"

"देव ! कुबड़े ने।"

'यह ब्राह्मण का मुंह बन्द कर सकेगा' सोच राजा ने पूछा——"कुबड़ा कहाँ है ?"

खोज करनेवालों ने कुबड़े को वृक्ष की जड़ में पड़े देख कहा "देव ! यहाँ है।"

राजा ने उसे बुलवा, लोगों को दूर हटवा, उस से पूछा——"हमारे यहाँ एक बुलक्कड़ ब्राह्मण है, क्या तू उसे निःशब्द कर सकेगा ?"

"देव ! यदि नलकी भर बकरी के मेंगन मिलें तो कर सकूंगा।"

राजा कुबड़े को घर ले गया और कनात के भीतर बैठाया। (फिर)

कनात में एक छेद कर ब्राह्मण के बैठने का आसन उस छेद की ठीक सीध में बिछवाया। नलकी भर बकरी की सूखी मींगन कुबड़े के पास रखवा दीं। जिस समय ब्राह्मण हजूरी में आया, उसे उस आसन पर बिठवा, राजा ने बात-चीत चलायी। किसी दूसरे को बोलने का अवसर न दे, ब्राह्मण ने राजा से बोलना शुरू किया। कनात के छेद में से मक्खी डालने की तरह वह कुबड़ा एक-एक मींगन ब्राह्मण के तालु के अन्दर गिराता रहा। नलिका में तेल डालने की तरह ब्राह्मण जो-जो मींगनें आतीं उन्हें निगल जाता। सब खतम हो गयीं। उसके पेट में गयी नलकी भर बकरी की मींगनें आधे आळ्हक[1] भर थीं। राजा ने उन्हें खतम हुआ जान कहा—"आचार्य ! अति बुलक्कड़ होने के कारण आपको नलकी भर बकरी की मींगनें निकल जाने पर भी पता नहीं लगा। अब इससे अधिक हजम न कर सकोगे। आओ कंगनी का पानी पीकर इन्हें निकाल अपने को स्वस्थ करो।"

उस दिन से मानो ब्राह्मण का मुख सिल गया। बातचीत करने वाले के साथ भी बातचीत न करता। 'इसने मुझे कर्ण-सुख दिया है' सोच राजा ने कुबड़े को चारों दिशा में लाख की आमदनी के चार गाँव दिये। बोधिसत्व ने राजा के पास जा 'देव ! बुद्धिमान् आदमी को हुनर सीखना चाहिए। कुबड़े ने केवल कंकर फेंकने (की कला से) भी सम्पत्ति पैदा कर ली' कह, यह गाथा कही—

साधु खो सिप्पकं नाम अपि यादिसकीदिसं
पस्स खञ्जप्पहारेन लद्धा गामा चतुद्दिसा ॥

[जैसा कैसा भी हो, हुनर सीखना अच्छा है। देखो ! कुबड़े ने (मींगनों के) फेंकने (के हुनर) से ही चारों दिशाओं में गाँव पा लिये।]

---

१. १६ पसत = एक आळ्हक।

पस्स खञ्जप्पहारेन महाराज ! देखो इस कुबड़े ने बकरी की मीगन के निशाने लगाने मात्र से ही चारों दिशाओं में चारों गाँव पा लिये । अन्य शिल्पों की महिमा का तो क्या ही कहना—इस प्रकार हुनर सीखने की महिमा का वर्णन किया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, जातक का मेल बैठाया । उस समय का कुबड़ा यह भिक्षु है । राजा आनन्द है और पंडित मन्त्री तो मैं ही था ।

⊙

१०८ बाहिय जातक

"सिक्खेय्य सिक्खितब्बानि . . ." को शास्ता ने वैशाली के आश्रित महावन की कूटागार शाला में रहते समय एक लिच्छवि के सम्बन्ध में कहा।

क. वर्तमान कथा

वह लिच्छवि राजा श्रद्धाप्रसन्न था। उसने भिक्षुसंघ सहित बुद्ध को अपने घर निमन्त्रित कर महादान दिया।

उसकी भार्या मोटी, सूजी हुई सी थी और उसको सलीके से रहने का शऊर नहीं था। शास्ता भोजनोपरान्त दानानुमोदन कर, विहार जा भिक्षुओं को उपदेश दे, गन्धकुटी में प्रविष्ट हुए। धर्मसभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलायी--"आयुष्मानो! वह लिच्छवि-नरेश तो इतना सुन्दर है, लेकिन उसकी भार्या मोटी, सूजी हुई सी है तथा उसे सलीके से रहने का शऊर नहीं। राजा उसके साथ कैसे रहता है?" शास्ता ने आकर पूछा--'भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"यह बातचीत" कहने पर शास्ता ने "भिक्षुओ! न केवल अभी, किन्तु पहले भी यह मोटे शरीरवाली स्त्री के साथ ही रहता था" कह, उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में वाराणसी में जब ब्रह्मदत्त राज्य करता था, उस समय बोधिसत्व उसके आमात्य थे। मुफस्सल की एक स्थूल शरीर स्त्री जिसे सलीका नहीं था, मजदूरी करती थी। राजाङ्गन से थोड़ी दूर पर जाते हुए उसे शौच की हाजत हुई। जो वस्त्र पहने हुए थी, उसी से शरीर को ढक कर बैठ गयी और हाजत रफा कर तुरन्त उठ खड़ी हुई। झरोखे से राजाङ्गन देखते हुए वाराणसी राजा की उस पर नजर पड़ी। वह सोचने लगा--"इस प्रकार के

(खुले) आङ्गन में बिना लज्जा को छोड़े वस्त्र से ढके शौच फिरकर यह जल्दी से खड़ी हो गयी। यह निरोग होगी। इसकी कोख अति परिशुद्ध होगी। परिशुद्ध-कोख से उत्पन्न हुआ पुत्र भी अति पवित्र तथा पुण्यवान् होगा। मुझे चाहिए कि मैं इसे अपनी पटरानी बनाऊँ।"

यह मालूम करके कि वह कुँवारी है, राजा ने उसे बुलवाकर अपनी पट-रानी बनाया। वह राजा को प्रिय थी, मन भाती थी। थोड़ी ही देर में उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका वह पुत्र चक्रवर्ती राजा बना।

बोधिसत्व ने उसका यह (पुत्र-) धन देख, मौका मिलने पर राजा से कहा--"देव! सीखने योग्य शिल्प क्यों न सीखा जाय? इस पुण्यवान् ने, बिना लज्जा त्यागे, वस्त्र से ढके ही ढके शौच फिर कर तुम्हें प्रसन्न करके इस प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त की।" इस प्रकार सीखने योग्य बात को सीखने का महत्व बताते हुए यह गाथा कही--

सिक्खेय्य सिक्खितब्बानि सन्ति सच्छन्दिनो जना
बाहियापि सुहन्नेन राजानमभिराधयि ॥

[सीखने योग्य बातों को सीखे। कदरदान लोग हैं। उस मुफस्सल की स्त्री ने राजा को ढंग से शौच फिरने (मात्र) से प्रसन्न कर लिया।]

सन्ति सच्छन्दिनो जना शिल्प-विशेषों में रुचि रखनेवाले लोग हैं। **बाहिया**--बाहर मुफस्सल में पैदा हुई तथा पली स्त्री। **सुहन्नेन**, बिना लज्जा छोड़े वस्त्र से ढके-ढके शौच फिरने को 'सुहन्न' कहते हैं, सो वैसे शौच फिरने से **राजानमभिराधयि** देव को प्रसन्न करके, यह सम्पत्ति प्राप्त की।

इस प्रकार बोधिसत्व ने सीखनेयोग शिल्पों (के सीखने) का महात्म्य कहा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय के पति-पत्नी ही अब के पति-पत्नी। पण्डित आमात्य तो मैं ही था।

⊙

१०९ कुण्डकपूव जातक

"**यथन्नो पुरिसो होति**" यह शास्ता ने श्रावस्ती में रहते समय, एक महा दरिद्र (मनुष्य) के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में कभी एक ही परिवार बुद्ध तथा उसके संघ को दान देता, कभी तीन चार परिवार एक में मिलकर, कभी एक गण कभी एक गली के लोग, कभी सारे नगर के लोग मिलकर। उस समय एक गली के लोग मिल-कर दान दे रहे थे। मनुष्य बुद्ध तथा संघ को यवागु परोसकर कहने लगे "खाजा लाओ।"

उस गली में रहने वाले, दूसरों की मजदूरी करके जीने वाले, एक दरिद्र मनुष्य ने सोचा--"मैं यवागु नहीं दे सकता। खाजा दूंगा।" (यह सोच) उसने चावल की बहुत बारीक कनखी ले, छाज से फटक कर, पानी से भिगो, आक के पत्तों में रख, आग में पकाया। फिर 'यह बुद्ध को दूंगा' सोच उसे ले जाकर शास्ता के सामने खड़ा हुआ। (लोगों ने) 'खाजा लाओ' पहली बार कहा ही था कि उसने सबसे पहले जाकर शास्ता के सामने वह पूड़ा रख दिया। शास्ता ने औरों के दिये हुए खाजों को अस्वीकार कर उसी पूड़े-खाजे को ग्रहण किया। उसी समय सारे नगर में एक शोर मच गया कि सम्यक् सम्बुद्ध ने उस महादरिद्र का खाना बिना घृणा के खाया।

राजा, राजा के महामन्त्री आदि, और तो और द्वारपाल तक आकर शास्ता को प्रणाम कर उस महादरिद्री से कहने लगे--"भो! सौ लेकर, दो सौ लेकर वा पाँच सौ लेकर हमारा भी हिस्सा रक्खो।" उसने 'शास्ता से पूछकर जानूंगा' सोच शास्ता के पास जाकर वह बात कही। शास्ता ने उत्तर दिया "धन लेकर या बिना लिए जैसे भी हो सब प्राणियों को हिस्सेदार बनाओ"

उसने धन लेना आरम्भ किया। मनुष्यों ने दुगुना, चौगुना, आठ गुना आदि दे-देकर नौ करोड़ सोना दिया। शास्ता दानानुमोदन कर विहार चले गये। फिर भिक्षुओं के अपने-अपने कर्तव्य करने पर शास्ता ने उन्हें उपदेश दे गन्धकुटी में प्रवेश किया।

शाम को राजा ने उस महादरिद्री को बुलवाया और श्रेष्ठी बना उसका सत्कार किया। धर्म सभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलायी--"आयुष्मानो ! महान् दरिद्री के दिये पूए, शास्ता ने बिना घृणा प्रगट किये ऐसे खाये जैसे अमृत। महान् दरिद्री भी बहुत-सा धन और सेठ का पद प्राप्त कर बहुत सम्पत्तिशाली हो गया।" शास्ता ने आकर पूछा--"भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत" कहने पर "भिक्षुओ ! न केवल अभी मैंने बिना घृणा दिखाये उसके पूए खाये बल्कि पहले जब मैं वृक्ष-देवता था तब भी खाये थे" कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य के समय बोधिसत्व अरण्डी के एक वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए। उस गाँवड़े के मनुष्य तब देवता-विश्वासी[1] थे। एक त्योहार आने पर उन्होंने अपने-अपने वृक्ष देवताओं को बलि दी। एक दरिद्री मनुष्य ने लोगों को वृक्ष-देवताओं की सेवा करते देख स्वयं एक अरण्ड-वृक्ष की सेवा की। मनुष्य अपने-अपने देवताओं के लिए नाना प्रकार के माला, गन्ध, लेपन आदि और खाद्य-भोज्य लेकर गये। लेकिन वह ले गया चूरे के पूए और कड़छी में पानी। अरण्ड वृक्ष के समीप पहुँचा तो सोचने लगा-"देवता दिव्य-भोजन करते हैं। मेरे देवता यह चूरे का पूआ नहीं खायेंगे। इसे व्यर्थ क्यों नष्ट करूँ ? मैं ही इसे खा लूंगा।" यह सोच वहीं से लौट पड़ा।

बोधिसत्व ने वृक्ष की शाखा पर खड़े होकर कहा--"भो ! यदि तुम धनी

---

१. देवता मंगलिका, जिनका विश्वास हो कि देवताओं की पूजा करने से कल्याण होगा।

होते तो मुझे मधुर खाजा देते, लेकिन तुम दरिद्र हो। मैं तुम्हारा पूआ न खाकर और क्या खाऊँगा ? मेरे हिस्से को नष्ट न करो।"

इतना कह यह गाथा कही--

यथन्नो पुरिसो होति तथन्ना तस्स देवता,
आहरेतं कणं पूवं मा मे भागं विनासय ।।

[जैसा आदमी, वैसा देवता। इस चूरे के पूए को ला। मेरे हिस्से को नष्ट मत कर।]

यथन्नो, जैसा भोजन **तथन्ना**, उस आदमी का देवता भी वैसे ही भोजन का खानेवाला होता है। **आहरेतं कलं पूवं**--इस चूरे के पके पूए को ला। मेरे हिस्से को नष्ट न कर।

उसने वापिस लौट बोधिसत्व को देख बलि दी। बोधिसत्व ने उसमें से सार ग्रहणकर पूछा--भले आदमी ! तू किसलिए मेरी सेवा करता है ?"

"स्वामी ! मैं दरिद्र हूँ ! चाहता हूँ कि दरिद्रता से मुक्त हो जाऊँ। इसीलिए सेवा करता हूँ।"

"भले आदमी ! चिन्ता मत कर। तूने जो सेवा की है वह कृतज्ञ की, कृत-उपकार को न भूलनेवाले की है। इस अरण्ड के चारों ओर खजाने से भरे घड़े गर्दन से गर्दन मिलाकर रक्खे हैं। तू राजा को कह, गाड़ियों में धन लदवाकर राजाङ्गन में डलवा। राजा प्रसन्न होकर तुझे श्रेष्ठी का पद दे देगा।'

यह कहकर बोधिसत्व अन्तर्धान हो गये। उसने वैसा ही किया। राजा ने उसे सेठ के पद पर नियुक्त किया। इस प्रकार वह बोधिसत्व (की कृपा) से महासम्पत्तिशाली हो स्वकर्मानुसार परलोक गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का मेल बैठाया। उस समय जो दरिद्र था, वही इस समय दरिद्र। अरण्ड-वृक्ष का देवता तो मैं ही था।

⊙

११०. सब्बसंहारक पञ्हो जातक

"सब्ब संहारको नत्थि"––यह सब्बसंहारकपञ्ह (जातक) सारी की सारी उम्मग्ग जातक[1] में प्रकट होगी।

---

१. महाउम्मग्ग जातक (५४६)।

पहला परिच्छेद

१२. हंसी वर्ग

१११. गद्रभ पञ्हो जातक

"हंसी त्वं मञ्ञसि" इय गद्रभपञ्ह (जातक) भी उम्मग्ग जातक[1] में ही आयेगी।

११२. अमरादेवी पञ्ह जातक

"येन सत्तुविलेङ्ग च" यह अमरादेवी पञ्ह (जातक) भी वहीं (उम्मग्ग जातक में) आयेगी।

⊙

---

1. उम्मग्ग जातक (५४६)।

११३. सिगाल जातक

"**सद्दहासि सिगालस्स**. ." यह गाथा शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षु बातचीत कर रहे थे--"आयुष्मानो ! देवदत्त पाँच सौ भिक्षुओं को लेकर गयाशीर्ष चला गया। वहाँ जाकर उसने उन भिक्षुओं को कहा कि श्रमण गौतम, जो करता है वह धर्म नहीं है बल्कि जो मैं करता हूँ वह धर्म है। इस प्रकार उन्हें अपने मत का बना, यथास्थान झूठा आचरण कर संघ में फूट डाल एक सीमा[1] में दो उपोसथ[2] (-गृह) बना दिये।" यूँ वे देवदत्त के दोष कह रहे थे। भगवान् ने आकर पूछा—"यहाँ बैठे क्या बातचीन कर रहे हो ?"

"यह बातचीत।"

"भिक्षुओ ! देवदत्त केवल अभीं झूठ बोलनेवाला नहीं। यह पूर्व-जन्म में भी झूठ बोलनेवाला ही रहा है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व श्मशान-बन में एक वृक्ष-देवता होकर उत्पन्न हुए। उस समय वाराणसी में नक्षत्र की घोषणा हुई। मनुष्यों ने यक्षों को बलि देने की इच्छा से चौराहों और दूसरे रास्तों पर मत्स्य-माँस आदि बिखेर कर खप्परों में शराब रक्खी।

एक गीदड़ आधी रात के समय चुपके से नगर में दाखिल हुआ। मत्स्य-

---

१. सीमित-प्रदेश

२. जहाँ भिक्षु एकत्र हो सांघिक-कृत्य करते हैं।

मांस और शराब पीकर व पुन्नाग-वृक्षों के बीच जाकर सो रहा। सोते-सोते सूर्य निकल आया। आँख खोलने पर प्रकाश हुआ देख उसने सोचा--"अब मैं नगर से निकल नहीं सकता।" इसलिए वह रास्ते के पास जाकर छिपकर लेट रहा। दूसरे मनुष्यों को आते-जाते देख वह कुछ नहीं बोला, लेकिन एक ब्राह्मण को मुँह धोने के लिए जाते देख उसने सोचा--"ब्राह्मण धन के लोभी होते हैं। मैं ऐसा उपाय करूँ कि यह ब्राह्मण मुझे अपनी चादर में छिपा, गोद में ले जाकर नगर से बाहर कर दे।" उसने मनुष्य भाषा में कहा--"ब्राह्मण।"

ब्राह्मण ने लौटकर कहा--'मुझे कौन बुला रहा है?"

"ब्राह्मण! मैं।"

"किस कारण?"

"ब्राह्मण, मेरे पास दो सौ कार्षापण हैं। यदि मुझे गोद में ले चादर से ढक जिसमें कोई न देखे, इस प्रकार नगर से निकल सके, तो मैं तुझे वह कार्षापण दे दूंगा।"

धन के लोभ से ब्राह्मण 'अच्छा' कह स्वीकार कर उस गीदड़ को वैसे ले नगर से निकल थोड़ा आगे गया। गीदड़ ने पूछा--"ब्राह्मण यह कौन सी जगह है?"

"अमुक जगह।"

"और भी थोड़ा आगे तक ले चल।"

इस प्रकार बार-बार कहकर उसे महाश्मशान तक ले जा, वहाँ पहुँचकर कहा--"मुझे यहाँ उतार दे।" ब्राह्मण ने उसे उतार दिया।

"अच्छा तो ब्राह्मण चादर फैला।"

ब्राह्मण ने धन-लोभ से चादर फैला दी।

'तो इस वृक्ष की जड़ में खोद' कह गीदड़ ब्राह्मण को जमीन खोदने में लगा, उसकी चादर पर चढ़ उसके चारों कोनों तथा बीच में--पाँच जगहों पर पाखाना कर, उस लबेड़ श्मशान-बन में दाखिल हो गया।

बोधिसत्व ने वृक्ष की शाखा पर खड़े हो यह गाथा कही--

सद्दहासि सिगालस्स सुरापीतस्स ब्राह्मण,
सिप्पिकानं सतं नत्थि कुतो कंससता दुवे॥

[ब्राह्मण ! तू शराब पिये हुए गीदड़ का विश्वास करता है। उसके पास सौ सीपियाँ भी नहीं, दो सौ कार्षापण तो कहाँ होंगे।]

सद्दहासि या सद्दहेसि। इसका मतलब है कि विश्वास करता है **सिप्पिक नं सतं नत्थि**--इसके पास सौ सीपियाँ भी नहीं है। **कुतो कंससता दुवे** दो सौ कार्षाषण तो कहाँ होंगे।

बोधिसत्व यह गाथा कह 'हे ब्राह्मण ! जा अपनी चादर धोकर, स्नान करके अपना काम कर' कह अन्तर्धान हो गये।

ब्राह्मण वैसा कर 'हाय ठगा गया' सोचता हुआ चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का मेल बैठाया।

उस समय गीदड़ देवदत्त था। हाँ, वृक्ष देवता मैं ही था।

⊙

११४. मितचिन्ती जातक

"बहुचिन्ती अप्पचिन्ती च" यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय दो वृक्ष स्थविरों के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

उन्होंने एक जनपद के जंगल में वर्षा-काल बिताकर सोचा कि अब शास्ता के दर्शन के लिए जायेंगे, रास्ते के लिए आवश्यक सामग्री तैयार कर 'आज जाते हैं, कल जाते हैं' करते-करते एक मास बिता दिये। फिर दुबारा सामग्री तैयार कर 'आज जाते हैं,कल जाते हैं' करते-करते एक मास और बिता दिये। इसी प्रकार अपने आलस्य और निवास-स्थान से मोह होने के कारण तीसरा महीना भी बिता दिया। तीन महीने गुजारकर जेतवन पहुँच, अपने योग्य-स्थान पर पाँच चीवर रख बुद्ध के दर्शनों को गये। भिक्षुओं ने पूछा—"आयुष्मानो! आप बुद्ध की सेवा में बहुत दिन के बाद उपस्थित हुए। इतनी देर क्यों हुई ?" उन्होंने कारण बताया। उनका वह आलस्य तथा सुस्ती करने का स्वभाव भिक्षुओं पर प्रकट हो गया। भिक्षुओं ने धर्म सभा में उन स्थविरों के आलसी स्वभाव की चर्चा चलायी। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बात कर रहे थे ?" "यह बातचीत" कहने पर उन स्थविरों को बुलवाकर पूछा—

"भिक्षुओ, क्या तुम सचमुच आलसी हो ?"

"भन्ते सचमुच।"

"भिक्षुओ! न केवल अभी आलसी हो, पूर्वजन्म में भी आलसी ही थे और निवास-स्थान के प्रति मोह था" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वाराणसी नदी में तीन मच्छ थे। उनके नाम थे बहुचिन्ती, अल्प-चिन्ती और मित-चिन्ती। वे जंगल (की नदी) से बस्ती के पास आ गये। मितचिन्ती ने बाकी दोनों को कहा--"यह बस्ती है। यहाँ सशंकित रहने की तथा भयभीत रहने की जरूरत है। मछुवे लोग नाना प्रकार के मछली पकड़ने के जाल आदि फेंककर मछलियाँ पकड़ते हैं। हम जंगल को ही चलें।"

बाकी दोनों जनों ने आलस्य के कारण और लोभ के कारण 'आज चलें, कल चलें' कहते हुए तीन महीने गुजार दिये। मछुओं ने नदी में जाल फेंका। बहुचिन्ती ओर अल्प-चिन्ती खाने की चीज को ग्रहण करते हुए आगे-आगे जाते थे। वे अपनी मूर्खता के कारण जाल की गन्ध का ख्याल न कर जाल में ही जा फँसे। मितचिन्ती ने पीछे आते हुए जाल की गन्ध सूँघकर समझ लिया कि वे दोनों जाल में जा फँसे। उसने सोचा—इन दोनों आलसी तथा मूर्खों को जीवन-दान दूँ। यह सोच वह बाहर की तरफ से जाल में घुस जाल फाड़ कर निकलते हुए की तरह पानी को आलोड़ते हुए जाल के आगे गिरा। फिर पिछली तरफ से फाड़कर निकलते हुए की तरह पानी को अलोड़ते हुए पिछली तरफ गिरा। मछुओं ने यह समझकर कि मच्छ जाल फाड़कर निकल गए जाल के सिरों को खोल फेंक दिया। वे दोनों मच्छ जाल से छूटकर पानी में जा पड़े। इस प्रकार मितचिन्ती ने उनके प्राण बचाये।

शास्ता ने पूर्व-जन्म की यह कथा कह बुद्ध होने पर यह गाथा कही--

बहुचिन्ती अप्पचिन्ती च उभो जाले अबज्झरे
मितचिन्ती अमोचेसि उभो तत्थ समागता ।।

[बहुचिन्ती और अप्पचिन्ती दोनों जाल में फँस गये। मितचिन्ती ने दोनों को छुड़ा दिया। वे दोनों उसके साथ आ गये।]

बहुचिन्ती, बहुत चिन्तन करने वाला होने से अथवा बहुत संकल्प-विकल्प वाला होने से बहुचिन्ती नाम हुआ। बाकी दोनों भी इसी प्रकार हैं। **उभो तत्थ**

समागता, मितचिन्ती के कारण प्राण बचाकर वे दोनों फिर पानी में मितचित्ती के साथ आ गये।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। (आर्य-) सत्यों की समाप्ति पर स्थविर भिक्षु स्रोतापन्न हुए।

उस समय के बहुचिन्ती और अल्प-चिन्ती यह दोनों थे, मितचिन्ती तो मैं ही था।

⊙

११५. अनुसासिक जातक

"यायञ्ञमनुसासति..." यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उपदेश देनेवाली भिक्षुणी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह श्रावस्ती-निवासिनी एक कुल में उत्पन्न हुई थी। जिस समय से प्रव्रजित होकर उपसम्पन्न हुई, उस समय से लेकर वह श्रमण-धर्म में न लग चीजों की लोभी होने से नगर के एक ऐसे हिस्से में जहाँ दूसरी भिक्षुणियाँ नहीं जाती थी, भिक्षा माँगने जाती। मनुष्य उसे बढ़िया भोजन देते। उसने रस-तृष्णा के कारण सोचा, यदि दूसरी भिक्षुणियाँ भी उसी ओर भिक्षा माँगने जाएँगी, तो मेरी प्राप्ति में फरक पड़ेगा। इसलिए मुझे ऐसा करना चाहिए, जिसमें दूसरी भिक्षुणियाँ उधर भिक्षा माँगने न जाएँ।

वह भिक्षुणियों के निवास-स्थान पर गयी और बोली--"बहनों! अमुक जगह पर चण्ड-हाथी है, चण्ड-घोड़ा है, चण्ड-कुत्ता है। वह खतरनाक जगह है। वहाँ पिण्ड-पात के लिए मत जाएँ।" उसकी बात सुन एक भिक्षुणी ने भी उधर गर्दन निकालकर नहीं देखा।

उसके एक दिन उधर भिक्षा माँगने के समय, जब वह जल्दी से एक घर में घुसने जा रही थी एक मरकहे मेढ़े ने उसे टक्कर मारकर उसकी जाँघ की हड्डी तोड़ दी। मनुष्यों ने दौड़कर उस दो टुकड़े हुए जाँघ की हड्डी को एक में बाँधा और उसे चारपाई पर लिटाकर भिक्षुणी-आश्रम लाये। 'यह दूसरी भिक्षुणियों को उपदेश देती थी, स्वयं उधर जाकर जाँघ की हड्डी तुड़ाकर आयी है' कह भिक्षुणियों ने हँसी उड़ायी। यह बात शीघ्र ही भिक्षु-संघ तक पहुँच गयी।

एक दिन धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षु उसकी निन्दा कर रहे थे--

आयुष्मानो ! दूसरों को उपदेश देनेवाली भिक्षुणी स्वयं उधर जाकर मरकहे मेढ़े से जाँघ की हड्डी तुड़ा लायी है ।

शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओ, बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?' 'यह बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ' केवल अब ही नहीं, पहले भी यह दूसरों को तो उपदेश देती रही है, लेकिन स्वयं तदनुसार आचरण न करने के कारण दुःख भोगती रही है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व जंगल में पक्षी की योनि में जन्म ग्रहण कर बड़े होने पर सैंकड़ों पक्षियों को ले हिमालय को गये । उनके वहाँ रहते समय चण्ड-स्वभाव की एक चिड़िया राजमार्ग में जाकर पड़ी रहती; वहाँ उसे गाड़ियों पर से गिरे हुए धान मूंग आदि के दाने मिलते । उन्हें पाकर वह सोचती कि अब ऐसा उपाय करूँ जिससे दूसरे पक्षी इधर न आयें । वह पक्षियों को उपदेश देती—'राज-मार्ग बड़ा खतरनाक है । हाथी, घोड़े और मरखने बलोंवाली गाड़ियाँ आती जाती हैं । शीघ्रता से उड़ा भी नहीं जा सकता । वहाँ नहीं जाना चाहिए ।' पक्षियों ने उसका नाम अनुशासिका रख दिया ।

एक दिन वह राजपथ पर चुग रही थी । जोर से आती हुई गाड़ी के शब्द को सुन उसने पीछे मुँह कर देखा । 'अभी दूर है' सोच, चुगती ही रही । हवा की गति से गाड़ी शीघ्र ही आ पहुँची । वह उड़ न सकी । पहिये से उसके दो टुकड़े हो गये ।

बोधिसत्त्व ने पक्षियों के लौटने पर उनकी गिनती करते समय उसे न देख कर कहा—अनुशासिका दिखायी नहीं देती, उसे खोजो । पक्षियों ने खोज करते हुए, उसे राजपथ पर दो टुकड़े हो पड़े देखा । बोधिसत्त्व से आकर निवेदन किया । 'वह दूसरों को जाने से रोकती थी लेकिन स्वयं वहाँ चुगने जाकर दो टुकड़े हुई, कह यह गाथा कही—

यायञ्ञमनुसासति सयं लोलुपचारिणी,
सायंविपक्खिका सेति हता चक्केनसाळिका ॥

[जो दूसरों को उपदेश देती थी लेकिन स्वयं थी लोभी; वह यह चिड़िया पहिये के नीचे आकर पंख-रहित मरी पड़ी है।]

"**यायञ्ञमनुसासतीति.** इसमें 'य' केवल दो पदों की सन्धि के कारण है। अर्थ है, जो दूसरों को उपदेश देती है। **सयं लोलुप्पचारिणी,** अपने लोभी स्वभाव वाली **सायं विपक्खिका सेति,** वह पंखरहित होकर राजपथ पर पड़ी है। **हता चक्केन सालिका,** गाड़ी के पहिये से मारी गयी चिड़िया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय उपदेश देनेवाली चिड़िया यह उपदेश देनेवाली भिक्षुणी ही थी। ज्येष्ठ-पक्षी तो मैं ही था।

११६. दुब्बच जातक

"अतिकरमकराचरिय" यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बात न माननेवाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह कथा नवें निपात में गिज्झ जातक[1] में आयेगी। शास्ता ने उस भिक्षु को बुला, 'भिक्षु, तू केवल अभी बात न माननेवाला नहीं है; बल्कि पहले भी तूने पण्डितों का कहना न करके शक्ति के आघात से जान गँवायी' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने लँघटन[2] के घर में जन्म लिया। बड़े होने पर वह बुद्धिमान तथा व्यवहार-कुशल हुआ। वह एक नट से शक्ति लाँघने की कला सीखकर आचार्य के साथ हुनर दिखाते हुए घूमता था। बोधिसत्त्व का उस्ताद चार ही शक्तियों के लाँघने का हुनर जानता था, पाँच के लाँघने का नहीं।

एक दिन उसने एक गामड़े में तमाशा दिखाते समय शराब के नशे में मस्त होकर, पाँच शक्तियों को लाँघूंगा' कह, उन्हें क्रम से रखा। बोधिसत्त्व ने कहा—"आचार्य, आप पाँच शक्तियों के लाँघने का हुनर नहीं जानते; इसलिए एक शक्ति को हटा दें। यदि पाँचों को लाघेंगे तो पाँचवीं शक्ति से बिंधकर मरेंगे।"

आचार्य उस समय बिलकुल मदहोश था। इसलिए उसने कहा—"तू मेरी सामर्थ्य को नहीं जानता।" इस प्रकार बोधिसत्त्व के उपदेश का अनादर कर,

---

१. गिज्झ जातक——नौवें निपात की पहली जातक।

२. लंघटन=बाजीगर।

चार शक्तियों को लाँघ पाँचवीं को लाँघते समय डण्ठल से महुए के फूल के गिरने की तरह; चीखता हुआ गिरा। उसे देख बोधिसत्व ने कहा--"यह पण्डितों का कहना न कर इस आपत्ति में पड़ा।" इसके बाद यह गाथा कही–

अतिकरमकराचरिय ! मय्हम्पेतं न रुच्चति,
चतुत्थे लंघयित्वान पंचमियस्मि[1] आवुतो ॥

[आचार्य, आज तुमने अति कर दी। मुझ तक को यह अच्छा नहीं लगा। चारों लाँघकर पाँचवीं में गिर पड़े।]

अतिकरमकराचरिय, आचार्य, आज तुमने अति कर दी। अर्थात् अपनी शक्ति से बाहर काम किया। **मय्हम्पेतं न रुच्चति,** मुझ आपके शिष्य तक को यह अच्छा नहीं लगा। इसीलिए मैंने पहले कह दिया था। **चतुत्थेलंघयित्वान,** चौथे शक्तिफलक पर बिना गिरे लांघकर, **पंचमियस्मि आवुतो,** पण्डितों की बात न मानकर पाँचवीं शक्ति पर गिर पड़े।

इतना कह आचार्य को शक्ति पर से उठा, जो करना उचित था, किया।

शास्ता ने इस पूर्व जन्म की कथा को ला जातक का मेल बैठाया--उस समय का आचार्य, यह बात न माननेवाला भिक्षु था, शिष्य तो मैं ही था।

---

१. 'पञ्चमायसि' पाठ भी है।

११७. तित्तिर जातक

"**अच्चुग्गता अतिबलता...**" यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय **कोकालिक**[1] के बारे में कही थी।

क. वर्तमान कथा

उसकी वर्तमान कथा तेरहवें निपात की **तक्कारिय जातक**[2] में प्रकट होगी। शास्ता ने कहा--भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिक अपनी वाणी के कारण नष्ट हुआ है, पहले भी नष्ट हुआ है।

इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रम्हदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने उदीच्य ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण कर बड़े होने पर तक्षशिला जा सब विद्याएँ सीखीं। फिर काम-भोग के जीवन को छोड़ ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो पाँच अभिज्ञा तथा आठ समापत्तियों को प्राप्त किया। हिमवन्त प्रदेश के सभी ऋषियों ने उन्हें अपना उपदेशक-आचार्य बनाया और उनके आस-पास रहने लगे। वे भी पाँच सौ ऋषियों के उपदेशक-आचार्य बन ध्यानमग्न हो हिमवन्त में रहते थे।

उस समय पाण्डु-रोग से पीड़ित एक तपस्वी कुल्हाड़ी लेकर लकड़ियाँ फाड़ रहा था। उसके पास बैठे एक वाचाल तपस्वी ने, यहाँ पर मारें, यहाँ पर मारें, बार-बार कहकर उस तपस्वी को क्रोधित कर दिया। उसने क्रोध में आकर कहा, 'तू मुझे अब लकड़ी चीरना सिखाना चाहता है', और अपनी तेज़ कुल्हाड़ी उठा उसे एक ही प्रहार से मार डाला।

---

१. कोकालिक देवदत्त के पक्ष का एक संघ-भेदक था।

२. तक्कारिय जातक (४८१)।

बोधिसत्त्व ने उसका शरीर-कृत्य किया।

उसी समय आश्रम से कुछ ही दूर वल्मी पर एक तित्तिर रहता था। वह सुबह शाम वल्मी के ऊपर खड़ा हो बड़े ज़ोर से आवाज लगाता। उसे सुन एक शिकारी ने सोचा कि तित्तिर होगा और शब्द के पीछे पीछे जा, उसे मार कर ले गया।

बोधिसत्त्व ने उसकी आवाज न सुनायी देती देख तपस्वियों से पूछा––उस जगह एक तित्तिर रहता था। उसकी आवाज नहीं सुनायी देती? उन्होंने बोधिसत्त्व को सब हाल कहा। बोधिसत्त्व ने ऊपर की दोनों बातों को मिला ऋषियों के सामने यह गाथा कही––

अच्चुग्गता अतिबलता अतिवेलं पभासिता,
वाचा हनति दुम्मेधं तित्तिरं वातिवस्सितं॥

[अति-ऊँची, अति जोर से अत्यधिक देर तक बोली गयी वाणी मूर्ख आदमी को वैसे ही मार डालती है जैसे जोर से चिल्लाने से तित्तिर मारा गया।]

अच्चुग्गता, अति उद्गता। **अतिबलता,** बार-बार बोलने से बहुत बलशाली हो गयी। **अतिवेलं पभासिता** उचित से बहुत ज्यादा देर तक भाषित। **तित्तिरं वातिवस्सितं,** जैसे बहुत बोलने से तित्तिर मारा गया, वैसे ही इस प्रकार की वाणी मूर्ख आदमी को मार गिराती है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ऋषियों को उपदेश दे चारों ब्रह्म-विहारों की भावना कर ब्रम्हलोक गामी हुए।

शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिक अपनी वाणी के कारण विनष्ट हुआ, किन्तु पहले भी नष्ट हुआ' कहा, और यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय दुर्वचन बोलनेवाला तपस्वी कोकालिक हुआ। ऋषिगण बुद्ध-परिषद् और ऋषि-गण का शास्ता तो मैं था ही।

११८. वट्टक जातक

"नाचिन्तयन्तो पुरिसो ..." यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उत्तर नाम के श्रेष्ठि के पुत्र के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में **उत्तर** श्रेष्ठि महाधनवान था। उसकी भार्या की कोख में एक बालक पैदा हुआ। वह पुण्यवान् था, ब्रह्मलोक से च्युत होकर यहाँ जन्म ग्रहण किया था। बड़ा होने पर वह ब्रह्मा की तरह सुन्दर वर्ण का हुआ।

एक दिन श्रावस्ती में **कार्तिक महोत्सव** की घोषणा होने पर सभी लोग उत्सव मनाने में मस्त थे। उस तरुण के मित्रों—सभी दूसरे श्रेष्ठि-पुत्रों की पत्नियाँ थीं। उत्तर श्रेष्ठि पुत्र बहुत समय तक ब्रह्मलोक में रहा था; इसलिए उसकी कामभोग में आसक्ति न थी।

उसके मित्रों ने सोचा कि उत्तर श्रेष्ठि पुत्र के लिए भी एक स्त्री लाकर उत्सव मनाएँगे। वे उसके पास जाकर बोले "सौम्य! इस नगर में कार्तिक रात्रि का उत्सव घोषित हुआ है। तुम्हारे लिए भी एक स्त्री लाकर उत्सव मनाएँ?"

'मुझे स्त्री की आवश्यकता नहीं है' कहने पर भी बार बार आग्रह करके स्वीकार करवा लिया। तब एक वेश्या को सब अलंकारों से सजा, उसके घर ले जाकर उसे श्रेष्ठिपुत्र का सोने का कमरा दिखाकर कहा कि तू श्रेष्ठिपुत्र के पास जा। उसे कमरा दिखा वे स्वयं चले गये।

उसके शयनागार में प्रविष्ट होने पर भी श्रेष्ठिपुत्र ने न उसकी ओर देखा न बातचीत की। उसने सोचा यह मेरे जैसी सुन्दर उत्तम विलास-युक्त स्त्री की ओर न देखता है, न बातचीत करता है। इसे अब स्त्री-लीला से देखने पर मजबूर करूँगी तब वह स्त्री लीला दिखाते हुए प्रसन्न-मुख की भाँति आगे के

दाँत निकालकर मुस्करायी। श्रेष्ठिपुत्र ने देखा; तो दाँतों की हड्डियाँ उसके लिए ध्यान का विषय हो गयीं। उसमें अस्थि-सञ्ज्ञा पैदा हुई। उसे वह सारा शरीर हड्डियों के पञ्जर की तरह मालूम देने लगा। उसकी मजदूरी दे, उसने कहा 'जाओ'।

उसके घर से निकलने पर बीच-बाजार में खड़ा देख एक ऐश्वर्यशाली आदमी उसे खर्चा दे अपने घर ले गया। सप्ताह बीतने पर उत्सव समाप्त हुआ। वेश्या की माता ने जब देखा कि लड़की नहीं आयी तो वह श्रेष्ठिपुत्रों के पास गयी और पूछा कि वह कहाँ है? उन्होंने उत्तर श्रेष्ठिपुत्र के यहाँ जाकर पूछा कि वह कहाँ है? उसने कहा "उसी समय खर्चा देकर विदा कर दिया।" उसकी माँ रोने लगी। 'मैं अपनी लड़की को नहीं देखती। मेरी लड़की लाओ' कहते हुए वह उत्तर-श्रेष्ठिपुत्र को ले राजा के पास गयी।

राजा ने मुकद्दमे का फैसला करते हुए पूछा—

"इन श्रेष्ठिपुत्रों ने तुझे वेश्या लाकर दी?"

"देव! हाँ।"

"अब वह कहाँ है?"

"नहीं जानता हूँ। उसी समय उसे विदा कर दिया था।"

"अब उसे लिवा आ सकता है?"

"देव! नहीं सकता हूँ।"

"यदि नहीं ला सकता है, तो इसे राज-दण्ड दो।"

उसके हाथ पीछे की तरफ बाँध राज-दण्ड देने के लिए उसे पकड़कर ले गये। वेश्या को न ला सकने के कारण श्रेष्ठिपुत्र को राज-दण्ड दे रहा है, सुन सारे नगर में हल्ला मच गया। लोग छाती पर हाथ रखकर 'स्वामी! यह क्या आपके योग्य है? कहते हुए रोने लगे। सेठ भी रोता पीटता पुत्र के पीछे-पीछे जा रहा था। श्रेष्ठिपुत्र सोचने लगा, 'यह जो मुझे इस प्रकार का दुःख हुआ, यह घर में रहने ही के कारण हुआ, यदि मैं इससे मुक्त हुआ तो गौतम सम्यक् सम्बुद्ध के पास प्रव्रजित होऊँगा।

वेश्या ने हल्ला सुना तो पूछा यह क्या हल्ला है? समाचार मालूम होने पर वह जल्दी से उतर "स्वामी! हटें हटें" मुझे राज-पुरुषों को देखने दें,

कहती हुई राज-पुत्रों के पास पहुँची। राज-पुरुषों ने उसे देख माता को सौंपा और श्रेष्ठिपुत्र को मुक्त कर चले गये।

श्रेष्ठिपुत्र मित्रों सहित नदी पर गया : वहाँ सिर से स्नान कर, घर जा, प्रातराशन कर, माता-पिता को प्रव्रज्या की बात जता, चीवर-वस्त्र ले बड़ी भारी मण्डली के साथ बुद्ध के पास जा प्रणाम कर प्रव्रज्या की याचना की। प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा प्राप्त कर वह योगाभ्यास में लग विपश्यना की वृद्धि कर थोड़ी ही देर में अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ।

एक दिन धर्म-सभा में इकट्ठे हुए भिक्षु श्रेष्ठिपुत्र की प्रशंसा कर रहे थे—"आयुष्मानो ! श्रेष्ठिपुत्र अपने पर आयी आपत्ति देख बुद्ध-शासन की महिमा जान इस दुःख से मुक्त होने पर प्रव्रजित होऊँगा' सोच, उस सुचिन्तन के फलस्वरूप मुक्त हो, प्रव्रजित हो अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ।" शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ ! केवल श्रेष्ठिपुत्र ही अपने पर आपत्ति पड़ने पर इस उपाय से इस दुःख से मुक्त होऊँगा" सोच मृत्यु-भय से मुक्त नहीं हुआ; पूर्व समय में बुद्धिमान लोग भी अपने पर आपत्ति पड़ने पर 'इस उपाय से इस दुःख से मुक्त होंगे' सोच मृत्यु-भय के दुःख से मुक्त हुए। (यह कह) पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रम्हदत्त के राज्य करने के समय जन्म-मरण के चक्कर में पड़े हुए बोधिसत्त्व एक बार बटेरे के जन्म में पैदा हुए।

उस समय बटेरों का एक शिकारी जंगल से बहुत से बटेरे पकड़ ले जाकर घर में रख उन्हें दाना खिला, खरीदारों से मूल्य ले उनके हाथ बेच अपनी जीविका चलाता था। वह एक दिन बहुत से बटेरों के साथ बोधिसत्त्व को भी पकड़ लाया। बोधिसत्त्व ने सोचा—यदि मैं इसका दिया हुआ चोगा खाऊँगा पीऊँगा तो यह मुझे आए हुए मनुष्यों के हाथ बेच देगा। यदि नहीं खाऊँगा तो मैं कुम्हला जाऊँगा। मुझे कुम्हलाया हुआ देखकर मनुष्य नहीं खरीदेंगे। इस प्रकार मेरा कल्याण होगा। मैं यही उपाय करूँगा।

उसने वैसा ही किया, जिससे वह सूखकर केवल हड्डी और चमड़ी मात्र रह गया। मनुष्य उसे देखकर नहीं खरीदते थे। बोधिसत्व को छोड़ शेष बटेरों के समाप्त हो जाने पर, चिड़ीमार पिंजरे को ला दरवाजे पर रख (उसमें से) बोधिसत्व को हाथ पर ले देखने लगा कि इस बटेरे को क्या हुआ? उसे असावधान देख बोधिसत्व ने पंख फैलाये और उड़कर जंगल जा पहुँचा।

बटेरों ने बोधिसत्व को देखकर पूछा—"पता नहीं रहा कि कहाँ गये थे?'

"मुझे चिड़ीमार ने पकड़ लिया था।" "कैसे मुक्त हुए?" पूछने पर बोधिसत्व ने कहा मैंने उसका दिया हुआ दाना-पानी नहीं ग्रहण किया; और मुक्त होने का तरीका सोचकर छूट गया। (इतना कह) यह गाथा कही—

नाचिन्तयन्तो पुरिसो विसेसमधिगच्छति,
चिन्तितस्स फलं पस्स मुत्तोस्मि वधबन्धना ॥

[जो आदमी विचार नहीं करता, वह विशेष (= मोक्ष) को प्राप्त नहीं होता। विचार करने के फल को देखो मैं मरण-बन्धन से मुक्त हो गया।]

सारांश यह है। **पुरिसो**, दुःख में पड़कर मैं इस उपाय से मुक्त होऊँगा, इस प्रकार न विचार करनेवाला अपने दुःख से मुक्ति स्वरूप **विसेसं नाधिगच्छति**। अब मैंने जो विचार से काम लिया, उसके फल को देखो। उसी उपाय से मैं **मुत्तोस्मि वधबन्धना,** मैं मरण से तथा बन्धन से मुक्त हुआ।

इस प्रकार बोधिसत्व ने अपनी कृति का बखान किया।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मरने से मुक्त हुआ बटेर मैं ही था।

⊙

११९. अकालरावी जातक

"अमातापितरि संवद्धो" यह धर्मदेशना शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक असमय शोर करने वाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस श्रावस्ती-निवासी तरुण ने (बुद्ध-) शासन में प्रव्रजित हो, न कर्तव्य सीखे, न शिक्षा ग्रहण की। वह नहीं जानता था कि इस समय मुझे (झाड़ू लगाना आदि) काम करने चाहिए, इस समय मुझे सेवा के काम करने चाहिए; इस समय पाठ करना चाहिए। पहले याम में भी, बीच के याम में भी और पिछले याम में भी जब जब आँख खुलती, वह शोर करता था। भिक्षुओं को नींद न आती। धर्मसभा में एकत्र हुए भिक्षु उसकी निन्दा करते —"आयुष्मानो! वह भिक्षु इस प्रकार के रतन[1] शासन में प्रव्रजित हो कर भी, न कर्तव्य जानता है, न शिक्षा जानता है, न समय जानता है और न असमय जानता है।"

शास्ता ने आकर पूछा "भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" कहने पर कहा—"भिक्षुओ! यह केवल अभी असमय शोर मचाने वाला नहीं है, पहले भी असमय हल्ला करनेवाला ही रहा है। समय असमय न जानने के कारण ही इसकी गरदन मरोड़ी जाकर यह मृत्यु को प्राप्त हुआ।"

इतना कह पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व

---

[1] बुद्ध, धर्म तथा संघ तीन रत्न हैं।

उदीच्य ब्राम्हण-कुल में जन्म ग्रहण कर सयाने होने पर, सब शिल्पों में पारङ्गत हो, चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य बन, पाँच सौ शिष्यों को शिल्प बँचवाते (सिखाते) थे। उन शिष्यों के पास समय पर बोलनेवाला एक मुर्गा था। वे उसके बाँग देने पर उठकर शिल्प सीखते थे। वह मर गया। तब वे कोई दूसरा मुर्गा ढूंढते फिरते थे। एक शिष्य ने श्मशान वन में लकड़ी इकट्ठी करते समय एक मुर्गे को देख, उसे लाकर पिंजरे में बन्द कर, पाला। वह श्मशान में बड़ा हुआ होने से यह न जानता था कि किस समय बोलना चाहिए। कभी आधी रात को बोलता, कभी अरुण उदय होने पर। शिष्य उसके बहुत रात रहते बोलने पर उसी समय शिल्प सीखना आरम्भ करने के कारण अरुणोदय तक न सीख सकते थे। नींद के मारे सीखा हुआ भी भूल जाते। बहुत प्रभात होने पर बोलने के समय पाठ करने का अवकाश ही न रहता।

शिष्यों ने सोचा, यह या तो बहुत रात रहने पर बोलता है, या बहुत दिन चढ़ने पर। इस (की मदद) से हमारा शिल्प (सीखना) समाप्त न होगा। यह सोच उसकी गर्दन मरोड़ उसे मार डाला। फिर आचार्य के पास जाकर कहा कि हमने असमय शोर मचाने वाले मुर्गे को मार डाला।

आचार्य ने कहा कि वह अशिक्षित ही वृद्धि को प्राप्त हुआ था। इसी से मरा। इतना कह यह गाथा कही—

अमातापितरि संवद्धो अनाचरियकुले वसं,
नायं कालं अकालं वा अभिजानाति कुक्कुटो ॥

[न माता-पिता से शिक्षा ग्रहण करते हुए बढ़ा, न आचार्य-कुल में ही रहा। यह मुर्गा न समय जानता था, न असमय।]

अमातापितरि संवद्धो, माता-पिता के पास उनका उपदेश न ग्रहण करता हुआ बड़ा। **अनाचरि कुले वसं** कुल में भी न रहकर आचार्य-शिक्षा न ग्रहण करने के कारण असंयमी। **कालं अकालं वा** इस समय बोलना चाहिए, इस

समय नहीं बोलना चाहिए, इस प्रकार यह मुर्गा समय असमय नहीं जानने के कारण ही मृत्यु को प्राप्त हुआ।

यह कथा सुना बोधिसत्व यावत आयु जीवित रहकर कर्मानुसार परलोक सिधारे। शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय असमय शोर मचाने वाला मुर्गा यह भिक्षु ही था। शिष्य बुद्ध-परिषद् हुए। आचार्य तो मैं था ही।

१२०. बन्धनमोक्ख जातक

"**अबद्धा तत्थ बज्झंति**" यह (धर्मोपदेश) शास्ता ने जेतवन में रहते समय **चिञ्चमाणविका** के बारे में कहा। उसकी कथा बारहवें निपात में **महापदुम जातक**[1] में आएगी। उस समय शास्ता ने 'भिक्षुओ! चिञ्चमाणविका ने न केवल अभी मुझ पर झूठा इल्जाम लगाया है, पहले भी लगाया है,' कह पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व पुरोहित के घर में जन्म ग्रहण कर सयाना होने पर पिता के मरने के बाद उसी राजा का पुरोहित हो गया।

उस राजा ने अपनी पटरानी को वर दिया था कि जो इच्छा हो माँग ले। उसने कहा, मुझे और वर दुर्लभ नहीं है, मैं यही चाहती हूँ कि अब इसके बाद आप किसी दूसरी स्त्री को कामुक-दृष्टि से न देखें। राजा ने अस्वीकार कर; लेकिन फिर-फिर जोर देने से उसके कथन को अस्वीकृत न कर सकने के कारण स्वीकार कर लिया। उसके बाद राजा ने सोलह हजार नर्तकियों में से किसी एक स्त्री की ओर भी कामुक-दृष्टि से नहीं देखा।

उस समय राजा के इलाके में बगावत फैली। इलाके के योधाओं के विद्रोहियों (चोरों) के साथ दो तीन लड़ाइयाँ लड़ (राजा के पास) पत्र भेजा कि इसके आगे हम न लड़ सकेंगे। राजा ने वहाँ जाने की इच्छा से सेना एकत्र कर देवी को बुलवा कर कहा—"भद्रे! मैं इलाके में जाता हूँ। वहाँ नाना प्रकार के युद्ध होते हैं। जय-पराजय भी अनिश्चित रहती है। वैसी जगहों में स्त्रियों

1. महादुम जातक (४७२)।

को साथ ले चल सकना कठिन है। तू यहीं रह।" उसने कहा "देव! मैं यहाँ नहीं रह सकती।" राजा के बार-बार मना करने पर बोली "अच्छा! तो एक एक योजन पर पहुँच कर मेरा कुशल-समाचार जानने के लिए एक एक आदमी भेजना होगा।" राजा ने "अच्छा" कह स्वीकार किया।

बोधिसत्त्व को नगर में छोड़, बड़ी भारी सेना के साथ नगर से निकल राजा जाते हुए एक-एक योजन पर एक-एक आदमी को भेजता कि जाओ हमारा कुशल समाचार कह रानी के दुख-सुख की खबर लाओ। वह हर आने वाले आदमी से पूछती 'राजा ने तुझे किस लिये भेजा है?' 'तुम्हारा कुशल-समाचार जानने के लिए' कहने पर 'तो आओ' कह उससे सहवास करती। राजा ने बत्तीस योजन मार्ग जाते हुए बत्तीस जनों को भेजा। उसने उन सभी के साथ वैसे ही किया। राजा ने इलाके को दबा, लोगों को निश्चिन्त कर लौटते समय भी उसी तरह बत्तीस आदमी भेजे। उसने उन बत्तीसों के साथ भी वैसे ही दुष्कर्म किया।

राजा ने (राजधानी में) पहुँच विजय-पड़ाव[1] पर रुक बोधिसत्त्व को सूचना भेजी 'नगर को (स्वागत के लिए) तैयार करे।' बोधिसत्त्व सारे नगर के साथ राज-महल को भी तैयार कराते हुए रानी के निवास-स्थान पर गया। उसने बोधिसत्त्व का सुन्दर शरीर देख संयम न कर सकने के कारण कहा—"ब्राह्मण! शया पर आ।" बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—"ऐसा मत कह। मेरे मन में राजा का गौरव भी है और मैं पाप-कर्म से डरता भी हूँ। मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

"उन चौसठ संदेश-वाहकों को तो न राजा का गौरव था, न वह पाप से डरते थे; तुझे ही राजा का गौरव है और तू ही (एक) पाप से डरनेवाला है?"

"हाँ, यदि उनको भी ऐसा होता, तो वह भी ऐसा न करते। मैं तो जान बूझकर ऐसा दुस्साहस नहीं करूँगा।"

"बहुत क्यों बकवाद करता है; यदि मेरा कहना नहीं करेगा तो तेरा सिर कटवा दूंगी।"

---

१. इलाके को जीतकर आने पर नगर से बाहर जो पड़ाव डाला जाता था, उसे 'जय खन्धावार' कहते थे।

"एक जन्म के सिर की बात क्या, यदि हजार जन्मों में हर बार भी सिर कटे तो भी मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

"अच्छा देखूंगी" कह बोधिसत्त्व को डरा रानी अपने कमरे में गयी। वहाँ अपने शरीर पर नाखून की खसोट के निशान बना, बदन पर तेल मल, मैले कुचैले कपड़े पहन बीमारी का बहाना बना कर लेट रही और दासियों को आज्ञा दी कि जब राजा पूछे, 'देवी कहाँ है ?" तो उत्तर देना 'बीमार है।'

बोधिसत्त्व राजा की अगवानी के लिए गये। राजा ने नगर की प्रदक्षिणा कर प्रासाद पर चढ़ रानी को न देख पूछा—"देवी कहाँ हैं ?" "देव! बीमार है।" राजा ने रानी के कमरे में प्रवेश कर उसकी पीठ मलते हुए पूछा "भद्रे ! तुझे क्या कष्ट है ?" रानी चुप रही। तीसरी बार (पूछने पर) राजा की ओर देखते हुए बोली—"राजन् ! तुम भी जीते हो ? मेरे जैसी स्त्री को भी स्वामी-वाली कहा जा सकता है ?"

"भद्रे ! बात क्या हैं ?"

"तुमने जिस पुरोहित को नगर की रक्षा का भार सौंपा, वह राजमहल में तैयारी के काम से यहाँ आया और अपना कहना न करने वाली मुझे मारकर अपने मन की करके गया।"

जिस प्रकार आग में नमक तथा शक्कर डालने पर चट-चट शब्द होता है, उसी प्रकार राजा क्रोध से चटचटाता हुआ रानी के कमरे से निकला और द्वारपालों तथा परिचारकों को बुलवाकर आज्ञा दी—"अरे ! जाओ, पुरोहित की बाहें पिछलीं तरफ बाँधकर, उसे बध करने योग्य मनुष्य की तरह नगर से बाहर बध करने के स्थान पर ले जाकर उसका सिर काट दो।

उन्होंने जल्दी से जाकर उसकी बाँहें पिछली तरफ करके बांध, बध-भेरी बजवा दी। बोधिसत्त्व ने सोचा "उस दुष्ट देवी ने राजा को पहले से ही फोड़ लिया। अब मैं आज अपने बल से ही अपने को मुक्त करूँगा। उसने उन लोगों से कहा—

"भो ! तुम मुझे मारते हो, तो एक बार राजा के पास ले चलकर मारना।"

"किसलिए ?"

"मैं राज कर्मचारी हूँ। मैंने बहुत कार्य किये हैं। मैं अनेक गड़े हुए खजानों को जानता हूँ। मैं ही राज्य-सम्पत्ति की देख-रेख करता हूँ। यदि मुझे राजा को न दिखाओगे, तो बहुत धन का नाश हो जाएगा। मुझे राजा को उसके धन की सूचना दे लेने पर, फिर जो करना हो करो।"

वे उसे राजा के पास ले गये। राजा ने उसे देखते ही कहा—"अरे ब्राम्हण! तूने मेरी भी शरम नहीं रखी? तूने क्यों ऐसा पाप कर्म किया?"

"महाराज! मैं श्रोत्रिय कुल में पैदा हुआ हूँ। मैंने कभी च्यूंटी तक की भी जान नहीं ली। मैंने कभी तिनके की भी चोरी नहीं की। मैंने कभी कामुक दृष्टि से किसी की स्त्री की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। मैंने कभी हँसी में भी झूठ नहीं बोला। मैंने कभी कुशाग्र से भी मद्य नहीं पिया। मैंने तुम्हारा कुछ अपराध नहीं किया। उस मूर्खा ने मुझे हाथ से पकड़ा। मेरे इनकार करने पर वह अपना किया पाप प्रगट कर, मुझे कह कमरे में चली गयी। मैं निरपराधी हूँ। हाँ, पत्र लेकर आने वाले चौसठ आदमी अपराधी हैं। देव! उन्हें बुलवा कर पूछें कि उन्होंने उसका कहना किया अथवा नहीं किया?"

राजा ने उन चौसठ जनों को बँधवा कर देवी को बुलवाकर पूछा—"तूने इनके साथ पाप किया या नहीं किया?"

"देव! किया" कहने पर उसे पीछे हाथ करके बँधवा आज्ञा दी "इन चौसठ जनों के सीस काट डालो।"

बोधिसत्त्व ने कहा—"महाराज! इनका दोष नहीं। रानी ने अपनी मरजी करवायी। यह निरपराध हैं। इसलिए इन्हें क्षमा करें। उसका भी दोष नहीं। स्त्रियों की मैथुन से सन्तुष्टि नहीं होती। यह इनका जातीय स्वभाव है। जो होना है, वही होता है। इसलिए इसे भी क्षमा करें।"

यूँ राजा को समझाकर, उन चौसठ जनों तथा उस मूर्खा को छुड़वा कर, उनको उन-उन का पद दिलवा दिया। इस प्रकार उन सबको मुक्त करवा, (उनको) अपनी-अपनी जगह प्रतिष्ठित करवा बोधिसत्त्व ने राजा से कहा—"महाराज! अन्धे मूर्खों के झूठ कहने के कारण न बाँधने योग्य पण्डितजन पीछे हाथ करके बाँधे गये; और पण्डितों के सहेतुक कथन से पिछली तरह हाथ बाँधे मनुष्य भी मुक्त हुए। इस प्रकार मूर्ख जो बाँधने के योग्य नहीं हैं, उन्हें

[जहाँ मूर्ख आदमी बोलते हैं, वहाँ मुक्त भी बँध जाते हैं, और जहाँ पण्डित-जन बोलते हैं, वहाँ बँधे हुए भी मुक्त हो जाते हैं ।]

अबद्धा, जो बँधे हुए नहीं हैं। **पभासरे**, भाषण करते हैं, बोलते हैं, कहते हैं।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने इस गाथा द्वारा राजा को धर्मोपदेश दे राजा से कहा—"मैंने जो यह दुःख भोगा, वह गृहस्थ जीवन में रहते भोगा। अब मुझे गृहस्थ रहने की जरूरत नहीं है। देव ! मुझे प्रव्रजित होने की आज्ञा दें।"

राजा से प्रव्रजित होने की आज्ञा ले रोते हुए रिश्तेदारों, तथा बहुत सी सम्पत्ति को छोड़ ऋषियों के क्रम से प्रव्रज्या ग्रहण कर बोधिसत्त्व हिमालय में रहते हुए अभिञ्ञा और समपत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय दुष्टदेवी चिञ्चमाणविका थी। राजा आनन्द था। पुरोहित तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

१३. कुसनालि वर्ग

१२१. कुसनाळि जातक

"करे सरिक्खो" यह धर्मोपदेश शास्ता ने जेतवन में रहते समय अनाथ पिण्डिक के स्थिर-मित्र के बारे में दिया।

क. वर्तमान कथा

अनाथ पिण्डिक के मित्र, सुहृद, रिश्तेदार और बन्धु इकट्ठे होकर उसे बार-बार मना करते थे--"महासेठ! यह न जाति में, न गौत्र में, न धन-धान्य में ही तेरे समान है, और न तुझसे बढ़कर ही है। तू इसके साथ क्यों मित्रता करता है? इसके साथ मित्रता मत कर।" अनाथ पिण्डिक का ख्याल था कि दोस्ती अपने से छोटे से, बराबर वाले से और श्रेष्ठतर से--सभी से करनी चाहिए; इसलिए उसने उनका कहना नहीं माना। अपनी **जमींदारी के गाँव**[1] पर जाते समय वह उसे अपनी सम्पत्ति की देखभाल करने के लिए नियुक्त कर गया। आगे की कथा **कालकण्णिकथा**[2] के अनुसार ही समझनी चाहिए। लेकिन इस कथा में अनाथ पिण्डिक के अपने घर का समाचार कहने पर शास्ता ने कहा--"हे गृहपति! मित्र कभी तुच्छ नहीं होता। मित्र-धर्म की रक्षा कर सकने का सामर्थ्य ही असल में होना चाहिए। मित्रता अपने से छोटे से भी करनी चाहिए, बराबरवाले से भी और श्रेष्ठ से भी।

---

१. भोग गाँव; जिस गाँव से गाँव का स्वामी पैदावार के रूप में अथवा अन्य किसी रूप में वसूली करता था।

२. कालकण्णि जातक (८३)।

सभी अपने सिर पर आ पड़े भार का वहन करते हैं। अब तो तू अपने स्थिर-मित्र के कारण धन का स्वामी हुआ। पुराने समय में पक्के-दोस्त के कारण विमान के स्वामी हुए।"

इतना कह, पूछने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व राजा के उद्यान में एक कुशा-घास के झुंड में के देवता हुए। उसी बाग में मंगल-शिला के सहारे सीधे तनेवाला और चारों तरफ शाखाओं तथा पत्तों से घिरा हुआ, राजा द्वारा आदृत राजा का प्रिय-वृक्ष[1] था। उसे मुक्खक भी कहते थे। उसमें एक बड़ा प्रतापी देवराज पैदा हुआ। बोधिसत्त्व से उसकी दोस्ती हो गयी।

उस समय राजा एक खम्भे वाले प्रासाद में रहता था। खम्भा फटने लगा। राजा को इसकी सूचना दी गयी। राजा ने बढ़इयों को बुलवाकर कहा "तात! मेरे एक खम्भे वाले मंगल प्रासाद का खम्भा जा रहा है। एक सारवान् खम्भा ला कर उस खम्भे को स्थिर करें।" उन्होंने 'देव! अच्छा' कह राजा के वचन को स्वीकार कर उसके अनुरूप वृक्ष ढूंढ़ना आरम्भ किया। वृक्ष न पा, राजा के उद्यान में जा उस मुक्खक वृक्ष को देख राजा के पास गये। राजा ने पूछा—

"तात! क्यों उसके अनुरूप वृक्ष देखा?"

"देव! देखा, लेकिन उसे काट नहीं सकते?"

"क्यों?"

"और कहीं वृक्ष न दिखायी देने पर हम उद्यान में गये। वहाँ मंगल-वृक्ष को छोड़ और कोई वृक्ष नहीं दिखायी दिया। उसे मंगल-वृक्ष होने के कारण नहीं काट सकते।"

"जाओ, उसे काट कर प्रासाद को मजबूत करो। हम दूसरा मंगल-वृक्ष कर लेंगे।"

---

१. रुचरुक्खो' कुछ अस्पष्ट है।

वे 'अच्छा' कह 'बलि' ले उद्यान गये और वहाँ अगले दिन काटने के लिए 'बलि' चढ़ायी। वृक्ष-देवता को जब यह पता लगा कि कल मेरा निवास-स्थान[1] नष्ट कर देंगे, तो वह सोचने लगा कि बच्चों को लेकर कहाँ जाऊँगा ? जब कोई जाने की जगह न दिखायी दी, तो पुत्रों को गले से लगाकर रोने लगा। उसके देखे-सुने परिचित वृक्ष-देवता और वन-देवताओं ने आकर पूछा—"क्या हुआ ?" समाचार जान स्वयं भी कोई ऐसा उपाय न कर सकने के कारण जिससे बढ़ई वृक्ष को न काटें, उन्होंने गले मिलकर रोना आरम्भ किया।

उसी समय बोधिसत्त्व वृक्ष-देवता से मिलने आये। वह समाचार सुन बोधिसत्त्व ने कहा—"होने दो। चिन्ता न करो। मैं बढ़इयों को वृक्ष काटने न दूंगा। कल बढ़इयों के आने के समय मेरा करतब देखना।" उस देवता को आश्वासन दे अगले दिन बोधिसत्त्व बढ़इयों के आने के समय गिरगिट का रूप बना बढ़इयों के आगे से गुजर मंगल-वृक्ष की जड़ में प्रवेश कर, उसमें खोखले वृक्ष की तरह ऊपर चढ़, स्कन्ध के बीच में से सिर निकाल उसे कँपाते हुए पड़ रहे।

प्रधान बढ़ई ने उस गिरगिट को देख वृक्ष को हाथ से ठोंक कर कहा—"यह खोखला है। निस्सार है। कल बिना बिचार किये ही 'बलि' चढ़ायी।' इस प्रकार वे उस ठोस महावृक्ष की निन्दा करते हुए चले गये।

बोधिसत्त्व की सहायता से वृक्ष-देवता विमान का स्वामी हुआ। उसके देखे-सुने परिचित बहुत से देवता उसे मुबारकबाद देने के लिए इकट्ठे हुए। वृक्ष-देवता ने 'मुझे विमान मिल गया' सोच प्रसन्न हो उन देवताओं के सम्मुख बोधिसत्त्व की प्रशंसा करनी शुरू की—"हे देवताओं ! हम ऊँचे कुल वाले होकर भी बुद्धि की कमी के कारण इस उपाय को न जानते थे। कुशा-ग्रास के देवता ने अपने बुद्धिबल से हमें विमान का स्वामी बनाया। मित्रता अपने जैसे से भी, छोटे से भी, श्रेष्ठ से भी करनी ही चाहिए। सभी अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार मित्रों पर आयी आपत्ति दूर कर उन्हें सुखी बनाते हैं।" इस प्रकार मित्र-धर्म की प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही—

---

१. विमान

करे सरिक्खो अथवापि सेट्ठो
निहीनको चापि करेय्य एको;
करेय्युं ते व्यसने उत्तमत्थं
यथा अहं कुसनाळी रुचायं ॥

[अपने समान, अपने से श्रेष्ठ अथवा अपने से कम (दर्जे वाले) के साथ भी मित्रता करे। जैसे कुशा-ग्रास (वाले) ने मुझ रुच-वृक्ष (के देवता) का (उपकार किया); उसी प्रकार वे भी विपत्ति आ पड़ने पर उपकार करते हैं।]

करे सरिक्खो—जाति आदि में जो अपने बराबर हो, उससे भी मित्रता करे। **अथवापि सेट्ठो**, जाति आदि में जो श्रेष्ठ हो, अधिक हो उससे भी (मित्रता) करे। **निहीनको चापि करेय्य एको** जाति आदि से नीच से भी मित्र-धर्म करे। इस प्रकार इन सभी को मित्र बनाना चाहिए, यह स्पष्ट करता है। क्यों? **करेय्युं ते व्यसने उत्तमत्थं**,—यह सभी मित्र पर दुःख आ पड़ने पर अपने अपने कर्त्तव्य-भार को वहन करते हुए उपकारी होते है; अर्थात् उस मित्र को शारीरिक तथा मानसिक दुःख से मुक्त करते हैं। इसलिए अपने से छोटे से भी मित्रता करनी चाहिए, दूसरों की तो बात ही क्या? यहाँ यह उपमा है। **यथा अहं कुसनाळी रुचायं**, जैसे मैं रुच में पैदा हुआ देवता और यह कुशा-ग्रास का देवता; हमने भी मित्रता की। उसमें मैं ऊँचे कुल वाला होकर भी अपने पर आयी विपत्ति को मूर्खता के कारण उपाय न जानने के कारण दूर नहीं कर सका; इस छोटे दर्जे वाले पण्डित-देवता की सहायता से दुःख से मुक्त हुआ। इसलिए और भी जो दुःख से मुक्त होना चाहे उन्हें भी चाहिए कि बराबरी अथवा श्रेष्ठता का ख्याल न कर कम दर्जे वाले से भी मित्रता करे।

रुच देवता देवता-समूह को इस गाथा द्वारा धर्मोपदेश कर आयुपर्यन्त, जीवित रह कुसनाळी देवता के साथ कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का सारांश निकाला। उस समय रुच-देवता आनन्द था। कुसनाली-देवता तो मैं ही था।

⊙

१२२. दुम्मेध जातक

"यसं लद्धान दुम्मेधो" यह (धर्म-देशना) बुद्ध ने **वेळुवन** में रहते समय **देवदत्त** के बारे में की।

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा में बैठे भिक्षु देवदत्त को दोष दे रहे थे—"आयुष्मानो ! तथागत का पूर्ण-चन्द्र सदृश शोभा वाला मुख है। वे अस्सी अनु-व्यञ्जनों तथा बत्तिस महापुरुष लक्षणों से युक्त हैं। उनके चारों ओर व्याम-भर प्रभा है। उनके शरीर से घूम-घूमकर दो-दो करके घनी बुद्ध-रश्मियाँ निकलती है। उनका शरीर अत्यन्त शोभा सम्पन्न है। ऐसे सुन्दर रूप को देखकर, देवदत्त चित्त को प्रसन्न नहीं कर सकता, ईर्ष्या ही करता है। 'बुद्ध का ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रज्ञा है, ऐसी विमुक्ति हैं, ऐसा विमोक्ष-ज्ञान दर्शन है' इस प्रकार प्रशंसा करने पर देवदत्त उनकी प्रशंसा नहीं सह सकता, ईर्ष्या ही करता है।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?" "अमुक बातचीत" करने पर "भिक्षुओ ! न केवल अभी मेरी प्रशंसा होने पर देवदत्त ईर्ष्या करता हैं, वह पहले भी करता रहा है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **मगध** देश के **राजगृह** नगर में एक मगध-नरेश के राज्य करते समय बोधिसत्त्व हाथी की योनि में पैदा हुए। उनका सारा शरीर एक दम श्वेत था और उनकी शोभा ऊपर वर्णन की गयी शोभा की ही तरह थी। 'यह लक्षणों के युक्त है' देख उसे राजा ने **बोधिसत्त्व** को मंगल-हाथी बनाया।

एक दिन किसी उत्सव के अवसर पर राजा सारे नगर को देवनगर की तरह अलंकृत करा, सब अलंकारों से सजे हुए मंगल-हाथी पर चढ़, बड़ी राजकीय शान

के साथ नगर में घूमने के लिए निकला। लोग जहाँ-तहाँ खड़े होकर मंगल-हाथी के अति सुन्दर शरीर को देख मंगल-हाथी की ही प्रशंसा करने लगे--"ओह! क्या रूप है! ओह! क्या चाल है! कैसा ढंग है! ओह! कैसे लक्षण हैं! इस प्रकार का सर्वश्रेष्ठ हाथी चक्रवर्ती राजा के योग्य है।"

राजा ने मंगल-हाथी की प्रशंसा सुन उसे न सह सकने के कारण, ईर्ष्या के वशीभूत हो सोचा, "आज ही इसे पर्वत-प्रपात से गिरवा कर मरवा डालूंगा।" फिर हथवान को बुलवा कर पूछा--

"तू ने इस हाथी को क्या (खाक) सिखाया है?"

"देव; अच्छी तरह से सिखाया है।"

"नहीं, अच्छी तरह से नहीं सिखाया, खराब सिखाया है।"

"देव! अच्छी तरह से सिखाया है।"

"यदि अच्छी तरह से सीखा, तो क्या तू इसे वेपुल्ल पर्वत के ऊपर चढ़ा ले जा सकता है?"

"'देव! हाँ।"

"अच्छा, तो आ" कह अपने उतर, हथवान को हाथी पर चढ़ा पर्वत के पास जा, हथवान के हाथी की पीठ पर बैठे ही हाथी को पर्वत के ऊपर चढ़ा ले जाने पर, आमात्यों के साथ स्वयं भी पर्वत के शिखर पर चढ़, हाथी का मुँह प्रपात की ओर करवा कहा--तू कहता है, कि मैंने इसे अच्छी तरह सिखाया है। इसे तीन ही पैरों से खड़ा कर।"

हथवान ने पीठ पर बैठे-ही-बैठे हाथी को अंकुश द्वारा इशारा किया, 'भो! तीन पैरों से खड़े हो जाओ।' वह तीन पैरों से खड़ा हो गया। तब बोला--"आगे के दो पैरों के भार खड़ा करा।" बोधिसत्त्व पिछले दोनों पैर उठा कर अगले पैरों पर खड़े हुए। "पिछले ही पैरों पर" कहने पर आगे के दोनों पैर उठा 'कर पिछले ही पैरों पर खड़े हो गये। 'एक ही पैर से' भी कहने पर तीनों पैर उठा एक ही पैर से खड़े हो गए। उसे न गिरता देख राजा ने कहा--"यदि कर सको, तो इसे आकाश में खड़ा करो।"

हथवान ने सोचा सारे जम्बूद्वीप में इस हाथी के समान सुशिक्षित हाथी नहीं है। निस्संशय यह राजा इसे प्रपात में गिरवा कर मरवाना चाहता है।

उसने हाथी के कान में कहा—"तात ! यह राजा तुझे प्रपात में गिरा कर मार डालना चाहता है। तू इसके योग्य नहीं है। यदि तुझ में आकाश-मार्ग से जाने का बल है, तो जैसे मैं बैठा हूँ वैसे ही मुझे ले आकाश में उड़ वाराणसी चल।"

पुण्य-ऋद्धि से युक्त वह हाथी उसी समय आकाश में खड़ा हो गया। हथ-वान ने कहा--'महाराज ! यह हाथी पुण्य-ऋद्धि से युक्त है। यह तेरे जैसे पुण्य-रहित दुर्बुद्धि के योग्य नहीं है। यह (किसी) पुण्यवान् पण्डित राजा के योग्य है। तेरे सदृश अपुण्यवान इस प्रकार का वाहन पा उसके गुणों को न पहचान उस वाहन को तथा सारी सम्पत्ति को नष्ट ही कर डालते हैं।' इतना कह हाथी के कन्धे पर बैठे ही बैठे यह गाथा कही--

यसं लद्धान दुम्मेधो अनत्थं चरति अत्तनो,
अत्तनो च परेसं च हिंसाय पटिपज्जति ॥

[मूर्ख आदमी सम्पत्ति को प्राप्त हो अपनी हानि करता है। वह अपनी और दूसरों की हिंसा करता है।]

यह संक्षिप्तार्थ है--महाराज ! उस प्रकार का **दुम्मेधो,** प्रज्ञाहीन आदमी परिवार-सम्पत्ति पाकर **अत्तनो अनत्थं चरति**। क्यों ? वह सम्पत्ति के मद में बेहोश हो, कुछ न जानने के कारण **अत्तनो च परेसं च हिंसाय पटिपज्जति,** हिंसा का अर्थ है क्लेश, दुःख देना, वही करता है।

इस प्रकार इस गाथा से राजा को धर्मोपदेश दे 'अब तू यहाँ रह' कह आकाश में उड़कर **वाराणसी** जाकर राजा के आँगन में आकाश में रुका। सारे नगर में एक हल्ला हो गया--हमारे राजा के पास आकाश से एक श्वेत-श्रेष्ठ हाथी आकर राजांगन पर ठहरा है। जल्दी से राजा को भी खबर दी गयी। राजा ने निकल कर कहा--यदि मेरे उपयोग के लिए आया है, तो जमीन पर उतर। बोधिसत्त्व जमीन पर उतरे। हथवान ने उतर कर राजा को प्रणाम किया। राजा ने पूछा "तात ! कहाँ से आया है ?" "राजगृह से" कह सब समाचार सुनाया।

राजा बोला—'तात ! यहाँ आकर तू ने अच्छा किया।' फिर प्रसन्न हो नगर सजवा हाथी को मंगल-हाथी घोषित किया। सारे नगर के तीन हिस्से कर, एक हिस्सा बोधिसत्त्व को दिया, एक हथवान को और एक स्वयं लिया।

बोधिसत्त्व के आने के समय से ही सारे जम्बूद्वीप का राज्य राजा को हस्तगत हो गया। वह जम्बूद्वीप का महाराज हो दान आदि पुण्य कर्म कर कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय मगध नरेश देवदत्त था। वाराणसी का राजा सारिपुत्र था। हथवान आनन्द था और हाथी तो मैं ही था।

⊙

१२३. नंगलीस जातक

"**असब्बत्थगामिं वाचं**" यह (धर्म-देशना) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय लाळुदायि स्थविर के बारे में कही——

क. वर्तमान कथा

वह धर्मोपदेश देते समय यहाँ यह कहना चाहिए, यहाँ यह न कहना चाहिए, योग्य अयोग्य नहीं जानता था। मङ्गल (बात) कहने की जगह अमङ्गल बात कहकर (दान-) अनुमोदन करता था, जैसे **तिरोकुड्डे तिट्ठन्ति सन्धिसिंघाटकेसु च**[1] अमङ्गल अनुमोदन करने की जगह **बहू देवा मनुस्सा च मंगलानि अचिन्तयुं**[2] कह 'इस प्रकार के मङ्गल-कार्य सैकड़ों हजारों करने का सामर्थ्य पैदा करो' कहता।

एक दिन धर्मसभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने चर्चा चलायी——"आयुष्मानो! लाळुदायि उचित अनुचित नहीं जानता। सर्वत्र न कहने योग्य सर्वत्र कहता है। शास्ता ने आकर पूछा——"भिक्षुओ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, लाळुदायि न केवल अभी अपनी जड़ता के वशीभूत हो बोलता हुआ उचित-अनुचित नहीं जानता। पहले भी ऐसा ही था। यह सदा ही मूर्ख रहा।"

यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

---

१. तिरोळूड्ड सुत्त, खुद्दकपाठ (खुद्दक निकाय) की पहली पंक्ति जिसका मतलब है कि प्रेत लोग आकर दीवारों के बाहर, खिड़कियों में और चौरस्तों में खड़े होते हैं।

२. मंगल सूत्र; बहुत से देवताओं और मनुष्यों ने मंगलों को सोचा।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक महाऐश्वर्यशाली ब्राह्मण कुल में पैदा हो सयाने होने पर **तक्षशिला** से सब विद्याएँ (शिल्प) सीखकर वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य हो पाँच सौ शिष्यों को शिल्प सिखाने लगा।

उस समय उन शिष्यों में एक जड़-मूर्ख शिष्य **धम्म-अन्तेवासिक**[1] होकर विद्या सीखता था। जड़ता के कारण वह कुछ न सीख सकता था। लेकिन था बोधिसत्त्व की बहुत सेवा करने वाला। दास की तरह सब काम करता था।

एक दिन बोधिसत्त्व शाम का भोजन करके लेटे थे। वह विद्यार्थी हाथ, पैर, पीठ दबा कर जा रहा था। बोधिसत्त्व ने कहा––"तात ! चारपायी के पायों को सहारा दे कर जा।" विद्यार्थी को एक पाये का सहारा मिला; दूसरे का न मिला। उसने उस एक पाये को अपनी जाँघों में कर सारी रात बिता दी। बोधिसत्त्व ने प्रातःकाल उठ उसे देख पूछा––"तात ! क्यों बैठा है ?" आचार्य ! चारपायी के पाये का सहारा न मिलने से, जाँघ में करके बैठा हूँ।"

बोधिसत्त्व का दिल भर आया। वे सोचने लगे यह मेरी बहुत सेवा करता है। लेकिन इतने विद्यार्थियों में यही मन्दमति है, शिल्प नहीं सीख सकता। मैं इसे कैसे पण्डित बनाऊँ ? तब उन्हें सूझा––एक उपाय है। मैं इस विद्यार्थी को लकड़ियाँ और पत्ते लेने के लिए भेजकर, आने पर पूछूँगा––आज तू ने क्या देखा ? क्या किया ? तब यह मुझे बताएगा कि आज यह देखा, यह किया। तब मैं इससे पूछूँगा कि जो तू ने आज देखा-किया, वह कैसा है ? वह 'ऐसा है' मुझे उपमा देकर, बातों से समझाएगा। इस प्रकार इससे नयी-नयी उपमाएँ और बातें कहलवा कर मैं इसे इस उपाय से पण्डित बना दूँगा।

तब उन्होंने उसे बुलवाकर कहा––तात ! माणवक ! अब से तू जहाँ

---

१. जो शिष्य आचार्य-दक्षिणा देने में असमर्थ होता था, वह आचार्य की सेवा करता हुआ विद्या सीखता था।

लड़की लेने वा पत्ता लेने जाए वहाँ जो देखे, जो सुने, जो खाये, पिये वह आकर मुझे कहा कर। उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

एक दिन वह विद्यार्थियों के साथ लकड़ी लेने जंगल गया। वहाँ उसने एक साँप देखा। आकर आचार्य से कहा--आचार्य, मैंने साँप देखा।

"तात! साँप कैसा होता हैं?"

"हल की फाल की तरह।"

"तात! बहुत अच्छा। तू ने सुन्दर उपमा दी। साँप हल की फाल की ही तरह होते हैं।"

बोधिसत्त्व ने सोचा--विद्यार्थी को अच्छी उपमा सूझी है। मैं इसे पण्डित बना सकूँगा।

विद्यार्थी ने फिर एक दिन जंगल में हाथी देख आकर कहा--आचार्य, मैंने हाथी देखा।

"तात! हाथी कैसा होता है?"

"हल की फाल की तरह।"

बोधिसत्त्व सोचने लगे--हाथी की सुण्ड तो हल की फाल की तरह होती है; लेकिन उसके दाँत आदि तो ऐसे-ऐसे होते हैं। मालूम होता है यह अपनी मूर्खता के कारण पृथक्-पृथक् करके वर्णन नहीं कर सकता। वे चुप रहे।

एक दिन निमन्त्रण में ऊख पाकर कहा--

"आचार्य! आज हमने ऊख खाया।"

"ऊख कैसा होता है?"

"हल की फाल की तरह।"

थोड़ी सीधी बात कहता है, सोच आचार्य चुप रहे। फिर एक दिन निमन्त्रण में कुछ विद्यार्थियों ने दही के साथ गुड़ खाया, कुछ ने दूध के साथ। उसने आकर कहा--आज! हमने दही दूध के साथ खाया।

"दूध-दही कैसा होता है?"

"हल की फल की तरह।"

आचार्य ने सोचा--इस विद्यार्थी ने साँप की हल की फाल से उपमा दी; सो तो ठीक रही। हाथी की हल की फाल से उपमा दी, वह भी सुण्ड का

ख्याल करके कहा, इससे कुछ ठीक रहा। ऊख को हल की फाल के सदृश कहा, उसमें भी खैर कुछ ठीक है। लेकिन दूध-दही तो सफेद होते हैं; जैसा बरतन होता है वैसा ही उनका आकार हो जाता है। यहाँ तो उपमा सर्वथा गलत है। इस मूर्ख को न सिखा सकूँगा। यह कह, यह गाथा कही--

असब्बत्थगामिं वाचं
बालो सब्बत्थ भासति,
नायं दधिं वेदि न नंगलीसं
दधिप्पयं मञ्ञति नंगलीसं ॥

[मूर्ख सब जगह ठीक न बैठनेवाली बात कहता है। न यह दही को जानता है, न हल की फाल को। यह दही को भी फाल समझता है।]

संक्षिप्तार्थ यूँ है--जो वाणी उपमा रूप से सर्वत्र लागू नहीं होती, वह **असब्बत्थ गामिं वाचं बालो** जड़ आदमी **सब्बत्थ भासति**। दधि कैसा होता है पूछने पर कहता है जैसे हल की फाल। इस प्रकार कहता हुआ **नायं दधिं वेदि न नंगलीसं**। क्यों? **दधिप्पयं मञ्ञति नंगलीसं,** यह दही को भी हल की फाल मानता है। अथवा दधि कहते हैं दही को। पयं कहते हैं दूध को। दधि और पय **दधिप्पयं,** यह दही और दूध को भी हल की फाल मानता है, ऐसा है यह मूर्ख। इससे क्या होगा? अपने शिष्यों को गाथा कह, उसे खर्चा दे विदा किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का सारांश निकाला। उस समय मूर्ख विद्यार्थी लाळुदायि था। चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य तो मैं ही था।

⊙

१२४. अम्ब जातक

"वायमेथेव पुरिसो" यह धर्मोपदेश बुद्ध ने जेतवन में रहते समय एक कर्त्तव्य-निष्ठ ब्राह्मण के सम्बन्ध में दिया।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती-निवासी तरुण बुद्ध शासन में बड़ी श्रद्धा से प्रव्रजित हो बहुत कर्त्तव्य-परायण था। आचार्य, उपाध्याय की सेवा का कार्य; पीने का पानी तथा खाद्य सामग्री आदि तैयार रखने का कार्य; **उपोसथ-घर**[1] तथा **जन्ताघर**[2] आदि साफ रखने का कार्य——सभी अच्छी तरह से करता। चौदह बड़े कर्त्तव्यो और अस्सी छोटे-छोटे कर्त्तव्यों——सभी को पूरा करता। विहार में झाड़ू लगाता। परिवेण में झाड़ू लगाता। घूमने-फिरने की जगह[3] में झाड़ू लगाता। विहार जाने के रास्ते को साफ रखता। मनुष्यों को पानी देता।

लोगों ने उसकी कर्त्तव्य-निष्ठा पर प्रसन्न हो, उसे पाँच सौ स्थिर निमन्त्रण दिये। बहुत लाभ-सत्कार की प्राप्ति हुई। उसके कारण बहुतों को सुख मिला। धर्मसभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने बात चलायी—आयुष्मानो! उस भिक्षु ने अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा से बहुत लाभ-सत्कार प्राप्त किया। इस एक के कारण बहुतों को सुख मिला।

शास्ता ने आकर पूछा——"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "यह बातचीत' कहने पर "भिक्षुओ, केवल अभी नहीं, पहले भी यह भिक्षु कर्त्तव्य-

---

१. जहाँ भिक्षु एकत्र होकर उपोसथ करते हैं।

२. अग्नि-शाला, जिसमें आग तापकर पसीना बहाया जाता है।

३. सिंहल प्रति में 'विक्कम-मालक' का 'वितक्कमालक' है; जो अशुद्ध प्रतीत होता है।

निष्ठ रहा है । इस अकेले के कारण पाँच सौ ऋषि फल-फूल के लिए न जाकर इस एक के द्वारा मँगवाये गये फलों से ही गुजारा चलाते रहे हैं ।" यह कह पूर्वजन्म की बात कही--

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उदीच्य ब्राह्मण कुल में पैदा हो सयाने होने पर ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो पाँच सौ ऋषियों के साथ पर्वत के नीचे रहने लगे। उस समय हिमालय प्रदेश में बड़ी गर्मी पड़ी ! जहाँ-तहाँ पानी सूख गया । पशु पानी न मिलने से कष्ट पाने लगे ।

उन तपस्वियों में से एक तपस्वी ने उन (पशुओं) के प्यास-कष्ट को देख एक वृक्ष काट, उसमें से एक द्रोणि बना, पानी उलीच कर द्रोणि भर, उन्हें पानी दिया । बहुत से पशुओं के इकट्ठे होकर पानी पीने लगने पर तपस्वी को फल-मूल लाने के लिए जाने का समय न मिला । वह निराहार रह कर भी पानी पिलाता ही रहा ।

पशुओ ने सौचा यह हमें पानी पिलाने के कारण फल-मूल के लिए जाने का समय नहीं पाता । निराहार रहने के कारण बहुत कष्ट पाता है । हम लोग एक निर्णय करें । उन्होंने सलाह की कि इसके बाद जो पानी पीने आये वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ फल-मूल अवश्य लाये ।

उसके बाद प्रत्येक पशु अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार मीठे-मीठे आम, जामुन-कटहल आदि अवश्य लाता । उसके लिए लाया हुआ फल ढाई गाड़ियाँ भर होता । पाँच सौ तपस्वी उसे ही खाते । अधिक होता, छोड़ देते ।

बोधिसत्त्व ने यह देख कहा--एक कर्त्तव्य-निष्ठ आदमी के कारण इतने तपस्वियों का बिना फल-मूल के लिए गये गुजारा चलता है । प्रयत्न करना ही चाहिए । इतना कह यह गाथा कही--

वायमेथेव पुरिसो न निब्बिदेय्य पण्डितो,
वायामस्स फलं पस्स भुत्ता अम्बा अनीतिहं ।।

[आदमी को चाहिए कि प्रयत्न अवश्य करे। पण्डित आदमी विमुख न हो। प्रयत्न के फल को देखो--आम प्रत्यक्ष खाने को मिले।]

संक्षिप्तार्थ--**पण्डितो**, अपने कर्त्तव्य की पूर्ति में वायमेथेव, विमुख न हो। क्यों? प्रयत्न के कभी निष्फल न होने के कारण। बोधिसत्त्व ने 'प्रयत्न सफल होता ही है' ऋषियों को इस प्रकार सम्बोधन करते हुए कहा **वायामस्स फलं पस्स** कैसा? **भुत्तो अम्बा अनीतिहं,** अम्ब कहने के लिए हैं, मतलब है नाना प्रकार के फल लाये गये, आम उनमें श्रेष्ठ होने से **अम्ब** कहा गया। यह जो पाँच सौ ऋषियों ने स्वयं जंगल न जा एक के लिए आये फलों को खाया, सो यह प्रयत्न का ही फल है। और वह **अनीतिहं**। इति ह (आस) इतिहास से। इतिहास से ही ग्रहण करना नहीं होता, उस फल को प्रयत्क्ष देखो।

बोधिसत्त्व ने ऋषियों को उपदेश दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का मेल बैठाया। उस समय का कर्त्तव्य-निष्ठ तपस्वी यह भिक्षु था। गण-शास्ता मैं ही था।

⊙

१२५. कटाहक जातक

"**बहुम्पि सो विकत्थेय्य** . . ." यह (धर्मोपदेश) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक शेखी बघारने वाले भिक्षु के बारे में कहा। उसकी कथा पूर्वोक्त सदृश ही है[1]।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व महाधनशाली सेठ हुए। उसकी भार्या ने पुत्र को जन्म दिया। उसकी दासी ने भी उसी दिन पुत्र उत्पन्न किया। वे दोनों साथ-साथ बढ़ने लगे। सेठ के लड़के लिखना सीखते समय, दास ने भी उसकी तख्ती ढोते हुए जाकर उसी के साथ लिखना सीखा, गिनना सीखा। दो तीन भाषाएँ (बोहार) सीखीं। क्रम से बढ़कर वह वचन-कुशल, भाषाविद्, सुन्दर तरुण हुआ। उसका नाम था कटाहक।

सेठ के घर में भण्डारी का काम करते हुए वह सोचने लगा कि यह लोग मुझसे हमेशा भण्डारी का काम नहीं लेंगे। कुछ भी दोष देखेंगे, तो ताड़ेंगे, बाँध कर दाग देंगे और दास बना कर काम लेंगे। इलाके में सेठ का मित्र एक सेठ है। क्यों न मैं सेठ की तरफ से एक चिट्ठी लेकर, वहाँ पहुँच 'मैं सेठ का लड़का हूँ' कह उस सेठ को धोखा दे, उसकी लड़की से शादी कर सुखपूर्वक रहूँ।

उसने कागज ले उस पर अपने ही लिखा—मैं अमुक नाम का (सेठ) अपने पुत्र को तुम्हारे पास भेजता हूँ। मेरा तुम्हारे और तुम्हारा मेरे साथ शादी का सम्बन्ध करना योग्य है। इसलिए आप इस लड़के को अपनी लड़की देकर वहीं बसा लें, मैं भी समय मिलने पर आऊँगा।

---

१. **भीमसेन जातक (८०)**।

फिर इस चिट्ठी पर सेठ की अँगूठी की मुहर लगा इच्छानुसार मार्ग-व्यय तथा सुगन्धियाँ और वस्त्रादि ले प्रत्यन्त देश में जा सेठ के यहाँ पहुँच प्रणाम किया।

सेठ ने उसे पूछा––तात, कहाँ से आया है ?

"वाराणसी से।"

"किसका पुत्र है ?"

"वाराणसी सेठ का।"

"किस प्रयोजन से आया है ?"

कटाहक ने कहा—यह पत्र देखकर जान लें।

सेठ ने पत्र बाँच प्रसन्न हो 'अब मेरा जीवन सफल हुआ' कह उसे लड़की दे प्रतिष्ठित किया।

कटाहक का बड़ा परिवार था। वह यवागु-खाद्य अथवा वस्त्र गन्ध आदि के लाने पर झिड़कता था—'इस तरह भी कहीं यवागु पकाया जाता है ? इस तरह भी कहीं खाद्य पकाया जाता है। और इस तरह भात ? ओह ! यह प्रत्यन्त देश के रहने वाले ! शहरी न होने से ही यह लोग न कपड़ों पर स्त्री करना जानते हैं, न सुगन्धित पदार्थों को पीसना और न फूलों को गूँथना ?'— इस प्रकार वह दर्जियों आदि की निन्दा करता।

बोधिसत्त्व ने दास को ने देख पूछा––'कटाहक नहीं दिखायी देता। कहाँ गया ?" फिर उसे ढूँढ़ने के लिए आदमियों को चारों ओर भेजा। एक आदमी ने वहाँ जा उसे देख, पहचान अपने आपको छिपाये रख लौटकर बोधिसत्त्व से कहा। बोधिसत्त्व वह वृत्तान्त सुन, 'उसने अनुचित किया, जाकर उसे लेकर आता हूँ' सोच राजाज्ञा ले बहुत से लोगों को साथ ले चले।

सेठ प्रत्यन्त देश को जा रहे हैं, यह बात सब जगह फैल गयी।

कटाहक ने जब यह सुना कि सेठ आ रहा है, तो सोचा कि वह और किसी कारण से नहीं आ रहा है। मेरे ही कारण वह आ रहा है। यदि मैं अब भाग जाऊँ तो फिर नहीं आ सकूँगा। इसलिए एक यही उपाय है कि मैं आगे जाकर स्वामी की सेवा कर उसे प्रसन्न करूँ।

उस समय से वह लोगों में बैठकर इस प्रकार बातें बनाने लगा––दूसरे मूर्ख लोग माता-पिता के किये उपकार को भूल, उसके भोजन करने के समय

उनके प्रति अपने कर्तव्य को पूरा न कर उनके साथ ही भोजन करने बैठ जाते हैं। हम तो माता-पिता के भोजन करने के समय पानी का वर्तन ले जाते हैं, थूकने का वर्तन ले जाते हैं, (दूसरे) पात्र ले जाते हैं, पानी और पंखा लेकर खड़े रहते हैं। शौच के लिए जाते समय परदे की जगह तक पानी का बरतन लेकर जाते हैं। इस प्रकार स्वामी के प्रति जो-जो दास के कर्तव्य होते हैं, उन सबको प्रकट किया।

इस तरह लोगों को समझा बोधिसत्त्व के प्रत्यन्त देश के समीप पहुँच जाने के समय अपने श्वसुर से कहा––"तात ! मेरे पिता आपके दर्शन के लिए आ रहे हैं। आप खाद्य भोज तैयार कराएँ। मैं भेंट लेकर आगे जाता हूँ।" उसने "तात ! अच्छा" कह स्वीकार किया।

कटाहक ने बहुत सी भेंट ले जाकर बहुत से लोगों के साथ जा बोधिसत्त्व को प्रणाम कर भेंट अर्पण की।

बोधिसत्त्व ने भेंट स्वीकार कर कुशल समाचार पूछ हाजरी के समय तम्बू लगवा शौच के लिए परदे की जगह में प्रवेश किया कटाहक ने अपने अनुयायियों को पीछे छोड़ा। पानी ले बोधिसत्त्व के पास पहुँचे। वहाँ उनके पानी छू चुकने पर पैरों में गिर कर कहा––'स्वामी मैं आपको जितना चाहें उतना धन दूंगा। मुझे बदनाम न करें।' बोधिसत्त्व उसकी सेवा से प्रसन्न हो बोले-–'मत डरो। मुझसे तुम्हें कुछ हानि न होगी।" इस प्रकार उसे तसल्ली दे प्रत्यन्त-नगर में प्रवेश किया। बड़ा आदर-सत्कार हुआ।

कटाहक दास की तरह से उसकी सब प्रकार की सेवा करता रहा!

एक बार जब बोधिसत्त्व सुखपूर्वक बैठे हुए थे प्रत्यन्त-देश के सेठ ने कहा–"महासेठ ! मैंने तुम्हारे पत्र को देखकर ही तुम्हारे लड़के को अपनी लड़की दे दी" बोधिसत्त्व ने कटाहक को पुत्र ही बना उस (अवसर) के योग्य प्रिय वचन कह सेठ को संतुष्ट किया। लेकिन फिर उसके बाद से वह कटाहक का मुँह नहीं देख सका।

एक दिन बोधिसत्त्व ने सेठ की लड़की को बुलाकर कहा––अम्म ! आ ! मेरे सिर में जुएँ हैं, उन्हें चुग। उसके आकर जुएँ चुगती हुई खड़ी होने पर पूछा––"अम्मा ! क्या मेरा पुत्र तेरे दुःख-सुख में आलस्य रहित हो साथ देता है ? दोनों जने मिलकर प्रसन्नता-पूर्वक रहते हो न ?"

'तात ! सेठ के पुत्र में और कोई दोष नहीं। केवल आहार की निन्दा करता है।"

"अम्म ! वह सदैव से दुःख देनेवाला है। लेकिन मैं तुझे उसका मुंह बन्द करने का मन्त्र देता हूँ। तू उसे अच्छी तरह सीख। मेरे पुत्र के भोजन की निन्दा करने के समय, जैसे सीखा वैसे ही उसके सामने खड़ी होकर कहना"—इस प्रकार एक गाथा सिखा कुछ दिन रह वाराणसी चले गये।

कटाहक भी वहुत सा खाद्य-भोज्य ले, उनके पीछे-पीछे जा वहुत सा धन देकर लौट आया।

बोधिसत्त्व के जाने के बाद से कटाहक और भी अभिमानी हो गया। एक दिन जब सेठ की लड़की नाना प्रकार के अच्छे-अच्छे भोजन ले कड़छी से परोस रही थी उसने भोजन की निन्दा आरम्भ की। सेठ की लड़की ने जैसे बोधिसत्त्व से सीखी थी, उसी प्रकार यह गाथा कही—

बहुम्पि सो विकत्थेय्य अञ्ञं जनपदं गतो,
अन्वागन्त्वान दुसेय्य भुञ्ज भोगे कटाहक ॥

[दूसरे देश में जाकर वह बहुत बकता है। फिर आकर उसे दोषी ठहरा दे; (इसका ख्याल कर) कटाहक जो भोग मिल रहा है, उसका उपभोग कर।]

बहुम्पि सो विकत्थेय्य अञ्ञं जनपद गतो, जो अपने जन्म-स्थान से किसी ऐसे दूसरे देश में गया रहता है, जहाँ उसकी जाति नहीं जानते, वह बहुत बकता है। धोका देने की ठगने की बात करता है। **अन्वागन्त्वान दूसेय्य,** इस बार स्वामी की अगवानी करके दास कर्म करने के कारण चाबुक से पीटे जा कर पीठ की चमड़ी उधेड़ी जाने से और दाग दिये जाने से बच गया। यदि अनाचार करेगा तो दुबारा आने पर तेरा स्वामी तुझे दोषी ठहरायेगा, इस घर में आकर चाबुक से सजा देगा। दाग देकर तथा तेरी जाति प्रकट करके तुझे खराब करेगा, पीटेगा। इसलिए इस अनाचार को छोड़ **भुञ्ज भोगे कटाहक** ! फिर बाद में अपना दासत्व प्रकट कराकर मत पछताना, यही यहाँ सेठ के कहने का मतलब है।

सेठ की लड़की यह सब नहीं जानती थी। वह जैसे सीखा था वैसे शब्द-मात्र कहती थी!

कटाहक ने सोचा, निश्चय से सेठ ने मेरा नाम बताकर इसे सब कह दिया होगा। उसके बाद से फिर उसकी भोजन की निन्दा करने की हिम्मत न हुई। मान-मर्दित होकर वह यथा-प्राप्त भोजन करता हुआ कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय कटाहक बकवादी भिक्षु था। वाराणसी सेठ तो मैं ही था।

⊙

१२६. असिलक्खण जातक

"**तथेवेकस्स कल्याणं**" यह (धर्मोपदेश) शास्ता ने जेतवन में रहते समय कोशल-नरेश के तलवार के लक्षण कहने वाले ब्राह्मण के बारे में दिया।

क. वर्तमान कथा

वह (ब्राह्मण) राजा के पास लोहारों के तलवार लाने के समय तलवार को सूंघकर तलवार का लक्षण बताता था। जिसके हाथ से कुछ प्राप्त हो जाता उनकी तलवार को वह सुलक्षण और माङ्गलिक कहता, जिनके हाथ से कुछ न मिलता उनकी तलवार को अमाङ्गलिक बता निन्दा करता।

एक शिल्पी तलवार बना उसके म्यान में मिर्चों का बारीक चूर्ण भर राजा के पास तलवार लाया। राजा ने ब्राह्मण को बुलवाकर कहा--तलवार की परीक्षा करें।

जब ब्राह्मण तववार निकालकर सूंघने लगा तो मिर्चों के चूर्ण के उसकी नाक को लगने से उसे छींक आयी। छींक आने से उसकी नाक तलवार से लगी; और उसके दो टुकड़े हो गये।

उसकी इस तरह नाक कटने की बात भिक्षु-संघ में प्रकट हो गयी। एक दिन धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने बात चलायी--आयुष्मानों! राजा के तलवार का लक्षण बतानेवाले ने तलवार का लक्षण बताते हुए नाक कटवा ली।

शास्ता ने आकर पूछा--भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ, इस ब्राह्मण ने न केवल अभी तलवार सूंघते हुए नाक कटवायी, पहले भी कटवायी है' कह पूर्व जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत के राज्य करने के समय, उसके यहाँ

तलवार का लक्षण कहनेवाला एक ब्राह्मण था। (इसके आगे की सारी कथा 'वर्तमान-कथा' की तरह ही है।) राजा ने उसे वैद्य के सदृश ही एक नाक बनवाकर उसे फिर अपनी सेवा में नियुक्त किया।

वाराणसी नरेश को कोई पुत्र न था। एक लड़की और एक भानजा था। उन दोनों को भी उसने अपने पास ही रख कर पाला था। एक साथ रहने के कारण वह परस्पर प्रेम में बँध गये।

राजा ने आमात्यों को बुलाकर सलाह की कि मेरा भानजा राज्य का उत्तराधिकारी है ही, इसे ही लड़की देकर इसका राज्याभिषेक कर दिया जाय। लेकिन फिर सोचा, भानजा तो हर तरह से आत्मीय है ही, इसके लिये कोई दूसरी राजकुमारी लाकर दी जाय। फिर इसका अभिषेक किया जाय। और अपनी लड़की किसी दूसरे राजा को दी जाय। इस प्रकार हमारे रिश्तेदार बहुत होंगे; और हम ही दोनों राज्यों के स्वामी होंगे। उसने मन्त्रियों की सलाह से निश्चय किया कि दोनों को पृथक्-पृथक् रखना चाहिए; एक को एक घर में दूसरे को दूसरे में रक्खा। सोलह वर्ष की अवस्था होने पर उनका परस्पर का आकर्षण और भी बढ़ गया।

राजकुमार सोचने लगा कि किस उपाय से मामा की लड़की को राज-घर से निकलवाया जा सकता है? उसे एक उपाय सूझा। एक भाग्य बतानेवाली को बुलवाकर उसने उसे एक हजार मुद्राएँ दीं। भाग्य बतानेवाली ने पूछा—"मैं क्या कर सकती हूँ।"

"अम्म! तेरे करने से सफलता निश्चित है। कोई बात कहकर ऐसी विधि लगा जिससे मेरा मामा राज-कन्या को घर से बाहर लाये।"

"स्वामी, अच्छा मैं राजा के पास जाकर कहूँगी कि तुम्हारी कन्या पर ग्रह है। इतने समय के बाद नहीं रहेगा। मैं अमुक दिन राज-कन्या को रथ पर चढ़ाकर हथियार बन्द बहुत से आदमियों को साथ ले, अनेक अनुयायियों सहित श्मशान में जाऊँगी। वहाँ मण्डल-चौकी के नीचे श्मशानशय्या पर मुर्दे को लिटा, ऊपर की शय्या पर राज-कन्या को बिठा, सुगन्धित जल के एक सौ आठ घड़ों से स्नान करवा कर ग्रह उतारूँगी; ऐसा कह कर मैं राज-कन्या को श्मशान ले जाऊँगी। तू हमारे वहाँ जाने के दिन हमसे भी पहले ही थोड़ा

मिर्चों का चूर्ण लेकर, हथियार बन्द अपने आदमियों के साथ रथ पर चढ़कर श्मशान-भूमि में जाना। वहाँ पहुँच रथ को श्मशान-द्वार पर ही एक तरफ छोड़, हथियारबन्द आदमियों को श्मशान वन में छिपा स्वयं श्मशान में जाकर वहाँ मण्डलपीठ के पास मुर्दे की तरह पट पड़ रहना। मैं वहाँ आकर तेरे ऊपर मञ्च बिछा राजकन्या को उठा उस पर सुलाऊँगी। तू उस समय मिर्च-चूर्ण को दो तीन बार नाक पर लगा छींकना। तेरे छींकने के समय हम लोग राजकन्या को छोड़ कर भाग जाएँगे। तब जाकर राजकन्या को सिर से नहला, अपने भी नहा उसे लेकर घर जाना।" उसने अच्छा कह स्वीकार किया।

राजा को जाकर जब उसने सब बात कही, तो राजा ने भी स्वीकार किया। राजकन्या से भी वह रहस्य कहा तो वह भी मान गयी। उसने बाहर निकलने के दिन राजकुमार को सूचना दे अनेक अनुयायियों के साथ जाते हुए पहरेदार आदमियों को डराने के लिए कहा--

मेरे, राजकन्या को चारपायी पर लिटाने के समय चारपायी के नीचे पड़ा हुआ मुर्दा छींकेगा; और छींकने के बाद चारपायी के नीचे से निकल जिसे पहले देखेगा उसे ही पकड़ेगा। इसलिए होशियार रहना।

राजकुमार पहले ही पहुँचकर जैसे कहा गया था, वैसे ही लेट रहा। भाग्य बतानेवाली ने राजकन्या को मण्डलपीठ की जगह पर जाते हुए 'डर मत' इशारा कर चारपायी पर लिटाया।

उसी समय कुमार ने मिर्च-चूर्ण नाक पर फेंक छींक मारी। उसके छींक मारते ही (वह) भाग्य बतानेवाली राज कन्या को छोड़ बड़ा शोर मचाती हुई सबसे पहले भागी। उसके भागने पर एक भी न ठहर सका। जिसने पास जो शस्त्र थे उन्हें छोड़ सभी भाग गए।

राजकुमार जैसे निश्चय किया गया था उसके अनुसार सब करके राजकन्या को अपने घर ले गया। भाग्य बतानेवाली ने जाकर राजा को सब हाल कहा। राजा ने स्वीकार किया बोला--यूँ भी मैंने उसे उसी के लिए पाला था। दूध में घी पड़ने जैसा हुआ। आगे चलकर (भानजे को राज्य दे अपनी कन्या को उसकी पटरानी बनाया। वह उसके साथ मेल से रहता हुआ धर्मपूर्वक राज्य करता रहा।

वह तलवार के लक्षण बतानेवाला भी उसी की सेवा में रहता था। एक दिन राज्य-सेवा में आ-सूर्य के सामने खड़े हो सेवा-कार्य करते हुए उसकी नाक की लाख पिघल गयी नकली नाक जमीन पर गिर पड़ी। वह शर्म के मारे सिर नीचा करके खड़ा हुआ!

राजा ने हँसते हुए कहा--आचार्य सोच मत करो। छींकना एक के लिए कल्याणकर होता है, दूसरे के लिए बुरा। तुम्हारे छींकने पर नाक पृथक् हो गयी; लेकिन हमने छींका तो हमें मामा की लड़की और राज्य मिला। इतना कह यह गाथा कही--

तथेवेकस्स कल्याणं तथेवेकस्स पापकं,
तस्मा सब्बं न कल्याणं सब्बं वापि न पापकं॥

[वही किसी के लिए कल्याणकारक है, वही किसी के लिए बुरा। इसलिए न सब कल्याणकारक ही है, न सब बुरा ही है।]

तथेवेकस्स तवेवेकस्स—यह भी पाठ है। दूसरे पद में भी ऐसे ही।

इस प्रकार इस गाथा द्वारा उसने वह बात कही। फिर दान आदि पुण्य-कर्म करके यथाकर्म परलोक सिधारा।

शास्ता ने इस धर्मोपदेश द्वारा लोक में जो बहुत सी अच्छी बुरी मान्यताएँ हैं उन सबका अनेकांशिक होना प्रकाशित करके जातक का मेल बैठाया।

उस समय का तलवार के लक्षण पढ़नेवाला तो यह अब का तलवार के लक्षण पढ़नेवाला ही था। हाँ भानजा-राजा मैं ही था।

⊙

१२७. कलाण्डुक जातक

"ते देसा तानि वत्थूनि. . ." यह (धर्मदेशना) शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक बकवादी भिक्षु के बारे में कही। दोनों कथाएँ (अतीत कथा तथा वर्तमान कथा) कटाहक जातक[1] की कथा की तरह ही हैं।

हाँ, इस जातक में वाराणसी के सेठ का नाम कलण्डुक था। उसके भाग कर प्रत्यन्त सेठ की लड़की से विवाह कर बड़े ठाट-बाट के साथ रहने के समय वाराणसी के सेठ के उसे ढुंढ़वाने पर भी उसके न मिलने पर, वाराणसी सेठ ने अपना पाला-पोसा एक तोते का बच्चा भेजा कि जा कलाण्डुक को खोज। तोते का बच्चा इधर-उधर घूमता हुआ उस नगर में पहुँचा।

उस समय कलण्डुक जल-क्रीड़ा करने की इच्छा से बहुत सारे माला-गन्ध-विलेपन तथा खाद्य-भोज्य ले नदी पर जा सेठ कन्या के साथ एक नौका पर बैठ पानी में खेलता था। उस देश में ऐश्वर्यशाली लोग जब जल-क्रीड़ा करते तो कोई तेज औषध मिला हुआ दूध पीते थे। उससे उनके सारा दिन भी जल में क्रीड़ा करते रहने पर उन्हें शीत नहीं लगता था। वह कलण्डक उस दूध से मुंह भर उससे कुरला कर उसे थूक देता; लेकिन उसे जल में न थूककर उस सेठकन्या के सिर पर थूकता था।

उस तोते के बच्चे ने भी नदी के किनारे एक गूलर की शाखा पर बैठ कलण्डुक को पहचान लिया और देखा कि वह सेठ कन्या के सिर पर थूक रहा है। उसने कहा—"अरे! कलण्डुक! दास! अपनी जाति और (पूर्व) निवासी-स्थान को याद कर। दूध से मुंह भर, उसका कुरला कर ऊँची जातिवाली सुख में पली हुई सेठ की कन्या के सिर पर मत थूक। तू अपनी हैसियत को नहीं देखता?" फिर यह गाथा कही—

---

१. कटाहक जातक (१२५)।

ते देसा तानि वत्थूनि अहञ्च वनगोचरो,
अनुविच्च खो तं गण्हेय्युं पिव खीरं कलण्डुक ।।

[वह देश और वस्तुएँ (=कोख)। मैं वनचर पक्षी। तुझे पहचान कर पकड़ लेंगे। कलण्डुक दूध पी।]

ते देसा तानि वत्थूनि, यह माता के कोख के बारे में कहा है। भावार्थ यह है—जहाँ तू रहा वह भी क्षत्रिय कन्या आदि की कोख नहीं रही है; अथवा जहाँ तू प्रतिष्ठित रहा है वह क्षत्रिय कन्या आदि की कोख नहीं रही है। तू दासी की कोख में रहा और प्रतिष्ठित हुआ। **अहञ्च वनगोचरो**—मैं तिरश्चीन योनि में पैदा होकर भी यह सब जानता हूँ; यह प्रकट करता है। **अनुविच्च खो तं गण्हेय्युं**, इस प्रकार अनाचार करते हुए को देख जब मैं जाकर कहूँगा तो पहचान कर वह तेरे स्वामी आकर तुझे ताड़ कर और दाग देकर पकड़ कर ले जायँगे। इसलिए अपनी हैसियत देखकर सेठ की लड़की के सिर पर बिना थूके हुए **पिव खीरं कलण्डुक**; नाम से सम्बोधन करता है कि (हे कलण्डुक दूध पी)।

कलण्डुक ने भी तोते के बच्चे को पहचानकर 'यह मुझे प्रकट कर रहा है' सोच भयभीत हो कहा—आइये। स्वामी! कब आये? तोते के बच्चे ने सोचा यह मेरा हितचिन्तक होकर नहीं बुला रहा है। यह मेरी गरदन मरोड़ कर मार डालना चाहता है। यह समझकर कहा कि मुझे तुझसे काम नहीं है-

तब वह उड़ कर वाराणसी गया और जैसे-जैसे देखा था सेठ को विस्तार-पूर्वक सब कहा।

सेठ बोला—उसने अनुचित किया। और आज्ञा दे उसे वाराणसी मँगवा दास बना कर रक्खा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का कलण्डुक यह भिक्षु था। वाराणसी सेठ तो मैं ही था।

⊙

१२८. बिळारवत जातक

"**यो वे धम्मं धजं कत्वा. . .**" यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ढोंगी भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने उसके ढोंग की चर्चा चलने पर "भिक्षुओ, केवल अब ही नहीं; पहले भी यह ढोंगी ही रहा है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने चूहे का जन्म ग्रहण किया। बड़े होने पर वह बढ़कर सूअर के बच्चे की तरह हो अनेक सौ चूहों के साथ जंगल में रहने लगा।

इधर-उधर घूमते हुए एक शृङ्गाल ने उस चूहे के समूह को देखकर सोचा कि इन चूहों को ठग कर खाऊँगा। यह सोच वह चूहों के बिल से थोड़ी ही दूर पर सूर्याभिमुख हो, मुंह खोल, हवा पीते हुए की तरह एक ही पाँव से खड़ा हुआ।

इधर-उधर भोजन के लिए घूमते हुए बोधिसत्त्व ने उसे देख सोचा, यह सदाचारी होगा और उसके पास जाकर पूछा--

"आपका भन्ते! क्या नाम है?"

"मेरा नाम है धार्मिक।"

"चारों पैर पृथ्वी पर न रख, एक ही पैर से क्यों खड़े हैं?"

"मेरे चारों पैर पृथ्वी पर रखने से पृथ्वी के लिए दूभर होगा; इसलिए एक ही पैर से खड़ा होता हूँ।"

"मुंह खोले क्यों खड़े हैं?"

"हम हवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं खाते ?"

"सूर्य की ओर मुंह करके क्यों खड़े हैं ?"

"सूर्य को नमस्कार कर रहा हूँ।"

बोधिसत्त्व ने सोचा यह सदाचारी है। उसके बाद से चूहों के समूह के साथ प्रातः सायं उसकी सेवा में जाने लगा।

उसकी सेवा कर लौटने के समय शृगाल सबसे पिछले चुहे को पकड़कर मांस खा, निगल कर, मुँह पोछ खड़ा हो जाता। क्रम से चूहों का दल कम पड़ गया। चूहे सोचने लगे कि पहले हमें यह बिल पर्याप्त न होता था, सट-सट कर खड़े होते थे; अब खुल कर खड़े होते हैं तब भी बिल नहीं भरता। क्या मामला है ? उन्होंने बोधिसत्त्व से सारा हाल कहा।

बोधिसत्त्व ने 'चूहे किस कारण कम हो गये' सोचते हुए शृगाल पर शक किया। फिर जाँच करने के लिए (शृगाल की) सेवा (से लौटने) के समय बाकी चूहों को आगे कर स्वयं पीछे रहा। शृगाल उस पर उछला। अपने को पकड़ने के लिए शृगाल को उछलता देख बोधिसत्त्व ने रुककर कहा——

"भो शृगाल ! तेरा यह व्रत धार्मिक नहीं है। तू दूसरों की हिंसा करने के लिए ही धर्म को आगे करके कहता है।" इतना कह यह गाथा कही——

यो वे धम्मं धजं कत्वा निगूळ्हो पापमाचरे,
विस्सासयित्वा भूतानि बिळारं नाम तं वतं॥

[जो धर्म की ध्वजा बनाकर, प्राणियों में विश्वास उत्पन कर छिप कर पाप करता है; उसका व्रत बिल्ला-व्रत है।]

यो वे, क्षत्रिय आदियों में कोई भी। **धम्मं धजं कत्वा**, दस कुशल धर्मों की ध्वजा बनाकर, उन्हें करता हुआ उठाकर दिखाता हुआ, **विस्सासयित्वा**, यह सदाचारी है, ऐसा विश्वास पैदा करके **बिळारं नाम तं वतं**, इस प्रकार धर्म की ध्वजा बना कर छिपकर पाप करने वाले का व्रत ढोंग कहलाता है।

———

चूहों के राजा ने इस प्रकार कहते ही कहते उछलकर उसकी गरदन पर चढ़, ठोडी के नीचे की अन्दर की गले की नली को डसकर गले की नली को फाड़ मार डाला। चूहों के दल ने रुक कर शृगाल को मुर मुर-करके खा डाला। पहले आये हुओं को ही शृगाल का मांस मिला, पीछे आये हुओं को नहीं मिला। उसके बाद चूहों का दल निर्भय हो गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का शृगाल यह ढोंगी भिक्षु था। चूहों का राजा तो मैं ही था।

१२९. अग्गिक जातक

"नायं सिखा पुञ्ञहेतु . . ." यह (गाथा) भी शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ढोंगी भिक्षु के ही बारे में कही—

ख. अतीत गाथा

पुराने समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व चूहों के राजा हो जंगल में रहते थे।

एक शृगाल जंगल में आग लगने पर जब भागने में असमर्थ रहा, तो एक वृक्ष से सिर टिकाकर खड़ा हो गया। उसके सारे शरीर के बाल जल गये। वृक्ष से लगे हुए सिर पर शिखा की तरह-से कुछ बाल बच गये। उसने एक दिन एक पर्वतीय तालाब में पानी पीते हुए अपनी छाया के साथ शिखा को देखकर सोचा अब मुझे पूंजी मिल गयी। फिर जंगल में घूमते हुए चूहों के बिल को देख 'इन्हें धोखा देकर खाऊँगा' सोच उक्त प्रकार से ही कुछ दूर पर जाकर खड़ा हो गया।

चारे के लिए घूमते हुए बोधिसत्त्व ने उसे देखकर सोचा—यह शीलवान है। और पास जाकर पूछा—

"तुम्हारा क्या नाम है?"

"मेरा नाम है अग्नि-भारद्वाज।"

"तू किसलिए आया है?"

"तुम्हारी रक्षा करने के लिए।"

"तू हमारी रक्षा कैसे करेगा?"

"मैं उँगलियों पर गिनना जानता हूँ। तुम्हारे प्रातःकाल निकल कर भोजन खोजने के लिए जाते समय 'इतने हैं' गिनकर फिर लौटने के समय गिनूंगा। इस प्रकार प्रात; सायं गिनता हुआ रक्षा करूँगा।"

"अच्छा तो मामा रक्षा कर।"

उसने स्वीकार कर उनके निकलने के समय एक, दो, तीन गिनकर फिर लौटने के समय उसी तरह गिनकर सबसे अन्तिम चूहे को खाना आरम्भ किया। शेष (कथा) पहले ही की तरह है। इस (कथा) में चूहों के राजा ने रुक कर कहा भो अग्नि भारद्वाज! तूने जो यह माथे पर शिखा रक्खी है, यह धर्म के लिए नहीं रक्खी। यह पेट के लिए रक्खी है। इतना कह यह गाथा कही--

नायं सिखा पुञ्ञहेतु घासहेतु अयं सिखा,
नंगट्ठगणनं याति अलं ते होतु अग्गिक॥

[यह शिखा पुण्य के लिए नहीं है; पेट के लिए है। तेरी गणना उँगलियों पर पूरी नहीं उतरती। अग्गिक! अब तेरी गणना बस करे।]

नंगट्ठगणनं याति, नङ्गुट्ठ गणना का मतलब है उँगलियों की गणना। यह चूहों का दल उँगलियों की गणना पर नहीं जाता है, नहीं प्राप्त होता है, नहीं पूरा उतरता है, क्षय को प्राप्त होता है। **अलं ते होतु अग्गिक** शृगाल को नाम से बुलाता है कि इतने तेरे लिए पर्याप्त हों। अब इससे आगे तू चूहे न खा पायेगा। अथवा हमारे साथ तुम्हारा रहना बन्द हुआ; अब हम साथ न बसेंगे। शेष पहले ही की तरह से है।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय भी शृगाल यही भिक्षु था। चूहों का राजा तो मैं ही था।

⊙

१३०. कोसिय जातक

"यथावाचाय भुञ्जस्सु..." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय श्रावस्ती-निवासी एक स्त्री के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह एक श्रद्धालु ब्राह्मण उपासक की ब्राह्मणी थी; बहुत दुश्चरित्र, पापिन। रात को दुराचार करती। दिन में कुछ न कर रोग का बहाना बना बड़बड़ाती हुई लेट रहती।

वह ब्राह्मण उससे पूछता––"भद्रे ! तुझे क्या कष्ट है ?"

"मुझे वायु बींधती है।"

"तो तुझे क्या-क्या चाहिए ?"

"चिकने, मीठे, अच्छे, स्वादिष्ट यागु-भात-तैल आदि।"

जो-जो वह इच्छा करती, ब्राह्मण ला-लाकर देता। दास की तरह सब काम करता। लेकिन वह ब्राह्मण के घर आने के समय लेट रहती, बाहर जाने के समय जारों के साथ गुजारती। ब्राह्मण सोचता कि इसके शरीर में चुभने-वाली वायु का अन्त होता दिखायी ही नहीं देता।

एक दिन वह गन्ध-माला आदि ले जेतवन जा शास्ता की वन्दना तथा पूजा कर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा––"क्यों ब्राह्मण दिखायी नहीं देता ?"

"भन्ते ! मेरी ब्राह्मणी के शरीर को वायु बींधती है। सो मैं उसके लिए घी-तेल तथा अच्छे-अच्छे भोजन खोजता हूँ। उसका शरीर मोटा गया है। चमड़ी निखर आयी है। लेकिन वात-रोग अन्त होता नहीं दिखायी देता। मैं उसकी सेवा में ही लगा रहता हूँ। इसीलिए यहाँ आने का अवकाश नहीं मिलता।"

शास्ता ने ब्राह्मणी के दुश्चरित्र होने की बात जान कहा––"ब्राह्मण !

इस प्रकार पड़ी हुई स्त्री के रोग के न शान्त होने पर पूर्वजन्म में भी तुझे
बुद्धिमानों ने बताया था कि यह-यह औषधि करनी चाहिए, लेकिन वह पूर्व
जन्म की बात होने के कारण तू उस पर ध्यान नहीं देता।"

उस ब्राह्मण के पूछने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व
ब्राह्मणों के एक बड़े कुल में पैदा हुए। सयाने होने पर तक्षशिला जा, वहाँ सब
विद्याएँ सीख लौटकर वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य हुए। एक सौ राजधानियों
के क्षत्रिय ब्राह्मण कुमार प्रायः उसी के पास विद्याएँ सीखते।

एक जनपदवासी ब्राह्मण ने बोधिसत्त्व से तीनों वेद और अट्ठारह विद्याएँ
सीखीं। वह वाराणसी में ही बस कर प्रतिदिन दो-तीन बार बोधिसत्त्व के
पास आता उसकी ब्राह्मणी दुश्चरित्र थी, पापिन थी। शेष सारी कथा
वर्तमान कथा ही की तरह है। हाँ, बोधिसत्त्व ने यह सुन कि 'इस कारण से
उपदेश सुनने आने का समय नहीं मिलता' और यह समझकर कि वह लड़की
उसे धोखा देकर लेट रहती है, उसके अनुकूल औषधि बताने का विचार कर
कहा—

"तात ! अब से तू उसे दूध, घी, रस आदि मत दे। गोमूत्र में त्रिफला
आदि और पाँच प्रकार के पत्ते रखकर, उनका काढ़ा बनाकर, औषधि में ताँबे
की गन्ध आने तक ताँबे के नये बर्तन में रख, रस्सी, जोत या किसी वृक्ष की
ही लता ले, उसे जाकर कहना--'यह तेरे रोग के लिए उचित दवाई है। या
तो इसे पी; नहीं तो जो भोजन तू करती है उसके अनुसार काम कर। और
यह गाथा भी कहना। यदि दवाई न पीये तो उसे रस्सी से वा जोत से अथवा
लता से कुछ प्रहार लगाकर, केशों से पकड़कर, खींचकर कोहनी से पीटना।
उसी समय उठकर वह काम करने लगेगी।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर कथनानुसार औषधि बना कहा--"भद्रे !
यह औषधि पी।"

"यह औषधि तुझे किसने कही ?"

"आचार्य ने, भद्रे !"

"इसे ले जाओ, नहीं पीऊँगी।"

ब्राह्मण ने कहा, तू स्वेच्छा से नहीं पीयेगी। रस्सी लेकर बोला, या तो रोग के अनुसार दवाई पी अथवा यवागु-भात के अनुसार काम कर।

इतना कह यह गाथा कही—

यथावाचाव भुञ्जस्सु यथाभुत्तञ्च ब्याहर
उभयं ते न समेति वाचा भुत्तञ्च कोसिये॥

[जैसे कहती है, वैसे दवाई पी, अथवा जैसे खाती है वैसे काम कर। कोसिये! तेरी वाणी और तेरे भोजन का मेल नहीं बैठता।]

यथावाचाव भुञ्जस्सु, जैसे तू कहती है वैसे खा। तू कहती है कि मुझे वात बींधता है तो उसके अनुसार खा। **यथा वाचं वा** यह भी पाठ ठीक बैठता है। यथा वाचाय, यह भी पाठ है। अर्थ सर्वत्र यही है। **यथा भुत्तञ्च ब्याहर,** जैसे खाया है उसके अनुसार काम कर। 'मैं अरोगी हूँ' कहके घर का काम कर। **यथाभुत्तञ्च,** यह भी पाठ है। मैं निरोग हूँ यह सत्य बात कह कर भी काम कर। **उभयं ते न समेति वाचा भुतञ्च कोसिये,** यह जो तेरी वाणी है कि मुझे वात बींधता है और यह जो तू अच्छे-अच्छे भोजन खाती है, यह दोनों तेरे लिए ठीक नहीं हैं। इसलिए उठकर काम कर। **कोसिये,** उसे गोत्र से सम्बोधन करता है।

ऐसा कहने पर कोसिय ब्राह्मणी ने सोचा कि अब आचार्य का ध्यान आकृष्ट हो गया है। अब मैं इसे धोखा नहीं दे सकती। अब मैं उठकर काम करूँगी। वह उठकर काम करने लगी। आचार्य ने मेरी दुश्चरित्रता जान ली। अब मैं ऐसा नहीं कर सकती। आचार्य के प्रति गौरव होने से उसने पाप-कर्म करना छोड़ दिया और शीलवान् हो गयी।

उस ब्राह्मणी ने भी सोचा कि अब मुझे सम्यक् सम्बुद्ध ने जान लिया। उसने फिर शास्ता के प्रति गौरव का भाव होने से दुराचार नहीं किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय के पति-पत्नी अब के पति-पत्नी थे। आचार्य मैं ही था।

पहला परिच्छेद

१४. असम्पदान वर्ग

१३१. असम्पदान जातक

"**असम्पदानेनितरीतरस्स** ..." यह (गाथा) शास्ता ने **वेळुवन** में रहते समय **देवदत्त** के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षु धर्मसभा में बैठे बातचीत कर रहे थे—आयुष्मानो ! देवदत्त अकृतज्ञ है। तथागत के सद्गुणों को नहीं जानता। शास्ता ने आकर पूछा—

"भिक्षुओ ! अब बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, देवदत्त केवल अभी अकृतज्ञ नहीं है, पहले भी अकृतज्ञ ही रहा है।" इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में **मगधदेश** के **राजगृह** नगर में किसी मगधनरेश के राज्य करते समय बोधिसत्त्व उस (राजा) के ही सेठ थे। उनके पास अस्सी करोड़ धन था। नाम था सङ्खसेठ। वाराणसी में भी पिळिय सेठ नामक सेठ था। उसके पास भी अस्सी करोड़ धन था। वे दोनों परस्पर मित्र थे।

उनमें से वाराणसी के पिळिय सेठ को किसी कारण से कोई खतरा आ पड़ा। तमाम जायदाद नष्ट हो गयी। वह दरिद्र हो गया। आश्रयरहित रह

गया। तब वह अपनी स्त्री को ले, सङ्खसेठ के पास आने के विचार से वाराणसी से निकल पैदल ही **राजगृह** पहुँच सङ्खसेठ के घर गया।

उसने उसे देखते ही 'मेरा मित्र आया है' पहचान गले मिल आदर सत्कार करवाया। फिर कुछ दिन बिताकर पूछा--"मित्र कैसे आये ?"

"सौम्य, मुझ पर खतरा आ पड़ा। मेरा सब धन नष्ट हो गया। मुझे सहारा दें।"

"मित्र, अच्छा डरें मत" कह उसने खजाना खुलवा, चालीस करोड़ हिरण्य दिलवा, उसके साथ अपने पास जो कुछ भी वस्त्र आदि तथा जानदार और बेजान वस्तु थी, सभी बाँटकर आधी-आधी दी। वह उस धन को ले फिर वाराणसी लौट रहने लगा।

आगे चलकर सङ्खसेठ पर भी वैसा ही खतरा आ पड़ा। उसने अपने लिए सहारा ढूंढ़ते हुए सोचा--मैंने अपने मित्र का बहुत उपकार किया। आधी जायदाद दे दी। वह मुझे देखकर त्यागेगा नहीं। मैं उसके पास चलूं।

उसने अपनी स्त्री के साथ पैदल ही वाराणसी पहुँचकर कहा--"भद्रे, तेरे लिए यह अच्छा नहीं है कि तू मेरे साथ गली-गली भटके। मैं जाकर सवारी भेजूंगा, तू पीछे उस पर बड़े ठाट से आना।" उसे एक शाला में बिठा स्वयं नगर में दाखिल हुआ। सेठ के घर पहुँच सूचना भिजवाई कि राजगृह से तुम्हारा मित्र आया है। सेठ बोला--"आ जाये।" उसे देखकर न वह आसन से उठा न स्वागत ही किया; केवल इतना पूछा--"क्यों आया है ?"

"तुम्हें देखने आया हूँ।"

"निवास स्थान कहाँ ठीक किया है ?"

"अभी कहीं ठीक नहीं हुआ है। सेठानी को शाला में बिठाकर आया हूँ।"

"यहाँ तुम्हारे ठहरने को जगह नहीं। सीधा लेकर किसी जगह पका खा कर चले जाओ। फिर मेरे पास न आना"--इतना कह अपने एक दास को आज्ञा दी कि मेरे मित्र के पल्ले में एक तूम्बा भर भूसा बाँध दो।

उसी दिन उसने एक हजार गाड़ी लाल चावल छटवाकर कोठे भरे थे। चालीस करोड़ धन लेकर आये अकृतज्ञ महाचोर ने 'मित्र को

केवल एक तुम्बा भर भूसा दिलवाया। दास एक टोकरी में तूम्बा भर भुस डाला बोधिसत्त्व के पास गया।

बोधिसत्त्व ने सोचा—यह असत्पुरुष मेरे पास से चालीस करोड़ धन पाकर अब तूम्बा भर भूसा दे रहा है। इसे लूँ अथवा न लूँ ? उसे विचार हुआ—यह तो अकृतज्ञ है, मित्रद्रोही है, कृत उपकार को भूलकर इसने मेरे साथ मैत्री-सम्बन्ध तोड़ डाला है। यदि मैं इसका दिया तूम्बा भर भूसा बुरा होने के कारण नहीं ग्रहण करता हूँ, तो मैं भी मैत्री-सम्बन्ध को तोड़नेवाला होता हूँ। इसलिए मैं इसके दिये तूम्बा भर भूसे को ग्रहण कर अपनी ओर से मैत्री-भाव की प्रतिष्ठा करूँगा।

उसने तूम्बा भर भूसे को अपने पल्ले में बाँध लिया और महल से उतर शाला को गया।

स्त्री ने पूछा—आर्य, तुम्हें क्या मिला ?

"भद्रे ! हमारे मित्र पिळिय सेठ ने हमें तूम्बा भर भूसा दे आज ही बिदा कर दिया।"

उसने रोना आरम्भ किया—आर्य ! इसे लिया ही क्यों ? क्या चालीस करोड़ धन का बदला यही है ?

बोधिसत्त्व ने कहा—भद्रे, रो मत। मैंने अपनी ओर से मैत्री-सम्बन्ध न टूटने देने के लिए, अपनी ओर से उसे बनाये रखने के लिए, ग्रहण किया है। तू क्यों सोच करती है।

इतना कह यह गाथा कही—

असम्पदानेनितरीतरस्स
बालस्स मित्तानि कली भवन्ति ॥
तस्मा हरामि भुसं अड्ढमानं
मा मे मित्ति जीयित्थ सस्सतायं ॥

[ऐसी वैसी वस्तु स्वीकार न करने से मूर्ख आदमी के मित्र मित्र नहीं रहते। इसलिए मैं अर्धमान भूसा ले आया हूँ। मेरा मैत्री-सम्बन्ध न टूटे। वह शाश्वत बना रहे।]

असम्पदानेन, परस्वर का लोप होकर सन्धि हुई है, अर्थ है ग्रहण न करने से। **इतरीतरस्स** जिस किसी अच्छी बुरी चीज के। **बालस्स मित्तानि कली भवन्ति,** मूढ़, अप्रज्ञावान् के मित्र स्खलित हो जाते हैं, मनहूस से हो जाते हैं, मतलब टूट जाते हैं। **तस्मा हरामि भुसं अड्ढमानं,** इसी कारण से प्रकट करता है कि मैं मित्र का दिया हुआ तूम्बा भर भुसा ले आया हूँ। आठ नाळि को **मान** कहते हैं। चार नाळियों को **अर्ध-मान**; और चार ही नाळियों को तूम्बा; इसीलिए कहा तूम्बा भर भूसा। **मा मे मित्ति जीयित्थ सस्सताय,** मेरे मित्र से मेरा मैत्री-भाव न टूटे। हमेशा बना रहे।

ऐसा कहने पर भी सेठानी रोती ही रही। उसी समय सङ्खसेठ द्वारा पिळिय सेठ को दिया गया एक दास शाला के दरवाजे के पास से गुजर रहा था। उसने सेठानी के रोने की आवाज सुनी। अन्दर जाकर जब उसने देखा कि उसके स्वामी हैं तो पैरों पर गिर पड़ा और रोने-चिल्लाने लगा। उसने पूछा--स्वामी! यहाँ कैसे आये? सेठ ने सब हाल कह दिया। दास बोला-"स्वामी, चिन्ता न करें। इस प्रकार दोनों को दिलासा दे अपने घर ले गया। वहाँ सुगन्धित जल से नहलाया, खिलाया। फिर अन्य सब दासों को खबर कर दी कि स्वामी आये हैं। कुछ दिन बिताकर सभी- दासों को साथ ले वह राजा के यहाँ पहुँचा और शोर किया।

राजा ने बुलाकर पूछा--यह क्या है?

उन्होंने वह सब हाल राजा को कह दिया। राजा ने उनकी बात सुन दोनों सेठों को बुलवा सङ्खसेठ से पूछा--

"महासेठ! क्या तूने सचमुच पिळिय सेठ को चालीस करोड़ धन दिया?"

"महाराज! मेरी आशा लगा जब मेरा मित्र मेरे पास राजगृह आया तो मैंने उसे न केवल चालीस करोड़ धन ही दिया बल्कि जितना भी मेरे पास धन था, चाहे जानदार चाहे बेजान सभी के दो बराबर हिस्से कर एक हिस्सा दिया।"

राजा ने पिळिय सेठ से पूछा--क्या यह सच है?

"देव! हाँ ठीक है।"

"तेरी ही आशा लगाकर तेरे पास आने पर तूने इसका कोई सत्कार सम्मान किया ?"

वह चुप रहा।

"तूने तुम्बा भर भूसा इसके पल्ले में डलवा दिया है ?"

उसे भी सुनकर वह चुप ही रहा।

राजा ने मन्त्रियों के साथ सलाह करके कि क्या करना चाहिए, सेठ की निन्दा कर आज्ञा दी—जाओ, पिळिय सेठ के घर में जितना धन है, वह सब सङ्खसेठ को दे दो।

बोधिसत्त्व ने कहा—महाराज ! मुझे पराया धन नहीं चाहिए। जितना धन मैंने दिया है, उतना ही दिलवा दें।

राजा ने बोधिसत्त्व का धन दिलवा दिया।

बोधिसत्त्व ने अपना दिया हुआ सब धन ले, दास-समूह सहित राजगृह जाकर कुटुम्ब बसाया। फिर दान आदि पुण्य कर्म करते हुए कर्मानुसार परलोक सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पिळिय सेठ देवदत्त था। सङ्खसेठ तो मैं ही था।

⊙

१३२. पञ्चगरुक जातक

"**कुसलूपदेसे धितिया दळ्हाय च....**" यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय अजपाल न्यग्रोध (वृक्ष) के नीचे मार-कुमारियों द्वारा प्रलोभित किये जाने के सूत्र के बारे में कही। भगवान् आरम्भ से ही ऐसे थे—

दद्दल्लमाना आगञ्छुं तण्हा च अरती रगा,
ता तत्थ पनुदी सत्था तुलं भट्ठंव मालुतो ॥[१]

[तण्हा, अरति और रगा (मारकन्याएँ) प्रकाश फैलाती हुई आयीं। शास्ता ने उनको ऐसे दूर भगा दिया जैसे हवा उड़ती हुई रुई को।]

इस प्रकार उस सूत्र को अन्त तक कहने के समय धर्म-सभा में एकत्र हुए भिक्षुओं ने बातचीत चलायी—आयुष्मानों, सम्यक् सम्बुद्ध के पास मारकन्याएँ सैकड़ों प्रकार के दिव्य रूप बनाकर लुभाने के लिए आयीं। लेकिन उन्होंने आँख खोलकर भी नहीं देखा। अहो! बुद्ध-बल अद्भुत है। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, इस समय मेरे सभी आश्रवों को नष्ट कर सर्वज्ञता प्राप्त किये रहने पर मारकन्याओं के न देखने में कुछ भी आश्चर्य नहीं है। पूर्व समय में बुद्धत्व-प्राप्ति की खोज में लगे हुए रहने पर, चित्त-मैल के रहते हुए भी निर्मित दिव्य-रूप को आँख उघाड़कर कामुक भाव से न देख, जाकर महाराज्य प्राप्त किया था। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व सौ

---

१. संयुत्त-निकाय, मार-संयुत्त।

भाइयों में सबसे छोटे थे। सारी कथा उपरोक्त **तक्कसिला जातक**[1] के अनुसार विस्तारपूर्वक कहनी चाहिए।

उस समय तक्षशिला नगर निवासियों ने नगर के बाहर शाला में (बैठे हुए) बोधिसत्त्व के पास जा, स्वीकृति ले उन्हें राज्य का भार सौंप अभिषेक किया। फिर उन्होंने नगर को देवनगर की तरह तथा राजभवन को इन्द्रभवन की तरह अलंकृत किया।

उस समय बोधिसत्त्व नगर में प्रविष्ट हो राजभवन के महल के ऊँचे तल पर श्वेत-छत्र के नीचे श्रेष्ठ रतन-सिंहासन पर चढ़ देवेन्द्र की तरह बैठे। आमात्य, ब्राह्मण, गृहपति आदि तथा सभी अलंकारों से अलंकृत क्षत्रियकुमार उसे घेर कर खड़े थे। देव-अप्सराओं के समान नृत्य-गीत तथा वाद्य में कुशल, उत्तम हाव-भाव वाली, सोलह हजार नर्तकियों ने गाना-बजाना किया। गाने-बजाने के शब्द से सारा राजभवन ऐसा गूँज गया जैसे मेघ के शब्द से महासमुद्र की कोख भर जाय।

तब बोधिसत्त्व को विचार हुआ——यदि मैं उन यक्षिणियों के बनाये हुए दिव्य-रूप को देखता तो मैं मृत्यु को प्राप्त होता और मुझे यह वैभव न देखने मिलता। प्रत्येक-बुद्धों के उपदेशानुसार चलने से मुझे इसकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार सोच उल्लास-वाक्य कहते हुए यह गाथा कही——

कुसलूपदेसे धितिया दळ्हाय च
अवत्थितत्ताभयभीरुताय च,
न रक्खसीनं वसमागमिम्हा
स सोत्थिभावो महता भयेन मे॥

[सदुपदेश पर दृढ़तापूर्वक स्थिर रहने से तथा भय-भीरुता को मन में स्थान न देने से हम राक्षसियों के वश में नहीं आये। मैं बड़े भारी भय से बच गया (सकुशल रहा)।]

---

[1] तक्कसिला = तेलपत्त जातक (९६)

कुसलूपदेसे; समर्थ लोगों के उपदेश से; प्रत्येक-बुद्धों के उपदेशानुसार (चलकर)। **धितिया दळ्हाय च**, दृढ़ धृति से वा स्थिर अखण्डित वीर्य से। **अवत्थितत्ताभयभीरुताय च**, भय-भीरुता को मन में स्थान न देने से, भय कहते हैं चित्त का डर मात्र और भीरुता शरीर को कँपा देनेवाला भय। यह दोनों बोधिसत्त्व को यह देखकर भी कि यक्षिणियाँ मनुष्यों को खा जाती हैं--इस भय के कारण के उत्पन्न होने पर भी नहीं हुए। इसीलिए कहा है **अवत्थितत्ताभयभीरुताय च**। भयभीरुता के न होने से अर्थात् भयभीरुता का कारण उपस्थित होने पर भी पीछे न लौटने से। **न रक्खसीनं वसमागमिम्हा**, यक्ष-कान्तार में उन राक्षसियों के वश में नहीं आया। क्योंकि सदुपदेश में हमारी स्थिति स्थिर और दृढ़ थी। भयभीरुता के न होने से पीछे न लौटने वाले हुए; इसलिए राक्षसियों के वश में नहीं आये--यही भाव है **स सोत्थिभावो महता भयेन मे** सो आज मुझे यह बड़े भारी भय से, राक्षसियों से प्राप्त होनेवाले दुःख दौर्मनस्य से छुटकारा मिला, कल्याण हुआ, प्रीतिसौमनस्य-भाव पैदा हुआ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व इस गाथा से धर्मोपदेश कर धर्मानुसार राज्य कर दानादि पुण्य करते हुए कर्मानुसार परलोक गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। मैं उस समय तक्षशिला जाकर राज्य प्राप्त करनेवाला कुमार था।

⊙

१३३. घतासन जातक

"खेमं यहि..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही।

क. अतीत कथा

वह भिक्षु बुद्ध से **कर्मस्थान** ग्रहण कर, प्रत्यन्त-देश में जा, एक गाँव के पास एक आरण्यक निवासस्थान में रहने लगा। पहले ही महीने में जब वह भिक्षा माँगने गया था, उसकी **पर्णकुटी** में आग लग गयी। निवासस्थान के अभाव में कष्ट पाते हुए उसने उपस्थापकों से कहा। वे बोले—'अच्छा, भन्ते पर्णशाला बनाएँगे। अभी तो हल जोत रहे हैं। अभी बो रहे हैं।' इस प्रकार कहते-कहते उन्होंने तीन महीने बिता दिये।

निवासस्थान की अनुकूलता न होने से वह भिक्षु कर्मस्थान को पूरा नहीं कर सका। उसे **निमित्त**[1] तक प्राप्त नहीं हुआ। वर्षावास की समाप्ति पर वह जेतवन गया और वहाँ शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने उसके साथ बातचीत करते हुए पूछा—क्यों भिक्षु! तेरा कर्मस्थान सफल हुआ? उसने आरम्भ से लेकर प्रतिकूलता की सब बात कही। शास्ता ने कहा—भिक्षु! पूर्व समय में जानवरों ने भी अपनी अनुकूलता प्रतिकूलता देख, अनुकूल रहने पर उस जगह रह, प्रतिकूल प्रतीत होने पर उसे छोड़ दिया और दूसरी जगह चले गये। तूने क्यों अपनी अनुकूलता प्रतिकूलता न समझी? फिर उसके पूछने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. वर्तमान कथा

पूर्वकाल में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व पक्षी होकर पैदा

---

१. ध्यान के विषय (object) का आँख बन्द कर लेने पर दिखायी देने वाला आकार।

हुए। बड़े होने पर सौभाग्यशाली पक्षि-राजा हो एक जंगल में, एक तालाब के किनारे शाखा-प्रशाखाओं से युक्त तथा बहुत पत्तोंवाले एक महान्-वृक्ष पर अनेक अनुचरों सहित रहने लगे। बहुत से पक्षी पानी पर फैली हुई शाखाओं पर रहते हुए अपनी बीट पानी में गिरा देते थे।

उस तालाब में एक प्रचण्ड नागराज रहता था। उसके मन में आया कि यह पक्षिगण मेरे निवासस्थान तालाब में बीट गिराते हैं। मैं पानी में से आग पैदा कर इस वृक्ष को जला इन्हें यहाँ से भगाऊँ। उसने क्रुद्ध हो रात को जिस समय सब पक्षिगण इकट्ठे हो वृक्ष की शाखाओं पर सो रहे थे, पहले चूल्हे पर रक्खे पानी की तरह बुलबुले पैदा कर, दूसरी बार धुआँ उठा, तीसरी बार ताड़ के वृक्ष जितनी ऊँची ज्वाला उठायी। बोधिसत्त्व ने कहा—"पक्षिगण! आग से जलने पर पानी से बुझाया जाता है, लेकिन अब पानी ही जलने लगा है इसलिए यहाँ नहीं रह सकते। अन्यत्र चलें।" इतना कह, यह गाथा कही—

खेमं यहिं तत्थ अरी उदीरितो
उदकस्स मज्झे जलते घतासनो,
न अज्ज वासो महिया महीरुहे
दिसा भजव्हो सरणज्ज नो भयं॥

[जहाँ कल्याण था, वहीं शत्रु पैदा हो गया। पानी में आग जलने लगी। आज पृथ्वी से उगे वृक्ष पर रहना नहीं होगा। (किसी दूसरी) दिशा को चलो। जिस जगह हमने शरण ली थी वहीं से भय पैदा हो गया।]

खेमं यहिं तत्थ अरी उदीरितो, जिस पानी में हमारा कल्याण था, जहाँ निर्भयता थी, वहीं से विरोधी, शत्रु पैदा हो गया। **उदकस्स,** पानी के, **घतासनो**, अग्नि। वह घृत खाती है, इसीलिए घृतासन कहलायी। **न अज्ज वासो,** आज हमारा रहना नहीं है। **महिया महीरुहे,** महीरुह कहते हैं वृक्ष को, जाओ इस पृथ्वी में से पैदा हुए वृक्ष में। **दिसा भजव्हो**, दिशाओं में जाओ। **सरणज्ज नो भयं,** आज हमारे शरणस्थान से ही भय पैदा हो गया। प्रतिशरणस्थान ही भय का जनक हो गया।

ऐसा कह बोधिसत्त्व अपना कहना मानने वाले पक्षियों को लेकर अन्यत्र चले गये । बोधिसत्त्व का कहना न मान जो पक्षिगण वहीं रहे वह मर गये ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, चार आर्य-सत्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाया । आर्य-सत्यों के प्रकाशन के अंत में वह भिक्षु अर्हत् हो गया ।

उस समय बोधिसत्त्व का कहना मानने वाले पक्षिगण, बुद्ध-परिषद् हुए । पक्षि-राजा तो मैं ही था ।

⊙

१३४. ज्ञानसोधन जातक

"**ये सञ्ञिनो**..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय **संङ्कस्स** नगर-द्वार पर संक्षेप से पूछे गये प्रश्न की धर्मसेनापति (सारिपुत्र) द्वारा विस्तृत व्याख्या के बारे में कही। अतीत कथा इस प्रकार है—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने एकान्त जंगल में मृत्यु को प्राप्त होते समय शिष्यों के पूछने पर सक्षेप से उत्तर दिया——नेवसञ्ञानासञ्ञी...तपस्वियों को ज्येष्ठ-शिष्य की बात समझ में नहीं आयी। बोधिसत्त्व ने आभास्वर (-लोक) से आ आकाश में ठहर यह गाथा कही—

ये सञ्ञिनो तेपि दुग्गता
येपि असञ्ञिनो तेपि दुग्गता,
एतं उभयं विवज्जय
तं समापत्तिसुखं अनंगण ॥

[जो सञ्ञि हैं, उनकी भी दुर्गति है। जो असञ्ञि हैं, उनकी भी दुर्गति है। इन दोनों को छोड़कर समापत्ति सुख-दोष रहित है।]

ये सञ्ञिनो, नेवसञ्ञानासञ्ञी प्राणियों को छोड़ शेष चित्त वाले प्राणियों से मतलब है। **तेपि दुग्गता,** उस समापत्ति के न होने से वह भी दुर्गति-प्राप्त हैं। **येपि असञ्ञिनो,** असञ्ञा-भव में पैदा होने वाले चित्त-रहित प्राणियों से मतलब है। **तेपि दुग्गता,** वे भी इसी समापत्ति को प्राप्त किये न रहने से दुर्गति-प्राप्त हैं। **एतं उभयं विवज्जय**। इन दोनों सञ्ञि-भाव तथा असञ्ञि-भाव को छोड़, त्याग——यह शिष्यों को उपदेश देता है। **तं समापत्ति सुखं**

अनंगणं—नेवसञ्ञानासञ्ञा-यतन को प्राप्त करने वालों के शान्त होने के कारण उसे सुख कहा, ध्यान-सुख अङ्गण-रहित, दोष-रहित होता है। चित्त की बहुत एकाग्रता होने से भी वह अङ्गण-रहित कहलाया।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने धर्मोपदेश दिया। फिर शिष्य की प्रशंसा कर ब्रह्मलोक गये। तब बाकी तपस्वियों की ज्येष्ठ-शिष्य के प्रति श्रद्धा बढ़ी।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ज्येष्ठ-शिष्य सारिपुत्र था; महाब्रह्मा तो मैं ही था।

⊙

१३५. चन्दाभ जातक

"**चन्दाभं....**" यह (गाथा) भी शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय **संकस्स** नगर के द्वार पर स्थविर के प्रश्न-की-व्याख्या के ही बारे में कही——

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने एकांत जंगल में मृत्यु को प्राप्त होने के समय शिष्यों के पूछने पर **चन्दाभं सुरियाभं** कहा। वह मरकर आभस्वर-लोक में उत्पन्न हुए। तपस्वियों ने ज्येष्ठ-शिष्य की बात पर विश्वास नहीं किया। बोधिसत्त्व ने आकर आकाश में उपस्थित हो यह गाथा कही——

चन्दाभं सुरियाभञ्च योध पञ्ञाय गाधति,
अवितक्केन झानेन होति आभस्सरूपगो ।।

[जो प्रज्ञा से सूर्याभा तथा चन्द्राभा पर स्थिर होता है, वह वितर्क-रहित ध्यान से आभस्वर-लोक में उत्पन्न होता है।]

चन्दाभं का मतलब है **श्वेत-कसिण**। **सुरियाभं** का पीत-कसिण। **योध पञ्ञाय गाधति,** जो आदमी इस संसार में इन दोनों **कसिनों** की प्रज्ञा से भावना करता है, उन्हें आलम्बन बनाकर उनमें प्रवेश करता है, उनमें प्रतिष्ठित होता है। अथवा **चन्दाभं सुरिया भञ्च योध पञ्ञाय भावति,** जहाँ तक सूर्य तथा चन्द्रमा की आभा फैली है, उस सारे स्थान में **परिभाग-कसिन**[1] को बढ़ाकर उसी को आलम्बन बनाकर ध्यान का अभ्यास करनेवाला दोनों आभाओं की

---

१. **परिभाग-कसिण = पटिभाग-निमित्त (अभिधम्मत्थ संगहो ६।१८)**

प्रज्ञा से भावना करता है। इसलिए यह भी ठीक अर्थ है। **वितक्केन ञानेन होति आभस्सरूपगो,** वह मनुष्य वैसा अभ्यास करने से द्वितीय-ध्यान को प्राप्त हो, आभरस्वर-ब्रह्मलोक प्राप्त होता ही है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व तपस्वियों को समझाकर तथा ज्येष्ठशिष्य की प्रशंसा कर ब्रह्मलोक गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ज्येष्ठ-शिष्य सारिपुत्र थे और महाब्रह्मा तो मैं ही था।

१३६. सुवण्णहंस जातक

"**यं लद्धं तेन तुट्ठब्बं....**"यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय थुल्ल-नन्दा भिक्षुणी के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक उपासक ने भिक्षुणी संघ को लहसुन लेने का निमन्त्रण दिया और अपने खेत वाले को आज्ञा दी कि यदि भिक्षुणियाँ आयें तो एक एक भिक्षुणी को दो तीन गाँठ लहसुन दे। उसके बाद से भिक्षुणियाँ उसके घर भी और खेत पर भी लहसुन के लिए जानें लगीं।

एक उत्सव के दिन उस (उपासक) के घर में लहसुन समाप्त हो गया। थुल्लनन्दा भिक्षुणी औरों को साथ ले घर गयी और बोली-आयुष्मानों, लहसुन की आवश्यकता है।

--आर्ये, लहसुन नहीं है। लाया हुआ ससाप्त हो गया। खेत पर जाएँ।

वह खेत पर गयी और बेअंदाज लहसुन लिवा लायी।

खेत वाला खीझा--यह क्या है कि भिक्षुणियाँ अन्दाज न कर बे--अन्दाज लहसुन ले जाती हैं।

उसे यह कहना सुन जो अल्पेच्छ भिक्षुणियाँ थीं वह असंतुष्ट हुईं और उनसे सुनकर भिक्षु भी असंतुष्ट हुए। उन्होंने खीझकर भगवान् से यह बात कही। भगवान् ने थुल्लनन्दा भिक्षुणी की निन्दा कर कहा—

"भिक्षुओ, लालची (= महेच्छ) आदमी जिस माँ ने जन्म दिया है, उसके लिए भी अप्रिय हो जाता है। वह अप्रसन्नों को प्रसन्न नहीं कर सकता। प्रसन्नों को अधिक प्रसन्न नहीं कर सकता। अप्राप्त वस्तु को प्राप्त नहीं कर सकता। प्राप्त वस्तु को सँभाल कर नहीं रख सकता। अल्पेच्छ आदमी अप्रसन्नों को प्रसन्न कर सकता है। प्रसन्नों को अधिक प्रसन्न कर सकता है। अप्राप्त वस्तु को प्राप्त कर सकता है। प्राप्त वस्तु को बनाये रख सकता है।"--इस प्रकार

भिक्षुओं को उनके योग्य उपदेश दे फिर कहा 'भिक्षुओं, थुल्लनन्दा अभी लोभी नहीं है, पहले भी लोभी ही रही है।' इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। उनके बड़े होने पर उनके समान जाति-कुल से उन्हें एक भार्या ला दी गयी। उससे उसे नन्दा, नन्दवती और नन्दसुन्दरी तीन लड़कियाँ हुई। उनका विवाह होने से पूर्व ही बोधिसत्त्व मर कर स्वर्णहंस होकर पैदा हुए। उन्हें पूर्व-जन्म-स्मृति का ज्ञान भी रहा।

उसने बड़े होने पर सोने के परों से ढके हुए परम सौभाग्यवान् अपने शरीर को देखकर विचार किया कि मैं कहाँ से मरकर यहाँ पैदा हुआ हूँ? उसे मालूम हुआ कि मनुष्य-लोक से। फिर विचार किया कि ब्राह्मणी और लड़कियों का जीवन-यापन कैसे होता है? उसे पता लगा कि दूसरों की मजदूरी करके बड़े कष्ट से जीवन-यापन करती हैं। तब उसने सोचा कि मेरे सोने के पर ठोस[1] हैं। इनमें से मैं एक-एक पर उन्हें दूँ। इससे मेरी भार्या और लड़कियाँ सुखपूर्वक जीएँगी। वह वहाँ पहुँच घर के शहतीर के एक सिरे पर बैठे।

ब्राह्मणी और लड़कियों ने बोधिसत्त्व को देखकर पूछा—स्वामी कहाँ से आये?

"मैं तुम्हारा पिता हूँ। मरकर स्वर्ण-हंस होकर पैदा हुआ हूँ। तुम्हें देखने के लिए आया हूँ। इसके बाद तुम्हें दूसरों की मजदूरी करते हुए कष्ट-पूर्वक जीवन-यापन करने की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हें अपना एक एक पर दिया करूँगा। उसे बेच-बेच कर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करना।"

इतना कह वह एक पर देकर उड़ गया। इसी प्रकार वह बीच बीच में आकर एक एक पर देता। ब्राह्मणियाँ धनी और सुखी हो गयीं।

एक दिन उस ब्राह्मणी ने लड़कियों से बुलाकर सलाह की—'अम्म! जानवरों के दिल का पता नहीं। हो सकता है कि कभी तुम्हारा पिता न आये। इसलिए उसके इस बार आने पर हम उसके सभी पर उखाड़ लें।'

---

१. कूटे और रगड़े जा सकते हैं।

उन्होंने अस्वीकार किया। वे बोलीं--इस प्रकार हमारे पिता को कष्ट होगा।

ब्राह्मणी ने लालची होने के कारण फिर एक दिन स्वर्ण-राजहंस के आने पर कहा--स्वामी आयें।

जब उसने देखा कि वह उसके पास आ गया है, तो दोनों हाथों से पकड़कर उसके सब पर नोच लिये। सभी पर बोधिसत्त्व की इच्छा के बिना जबर्दस्ती लिए जाने के कारण बगुले के पंख सदृश हो गये।

अब बोधिसत्त्व पंख पसारकर उड़ न सके। उसने उन्हें मटके में रखकर पाला। उनके जो नये पर निकले वह श्वेत ही निकले। पंख निकलने पर वह उड़कर अपने स्थान पर चले आये, और फिर वहाँ नहीं गये।

शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात सुनाकर कहा--भिक्षुओ, थुल्लनन्दा अभी लालची नहीं रही है। पहले भी लालची रही है। लालच के ही कारण स्वर्ण से हाथ धोया। अब अपने लालच के कारण लहसुन से भी हाथ धोयेगी। इसके बाद अब लहसुन खाना न मिलेगा। जैसे थुल्लनन्दा को वैसे ही उसके कारण दूसरी भिक्षुणियों को भी। इसीलिए बहुत मिलने पर भी अपना अन्दाजा जानना चाहिए। थोड़ा मिलने पर जितना मिले उसी से सन्तोष करना चाहिए। अधिक की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

इतना कह यह गाथा कही--

यं लद्धं तेन तुट्ठब्बं अतिलोभो हि पापको,
हंसराजं गहेत्वान सुवण्णा परिहायथ ॥

[जो मिले उससे संतुष्ट रहना चाहिए। अतिलोभ करना पाप है। हंसराज को पकड़कर स्वर्ण से हाथ धोया।]

तुट्ठब्बं का मतलब है संतोष करना चाहिए।

इतना कह शास्ता ने अनेक प्रकार से निन्दा कर नियम बना दिया कि जो भिक्षुणी लहसुन खाये उसे पाचित्तिय (-दोष) लगे[1]।

फिर जातक का मेल बैठाया। उस समय की ब्राह्मणी यह थुल्लनन्दा हुई। तीन लड़कियाँ इस समय की तीन बहनें। स्वर्ण-राजहंस तो मैं ही था ⊙

---

१. **भिक्खुणी-पातमोक्ख।**

१३७. बब्बु जातक

"**यत्थेको लभते बब्बु...**"शास्ता ने इसे जेतवन में विहार करते समय काणमाता के शिक्षा-पद[1] के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में अपनी कानी लड़की के कारण काण-माता कहलाने वाली एक श्रोतापन्न आर्य-श्राविका थी। उसने अपनी कानी लड़की को एक गामड़े में समान जाति के किसी आदमी को दिया। काणा किसी काम से माँ के घर आयी।

कुछ दिन बीतने पर उसके स्वामी ने दूत भेजा--मैं चाहता हूँ कि काणा आवे। काणा चली आवे।

काणा ने दूत की बात सुन, माँ से पूछा--माँ! जाती हूँ।

काण-माता ने सोचा कि इतने दिन रहकर खाली हाथ कैसे जायेगी, इसलिए पुए पकाने लगा।

उस समय एक **पिण्डपातिक**[2] भिक्षु उसके घर आया। उपासिका ने उसे बिठाकर पात्र भर पुए दिलवाये। उसने निकल दूसरे (भिक्षु) से कहा। उसे भी वैसे दिलवाये। उसने भी निकलकर दूसरे से कहा। उसे भी वैसे ही। इस प्रकार चार जनों को पुए दिलवाये। सब तैयार पुए समाप्त हो गये। काणा का जाना नहीं हुआ।

---

१. पाचित्तिय के भोजन-वर्ग का चौथा शिक्षापद।

२. जो भिक्षु केवल भिक्षा से ही निर्वाह करता है, निमन्त्रण आदि ग्रहण नहीं करता।

उसके स्वामी ने दूसरा दूत भेजा और दूसरे के बाद तीसरा भेजा। तीसरे दूत के हाथ उसने कहला भेजा कि यदि काणा नहीं आयेगी तो मैं दूसरी भार्या ले आऊँगा। तीनों बार उसी तरह जाना न हो सका। काणा का स्वामी दूसरी स्त्री ले आया। काणा ने जब यह सुना तो रोने लगी।

शास्ता को पता लगा तो पहन कर पात्र-चीवर ले, काण-माता के घर जा बिछे आसन पर बैठ कर पूछा—

"यह क्यों रोती है ?"

"इस कारण से।"

शास्ता ने धर्मकथा कह काणा-माता को दिलासा दिया। फिर उठकर बिहार को गये।

उन चार भिक्षुओं को तीन बार तैयार पुए ले आकर काणा के गमन में बाधक होने की बात भिक्षुसंघ में प्रकट हो गयी।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलायी—आयुष्मानों ! चार भिक्षु तीन बार काण-माता के यहाँ तैयार किये सब पुए खा गये। इससे काणा का जाना रुक गया। स्वामी ने लड़की को छोड़ दिया। अब इससे महाउपासिका के मन को बहुत दुःख हुआ है।

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओं, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"
"अमुक बातचीत।"

भिक्षुओं उन चार भिक्षुओं ने काण-माता का खाकर केवल अब ही उसे दुःख नहीं दिया है, पहले भी दिया है। इतना कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व पत्थर-कट कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर वह अपने शिल्प में पारङ्गत हो गये।

काशी देश के एक कस्वे में एक बड़ा धनवान् सेठ था। उसका गड़ा हुआ खजाना ही चालीस करोड़ का सोना था।

उसकी स्त्री मरी तो वह धन के स्नेह से चुहिया होकर पैदा हुई और उस खजाने पर रहने लगी। इस प्रकार वह कुल नष्ट हो गया। वंश उजड़ गया। वह गाँव भी ध्वस्त हो नामशेष रह गया।

उन दिनों बोधिसत्त्व जहाँ पहले गाँव था उसी जगह के पत्थर उखाड़कर उन्हें तराशते थे। उस चुहिया ने अपने आसपास बोधिसत्त्व को बार-बार आते-जाते देखा तो उसके मन में स्नेह पैदा हो गया। उसने सोचा मेरा बहुत-सा धन निष्प्रयोजन नष्ट हुआ जाता है। मैं और यह इकट्ठे मिलकर इस धन को खायेंगे। एक दिन वह मुँह में एक कार्षापण पकड़े हुए बोधिसत्त्व के पास पहुँची। बोधिसत्त्व ने प्रियवाणी का प्रयोग करते हुए पूछा—

"अम्म ! **कार्षापण** लेकर क्यों आयी है ?"

"तात ! इसे लेकर स्वयं भी खायें और मेरे लिए भी मांस लायें"

बोधिसत्त्व ने 'अच्छा' कह स्वीकार कर कार्षापण ले घर जाकर एक **मासे** का मांस खरीदकर उसे लाकर दिया। उसने उसे ले अपने निवासस्थान पर जा जी भरकर खाया।

उसके बाद से वह इसी तरह प्रतिदिन बोधिसत्त्व को कार्षापण देती। वह भी इससे मांस ला देता।

एक दिन उस चुहिया को बिल्ले ने पकड़ लिया। वह बोली—"स्वामी ! मुझे न मारें।"

"क्यों ? मुझे भूख लगी है ! मैं मांस खाना चाहता हूँ। मैं बिना मारे नहीं रह सकता।"

"क्या केवल एक दिन एक ही बार मांस खाना चाहते हैं, अथवा नित्य प्रति?"

"मिले तो नित्य खाना चाहूँगा।"

"यदि ऐसा है, तो मुझे छोड़ दें। मैं नित्य प्रति मांस दिया करूँगी।"

"अच्छा तो ध्यान रखना" कह बिल्ले ने उसे छोड़ दिया।

उसके बाद से उसके लिए जो मांस आता उसके वह दो हिस्से करके एक बिल्ले को देती एक स्वयं खाती।

फिर एक दिन उसे एक दूसरे बिल्ले ने पकड़ लिया। उसे भी उसी तरह मनाकर अपने आप को छुड़ाया। उसके बाद से तीन हिस्से करके खाने लगी। फिर एक और ने पकड़ लिया। उसे भी उसी तरह मनाकर अपने को छुड़ाया। उसके बाद से चार हिस्से करके खाने लगी। फिर एक ने पकड़ लिया। उसे भी

उसी तरह समझाकर अपने को छुड़ाया। उसके बाद से पाँच हिस्से करके खाने लगी।

केवल पाँचवाँ हिस्सा मिलने से वह चुहिया आहार की कमी से क्लान्त तथा कृश हो गयी। उसका मांस और रक्त कम पड़ गया। बोधिसत्त्व ने उसे देखकर पूछा--"अम्म! म्लान क्यों पड़ गयी है?"

"इस कारण से।"

"इतनी देर तक मुझे क्यों नहीं बताया। मैं जानता हूँ इसका क्या उपाय करना चाहिए।"

इस प्रकार उसे दिलासा दे शुद्ध स्फटिक पत्थर की एक गुफा बनाकर बोधिसत्त्व ने कहा--

"अम्म! तू इस गुफा में प्रवेश कर, वहाँ रह जो कोई आये उसे कठोर वचन से डाँट।"

चुहिया गुफा में पड़कर लेट रही। एक बिल्ले ने आकर कहा--मेरा मांस दे।

चुहिया बोली--अरे दुष्ट बिलार! क्या मैं तेरी नौकर हूँ कि मांस लाकर दूँ। अपने पुत्रों का मांस खा।

बिल्ला नहीं जानता था कि चुहिया स्फटिक गुफा के अन्दर है। उसने क्रोध से सहसा आक्रमण किया कि चुहिया को पकड़ूँगा। उसका हृदय स्फटिक गुफा से टकराया और उसी समय चूर-चूर हो गया। आँखें निकल आयी सी हो गयीं। वह वहीं मरकर एक छिपे हुए स्थान पर गिरा। इस प्रकार दूसरे चार जने भी मृत्यु को प्राप्त हुए।

उसके बाद से चुहिया निर्भय हो गयी। वह बोधिसत्त्व को प्रतिदिन दो तीन कार्षापण देती। इस प्रकार उसने सारा धन बोधिसत्त्व को ही दे दिया। वे दोनों जीवन भर मित्र-भाव से रह यथाकर्म (परलोक) सिधारे।

शास्ता ने पूर्वजन्म की यह कथा कह सम्यक् सम्बुद्ध हुए रहने पर यह गाथा कही--

यत्थेको लभते बब्बु दुतियो तत्थ जायति,
ततियो च चतुत्थो च इदं ते बब्बुका बिलं॥

[जहाँ एक बिल्ले को (मांस) मिलता हैं दूसरा वहीं जाता है। तीसरा भी वहीं जाता है और चौथा भी वहीं। हे बिल्ले! यह तेरा बिल[1] है।]

यत्थ जिस जगह। **बब्बु,** बिल्ला। **दुतियो तत्थ जायति,** जहाँ एक को चुहिया अथवा मांस मिलता है, दूसरा बिल्ला भी वहीं जाता है। वैसे ही **ततियो च चतुत्थो च,** इस प्रकार वहाँ चार बिल्ले हुए। वे दिन प्रतिदिन मांस खाते हुए। **ते बब्बुका इदं** स्फटिक का बना हुआ **बिल** पेट में गड़ाकर सभी मर गये।

इस प्रकार शास्ता ने धर्मोपदेश दे जातक का मेल बैठाया।

उस समय के चारों बिल्ले चार भिक्षु हुए। चुहिया काण-माता हुई। पत्थर तराशनेवाला जौहरी तो मैं ही था।

---

१. प्रतीत होता है कि यह गाथा चुहिया द्वारा कही गयी थी। इसमें 'बिल' शब्द का अर्थ 'हिस्सा' होना चाहिए। जातककार ने यह गाथा बुद्ध-भाषित बनायी है; और बिल का जो अर्थ किया है वह मेल नहीं खाता।

१३८. गोध जातक

"**किं ते जटाहि दुम्मेध . .**" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ढोंगी के बारे में कही।

वर्तमान-कथा जैसी कथा पहले आई है,[1] वैसी ही है।

ख अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व गोह के रूप में पैदा हुए।

उस समय पाँच-अभिञ्ञा-प्राप्त (एक) उग्र तपस्वी एक गाँव के समीप जंगल में पर्ण-कुटी में रहता था। ग्रामवासी तपस्वी की अच्छी तरह सेवा करते थे। बोधिसत्त्व उसके चङ्क्रमण करने की जगह के पास एक बिल में रहते थे। प्रतिदिन दो तीन बार तपस्वी के पास आकर धर्म तथा अर्थपूर्ण बातें सुन, तपस्वी को प्रणाम कर अपने निवासस्थान को लौट जाते। आगे चलकर तपस्वी ग्रामवासियों को पूछकर वहाँ से चला गया। उस शीलव्रतसम्पन्न तपस्वी के चले जाने पर एक दूसरा कुटिल तपस्वी आकर उसी आश्रम में रहने लगा। बोधिसत्त्व उसे भी पहले ही तपस्वी की तरह सदाचारी समझ उसके पास गये।

एक दिन ग्रीष्मऋतु में अकाल वर्षा होने पर बिलों में से मक्खियाँ निकलीं। उन्हें खाने के लिए गोहें घूमने लगीं। ग्रामवासियों ने बाहर निकल बहुत सी गोहें पकड़, चिकनी भोजन-सामग्री के साथ खट्टा-मीठा गोह-मांस तैयार कर उस तपस्वी को दिया।

तपस्वी ने गोह का मांस खाया तो उसे बहुत स्वादिष्ट लगा। उसने

---

१ . भीमसेन जातक (८०)

पूछा—यह मांस बड़ा मीठा है। किसका मांस है ? जब उसे पता लगा कि किसका मांस है, तो वह सोचने लगा कि मेरे पास बड़ी गोह आती हैं। उसे मारकर उसका मांस खाऊँगा। उसने पकाने के बर्तन और उनके साथ घी, नमक आदि मँगवा कर एक ओर रख लिये। स्वयं मुग्दर ले, काषाय वस्त्र से ढक, पर्ण-कुटी के सामने शान्तचित्त की तरह बैठ बोधिसत्त्व की प्रतीक्षा करने लगा।

बोधिसत्त्व शाम को तपस्वी के पास जाने के लिए निकले। समीप पहुँचते ही उसकी इन्द्रियों में विकार देखकर सोचने लगे—यह तपस्वी उस तरह नहीं बैठा है जैसे और दिनों बैठा रहता था। आज यह मेरी ओर दूषित दृष्टि से देख रहा है। इसकी परीक्षा करूँगा। वे जिधर से तपस्वी की देह को छूकर हवा आ रही थी उधर खड़े हुए। गोह के मांस की गन्ध आयी। उसे सूँघकर बोधिसत्त्व ने सोचा—इस कुटिल तपस्वी ने आज गोह-मांस खाया होगा। इसीसे यह रसतृष्णा में आसक्त हो गया। आज मेरे समीप पहुँचने पर मुझे मुग्दर से मार मांस पकाकर खाना चाहता होगा। वह उसके पास न जा, वापस लौटकर घूमने लगे।

तपस्वी ने बोधिसत्त्व को न आता देख समझा कि यह जान गया होगा कि मैं इसे मारना चाहता हूँ। इसी से नहीं आता है। न आने पर भी यह कहाँ बचकर जायेगा। उसने मुग्दर निकाल फेंककर मारा। वह उसकी पूंछ के सिरे में ही लगा।

बोधिसत्त्व जल्दी से बिल में प्रविष्ट हो दूसरे छेद से सीस निकालकर बोले—"कुटिल जटिल ! मैं तुझे सदाचारी समझ कर तेरे पास आया। लेकिन अब मैंने तेरा कुटिल स्वभाव जान लिया। तेरे जैसे महाचोर को इस प्रव्रजित भेष से क्या ?" इस प्रकार उसकी निन्दा करते हुए यह गाथा कही—

किं ते जटाहि दुम्मेध किं ते अजिनसाटिया,
अब्भन्तरं ते गहनं बाहिरं परिमज्जसि[1] ॥

---

१. धम्मपद (२६।२२)

[हे दुर्बुद्धि ! जटाओं से तुझे क्या (लाभ) ? और मृगचर्म के पहनने से क्या ? अन्दर से तो तू मैला है, बाहर से धोता है ।]

किं ते जटाहि दुम्मेध, भो, दुर्बुद्धि ! मूर्ख ! यह जटाएँ प्रव्रजित को धारण करनी चाहिए । प्रव्रज्या-गुण से तू रहित है । तुझे इन जटाओं से क्या लाभ ? किं ते अजिनसाटिया, मृग-चर्म के अनुकूल संयम का अभाव है, तब इस मृग-चर्म से क्या ? **अब्भन्तरं ते गहनं**—तेरा भीतर राग, द्वेष तथा मोह से मलिन है, ढका हुआ है । **बाहिरं परिमज्जसि,** सो तू अभ्यन्तर को मैला ही रख स्नान आदि से तथा (श्रमण-)चिह्न धारण करके बाहर को साफ करता है । तू वैसा ही है जैसे काञ्जी से भरा हुआ तूम्बा हो, विष से भरा घड़ा हो, साँप से भरी हुई बाँबी हो अथवा गूह से भरा हुआ चित्रित घड़ा हो । तुझ चोर के यहाँ रहने से क्या ? शीघ्र भाग । यदि नहीं जायगा तो ग्रामवासियों को कहकर तेरा निग्रह करवाऊँगा ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व उस कुटिल तपस्वी को धमकाकर बिल में चले गये । कुटिल तपस्वी भी वहाँ से चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय कुटिल तपस्वी यह ढोंगी था । पहला शीलवान् तपस्वी सारिपुत्र था । गोहपण्डित तो मैं ही था ।

⊙

१३९. उभतोभट्ठ जातक

"**अक्खी भिन्ना पटो नट्ठो**. . ." यह शास्ता ने वेलुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षुओं ने धर्म सभा में बातचीत चलायी—"आयुष्मानो! जैसे कोई श्मशान की लकड़ी हो, जो दोनों ओर से जलती हो और जिसके बीच में गूह लगा हुआ हो, वह न जंगल में जलावन का काम देती है, न गाँव में ही जलावन का काम देती है। इसी प्रकार देवदत्त ऐसे कल्याणकर शासन में प्रव्रजित हो दोनों ओर से भ्रष्ट हो गया, दोनों ओर से बाहर हो गया, गृहस्थी के भोगों को भी नहीं भोगता और श्रमणत्व के उद्देश्य को भी पूरा नहीं करता।"

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत'। भिक्षुओ! देवदत्त केवल अभी उभयभ्रष्ट नहीं हुआ है, पूर्व समय में भी भ्रष्ट हुआ है।' इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए।

उस समय एक गाँव में मछुए रहते थे। एक मछुआ जाल ले अपने छोटे पुत्र के साथ जिस तालाब में मछुए साधारणतः मछली पकड़ते थे, वहाँ गया। जाकर जाल फेंका। जाल पानी से छिपे हुए एक ठूँठ में जा फँसा। मछुए ने जब देखा कि वह निकलता नहीं है तो सोचा कि जाल में कोई बड़ी मछली फँसी होगी। मैं लड़के को (उसकी) माँ के पास भेजकर पड़ोसी से झगड़ा करा दूँ। तब कोई इसमें से हिस्सा पाने की आशा न करेगा। उसने पुत्र से

कहा—"तात ! जा। माँ से कह कि हमें बड़ी मछली मिली है और यह भी कह कि वह पड़ोसी से झगड़ा कर ले।"

पुत्र को भेजने के बाद जब वह जाल को न खींच सका तो रस्सी टूटने के भय से उसने अपना ऊपर का कपड़ा उतार जमीन पर रखा और पानी में उतरा। मछली के लोभ में मछली को ढूँढ़ते हुए ठूँठ से टकरा गया। उसकी दोनों आँखें फूट गयीं। जमीन पर रखे हुए उसके कपड़े को चोर ले गये।

वह पीड़ा से पगला हो, हाथ से आँखों को दबाये हुए पानी से बाहर निकल काँपता हुआ कपड़े खोजने लगा।

उसकी भार्या ने भी सोचा कि मैं झगड़ा करके ऐसा कर दूँ कि कोई कुछ आशा न रखे। उसने एक कान में ताड़ का पत्ता पहना, एक आँख में हाँडी का काजल लगाया और गोद में कुत्ता ले पड़ोसी के घर गयी। उसकी एक पड़ोसन बोली—"तूने एक ही कान में ताड़ का पत्ता डाला है, एक ही आँख में कज्जल लगाया है और गोद में कुत्ते को ऐसे लेकर जैसे यह तेरा प्यारा पुत्र हो एक घर से दूसरे घर घूम रही है। क्या तू पगली हो गयी है?"

"मैं पगली नहीं हूँ। तू मुझे व्यर्थ ही गाली देती है, मजाक करती है। अब मैं मुखिया[1] के पास जाकर तुझपर आठ कार्षापण जुर्माना करवाऊँगी।"

इस प्रकार परस्पर झगड़कर दोनों मुखिया के पास गयी। दोषी का पता लगाने से वही दण्डित हुई।

लो उसे बाँधकर पीटने लगे कि जुर्माना दे।

वृक्षदेवता ने गाँव में उसका यह हाल और जंगल में उसके पति की विपत्ति को देख एक टहने पर खड़े होकर कहा—भो ! पुरुष ! जल में भी तेरा काम बिगड़ा, स्थल पर भी। तू दोनों ओर से भ्रष्ट हो गया। इतना कह यह गाथा कही—

अक्खी भिन्ना पटो नट्ठो सखीगेहे च भण्डनं,
उभतो पदुट्ठकम्मन्तो उदकम्हि थलम्हि च ॥

१, ग्रामभोजक।

[आँख फूट गयी । वस्त्र खोया गया । सखी के घर में झगड़ा हुआ । जल और स्थल दोनों में ही तेरा काम बिगड़ गया ।]

सखीगेहे च भण्डनं, सखी का मतलब है सहायिका, उसके घर में तेरी भार्या ने झगड़ा किया । झगड़ा करके बाँधी गयी, पीटी गयी और दण्डित हुई । **उभतो पदुट्ठकम्मन्तो**, इस प्रकार दोनों जगह में तेरा काम बिगड़ा ही । कौन से दो स्थानों में ? **उदकम्हि थलम्हि च**, आँख फूटने से और वस्त्र नष्ट होने से जल में काम बिगड़ा, सखी के घर पर झगड़ा होने से स्थल पर काम बिगड़ा ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय मछुआ देवदत्त था । वृक्षदेवता तो मैं ही था ।

⊙

१४०. काक जातक

"**निच्चं उब्बिग हदया**..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय जाति-सेवा के बारे में कही। वर्तमान कथा बारहवें निपात की **भद्दसाल जातक**[1] में आयेगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कौवे की योनि में पैदा हुए।

एक दिन राजा का पुरोहित नगर के बाहर नदी पर स्नान कर, सुगन्धित लेप कर, मालाएँ पहन, सुन्दर वस्त्र धारण किये नगर में प्रविष्ट हुआ। नगर-द्वार के तोरण पर दो कौवे बैठे थे। उनमें से एक ने दूसरे को कहा—

"मित्र! मैं इस ब्राह्मण के सिर पर बीट करूँगा।"

"यह अच्छा नहीं है। यह ब्राह्मण ऐश्वर्यशाली है। ऐश्वर्यशालियों के साथ बैर करना बुरा है। यह क्रुद्ध होने पर सभी कौवों को भी नष्ट कर सकता है।"

"मुझसे बिना किये नहीं रहा जाता।"

"अच्छा तो पता लगेगा" कह दूसरा कौवा उड़ गया।

जब ब्राह्मण तोरण के नीचे आया उसने **ओलम्बक**[2] गिराते हुए की तरह उसके सिर पर बीट गिरा दी। ब्राह्मण क्रुद्ध हो कौवों का वैरी हो गया।

उस समय मजदूरी पर धान कूटने वाली एक दासी धूप में घर के दरवाजे

---

१. भद्दसाल जातक (४६५)।

२. शत्रु-पक्ष के हाथी के नगर-द्वार में प्रवेश करने पर उससे ऊपर जोर से फेंकी जाने वाली नोकदार लकड़ी।

पर धान फैला उनकी देखभाल कर रही थी। उसे बैठे-बैठे नींद आ गयी। उसे असावधान जान एक लम्बे बालों वाला बकरा आकर धान खा गया। उसने जाग उसे देखकर भगाया।

बकरे ने दूसरी तीसरी बार भी उसे उसी प्रकार सोता देख आकर धान खाया। उसने भी उसे तीन बार भगाया। तब वह सोचने लगी—इस प्रकार यह बार-बार खाकर आधा धान खा जायेगा। मेरी बड़ी हानि होगी। अब मैं ऐसा प्रबन्ध करूँगी कि यह फिर न आये।

वह जलती हुई लकड़ी ले सोई हुई की तरह बैठ रही। जब बकरा धान खाने आया उसने उठकर जलती हुई लकड़ी से मारा। बालों में आग लग गयी। शरीर जलने पर वह आग बुझाने के लिए जल्दी से भागकर हस्तिशाला के पास गया और वहीं एक तृण-कुटी से शरीर रगड़ा। उस कुटी को आग लग गयी। वहाँ से उठी ज्वाला हस्तिशाला में जा लगी। हस्तिशाला के जलने से हाथियों की पीठ जली। बहुत से हाथियों के शरीर में जखम हो गये। वैद्य हस्तियों को निरोग न कर सका, तो उसने राजा से कहा। राजा ने पुरोहित से पूछा—"आचार्य! हाथियों का वैद्य हाथियों की चिकित्सा नहीं कर सकता। कोई दवाई जानता है?"

"महाराज, जानता हूँ।"

"किस चीज की ज़रूरत होगी?"

"महाराज, कौवे की चर्बी।"

राजा ने आज्ञा दी—"तो कौवों को मारकर कौवों की चर्बी लाओ।"

उसके बाद से कौवे मारे जाने लगे; और चर्बी न पाकर जहाँ-तहाँ उनका ढेर लगाया जाने लगा। कौवों पर बड़ी भारी विपत्ति आयी।

उस समय बोधिसत्व अस्सी हजार कौवों के साथ महाश्मशान वन में रहते थे। एक कौवे ने जाकर बोधिसत्व को कौवों पर आयी विपत्ति का समाचार कहा। उसने सोचा—"मेरे अतिरिक्त कोई मेरी जातिवालों के दुःख को दूर नहीं कर सकता। मैं दूर करूँगा।"

बोधिसत्व दस पारमिताओं का ख्याल कर, मैत्री-पारमिता को प्रमुख कर एक ही उड़ान में उड़, खुले हुए बड़े रोशनदान में प्रविष्ट हो राजा के आसन

के नीचे जा बैठे । उन्हें एक मनुष्य पकड़ने लगा । राजा ने रोका--शरण में आये को मत पकड़ो ।' बोधिसत्व ने थोड़ा विश्राम ले मैत्री-पारमिता का ध्यान कर आसन के नीचे से निकल राजा से कहा--'महाराज ! राजा को चाहिए कि वह उत्तेजना के वशीभूत होकर राज्य न करे । जो भी कार्य करना हो वह सोच विचार कर करना चाहिए । जो करने से हो सके, वही कार्य करना चाहिए; दूसरा नहीं । यदि राजा ऐसा कार्य करते हैं जिसका कोई फल नहीं होता तो वह जनता के लिए मरण होता है, महान् भय का कारण होता है । पुरोहित ने वैर के वश हो झूठ कहा है । "कौवों को चर्बी होती ही नहीं ।"

राजा प्रसन्न हुआ । उसने बोधिसत्व को सोने का सुन्दर पीढ़ा दिया । वहाँ बैठने पर उसके परों को सौ-पाक, सहस्र-पाक तेल लगवाया । सोने के थाल में राज-भोजन दिलवाया । पानी पिलवाया । अच्छी तरह से खा चुकने पर जब बोधिसत्व सुखपूर्वक बैठे तब राजा ने पूछा--"पण्डित, तू कहता है. कौवों को चर्बी नहीं होती । उनको चर्बी क्यों नहीं होती ?"

बोधिसत्व ने इन-इन कारणों से नहीं होती बताते हुए सारे घर को अपने शब्द से गुंजाते हुए धर्म-कथा की; और यह गाथा कही--

निच्चं उब्बिग्गहदया सब्बलोकविहेसका,
तस्मा तेसं वसा नत्थि काकानस्माकञातिनं ।।

[हृदय नित्य उद्विग्न रहता है । सारे संसार को कष्ट देते हैं । इसलिए राजा ! हमारी जाति के लोग--जो कौवे हैं--चर्बी रहित होते हैं ।]

महाराज ! कौवे सदैव उद्विग्न हृदय होते हैं, भयभीत ही बिचरते हैं। सारे संसार को कष्ट देते हैं—क्षत्रिय आदि को भी, स्त्री-पुरुष को भी, लड़के-लड़कियों को भी--सभी को तकलीफ पहुँचाते हैं—इसलिए इन दो कारणों से हमारे जातिवालों को चर्बी नहीं होती । पहले भी नहीं हुई । आगे भी नहीं होगी ।

इस प्रकार बोधिसत्व ने यह बात स्पष्ट कर राजा को समझाया-- 'महाराज ! राजा किसी भी बात को बिना सोचे-विचारे नहीं करते ।'

राजा ने प्रसन्न हो राज्य बोधिसत्व को भेंट किया । बोधिसत्व ने राज्य

राजा को लौटा दिया। फिर उसे पञ्चशीलों में प्रतिष्ठित कर उससे सभी प्राणियों को अभय-दान देने के लिए कहा। राजा ने धर्मोपदेश सुन सभी प्राणियों को अभय-दान दे कौवों के लिए नित्य-भोजन बाँध दिया। प्रतिदिन अम्मण भर चावल का भात पकाकर नाना प्रकार के रसों से मिलाकर कौवों को दान दिया जाता। बोधिसत्व को राज-भोजन ही मिलता।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय वाराणसी का राजा आनन्द था। कौवों का राजा तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

१५. ककण्टक वर्ग

१४१. गोध जातक (२)

"**न पापजनसंसेवी**. . ." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय विपक्षी भिक्षु की संगत करने वाले भिक्षु के बारे में कही। वर्तमान कथा **महिला मुख जातक**[1] की कथा के ही समान है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गोह के रूप में पैदा हुए। बड़े होने पर वह नदी के किनारे एक बड़े बिल में सैकड़ों गोहों के साथ रहने लगे।

उनके पुत्र गोह-पिल्ले की एक गिरगिट के साथ दोस्ती हो गयी। वह उसके साथ आनन्द मनाता और गले लगाने के लिए उस पर आ पड़ता।

उस गिरगिट के साथ उसकी दोस्ती की बात गोहराज से कही गयी। गोहराज ने पुत्र को बुलाकर कहा—

"तात ! तू अनुचित स्थान में विश्वास कर रहा है। गिरगिट की जाति नीच होती है। उनका विश्वास नहीं करना चाहिए। यदि तू उसका विश्वास करेगा, तो तेरे और गिरगिट के कारण यह सारा गोह-कुल विनाश को प्राप्त होगा। अब से इसके साथ दोस्ती मत रख।" उसने दोस्ती नहीं ही छोड़ी।

जब बोधिसत्व के बार-बार कहने से भी उनकी मित्रता जैसी-की-तैसी रही, तब बोधिसत्व ने सोचा कि इस गिरगिट के कारण हमको अवश्य खतरा होगा।

---

१. **महिला मुख जातक (२६)**

खतरे के समय के लिए भागने का मार्ग तैयार होना चाहिए। उसने एक तरफ हवा आने का रास्ता बनवा लिया।

बोधिसत्व का पुत्र भी शनैः शनैः-बड़े शरीर वाला हुआ; गिरगिट पहले ही जितना रहा। वह समय-समय पर उसका आलिङ्गन करने के लिए गिरगिट पर आ पड़ता। गिरगिट को ऐसा मालूम देता कि मानों उस पर पर्वत आ पड़ा है। उसने कष्ट पाते हुए सोचा कि यदि यह और कुछ दिन इस प्रकार मेरा आलिङ्गन करता रहा तो मैं जीवित नहीं रहूँगा। इसलिए किसी शिकारी के साथ मिलकर इस गोह-कुल को ही नष्ट करवाऊँ।

एक दिन ग्रीष्म ऋतु में वर्षा होने पर बाम्बी से मक्खियाँ निकलीं। जहाँ तहाँ से गोह निकलकर मक्खियों को खाने लगे। एक गोह-शिकारी गोह के बिल को फोड़ने के लिए कुदाल और कुत्ते साथ में ले जंगल में घूम रहा था। गिरगिट ने उसे देखकर सोचा कि आज अपना मनोरथ पूरा करूँगा। उसने पास आ, थोड़ी दूर पर ठहर पूछा—"हे ! पुरुष ! जंगल में क्यों घूम रहे हो?" उसने कहा—"गोहों के लिए।" गिरगिट बोला—"मैं कई सौ गोहों का निवास स्थान जानता हूँ। आप आग और पुआल लेकर आयें।" उसे वहाँ ले जाकर कहा, "यहाँ पुआल रख, आग लगाकर धुआँ करें। चारों तरफ कुत्तों को बिठायें। अपने आप मुग्दर लेकर बैठें। जो-जो गोह निकलें उन्हें मार-मारकर ढेर लगायें।" फिर स्वयं एक जगह पर सिर उठाकर पड़ रहा—आज शत्रु की पीठ[1] देखने को मिलेगी।

शिकारी ने पुआल का धुआँ किया। धुआँ बिल में घुसा। गोह जब धुएँ से अन्धे हुए तब मृत्यु-भय से भयभीत हो भागने लगे। शिकारी ने जो-जो गोह निकले उन्हें मारा। उसके हाथ से बचों को कुत्तों ने लिया। गोहों के लिए महाविनाश उपस्थित हुआ।

बोधिसत्व को मालूम हुआ कि गिरगिट के कारण महान् खतरा पैदा हो गया। वह सोचने लगे कि पापी का साथ नहीं ही करना चाहिए। पापी की

---

१. शत्रु की पीठ देखना मिलने का भावार्थ है पलायन; यहाँ विनाश से तात्पर्य है।

संगत से सुख नहीं हो सकता। एक पापी गिरगिट के कारण इतने गोह नाश को प्राप्त हुए। इस प्रकार सोचते हुए हवा आने के बिल से भागते हुए यह बात कही—

न पापजनसंसेवी अच्चन्तसुखमेधति,
गोधाकुलं ककण्टाव कलिं पापेति अत्तानं ॥

[पापी की संगत करने वाले को निरन्तर सुख कभी नहीं मिलता। जैसे गिरगिट के कारण गोह-कुल नष्ट हुआ, इसी प्रकार वह अपना विनाश करता है।]

पापजनसंसेवी, (पापी की संगत करने वाला) आदमी **अच्चन्तसुखं,** केवल सुख ही सुख वा निरन्तर सुख **न एधति,** नहीं प्राप्त करता, जैसे क्या? **गोधा कुलंककण्टाव,** जैसे गिरगिट से गोह-कुल को सुख नहीं मिला। इसी प्रकार पापी जन की संगत करने वाले को सुख नहीं मिलता। पापी जन की संगत करने वाला निश्चय से **कलिं पापेति अत्तानं,** कलि कहते हैं विनाश को, पापी जन की संगत करने वाला निश्चयपूर्वक अपने को और साथ रहने वालों को नष्ट करता है।

पालि में **फलं पापेति** पाठ है। वह पाठ अट्ठकथा में नहीं है। उस अर्थ का भी यहाँ मेल नहीं बैठता। इसलिए जैसे यहाँ कहा गया, वैसे ही ग्रहण करना चाहिए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गिरगिट देवदत्त था। बोधिसत्व का पुत्र उपदेश न मानने वाला गोह-पिल्ला विपक्ष-सेवी भिक्षु था। गोह-राज तो मैं ही था।

⊙

१४२. सिगाल जातक

"एतं हि ते दुराजानं..." यह शास्ता ने वेणुवन में विहार करते समय देवदत्त के (तथागत को) मारने का प्रयत्न करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा में भिक्षुओं की बातचीत सुनकर तथागत ने कहा——भिक्षुओं ! देवदत्त ने केवल अभी मेरे बध की कोशिश नहीं की। पहले भी की ही है। लेकिन मुझे मार नहीं सका। स्वयं ही दुखी हुआ। यह कह पूर्व जन्म की कथा कही——

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गीदड़ होकर पैदा हुए। वह श्रृगाल राजा बन श्रृगालगण सहित श्मशान में रहने लगे।

उस समय राजगृह में उत्सव था। अधिकांश मनुष्य सुरा पीते थे; वह था ही सुरा-उत्सव। अनेक धूर्त बहुत सी सुरा और मांस ले आये; और मस्त होकर सुरा पीने तथा मांस खाने लगे। रात्रि के पहिले पहर में ही उनका मांस समाप्त हो गया। सुरा तो बहुत थी।

एक बोला——"मांस का टुकड़ा दो।"

दूसरे ने कहा——"मांस तो समाप्त हो गया"। "मेरे खड़े रहते कहीं मांस समाप्त हो सकता है ?" कह उसने सोचा कि कच्चे श्मशान में मृत मनुष्यों को खाने के लिये आये हुए श्रृगालों को मार कर मांस लाऊँगा। वह एक मोगरी ले नाली के रास्ते शहर से निकल श्मशान जा मोगरी सहित मृतक की तरह सीधा ही लेट रहा।

उस समय शृगालों के दल से घिरे हुए बोधिसत्व वहाँ आये। उसे देखकर समझ गये कि यह मरा नहीं हैं, लेकिन तब भी सोचा कि अच्छी तरह परीक्षा करूँगा। उन्होंने उस आदमी के नीचे की हवा की ओर जा उसके शरीर की गन्ध सूंघ, जाना कि यह वास्तव में मृत नहीं है। तब सोचा कि इसे लज्जित करके जाऊँगा। उन्होंने मोगरी के सिरे को पकड़कर खींचा। धूर्त ने मोगरी नहीं छोड़ी। पास आते हुए को भी न देखते हुए की तरह मोगरी को और भी जोर से पकड़ लिया। बोधिसत्व ने लौटकर कहा--'हे पुरुष! यदि तू मुर्दा होता, तो मेरे मोगरी खींचने पर उसे जोर से न पकड़ता। इसलिए तेरा मृत अथवा जीवित होना इस प्रकार दुर्ज्ञेय है।" इतना कह यह गाथा कही--

एतं हि ते दुराजानं यं सेसि मतसायिकं,
यस्स ते कड्ढमानस्स हत्था दण्डो न मुच्चति ॥

[तू किस कारण से मुर्दे की तरह पड़ा है, यह जानना कठिन है। तेरे हाथ से तो खींचने पर डण्डा नहीं छूटता।]

एतं हि ते दुराजानं, तेरी यह बात जाननी कठिन है। **यं सेसि मतसायिकं,** जिस कारण से तू मुर्दे की तरह लेटा है। **यस्स ते कड्ढमानस्स,** जब डण्डे का सिरा खींचने पर वह तेरे हाथ से नहीं छूटता; तब तू वास्तव में मुर्दा नहीं है।

ऐसा कहने पर उस धूर्त ने यह देख कि यह शृगाल मेरे जीवित होने की बात जानता है डण्डा फेंककर मारा। डण्डा नहीं लगा। धूर्त बोला--'जा, इस बार तू बच गया।' बोधिसत्व ने रुककर उत्तर दिया--'हे पुरुष! मुझे छोड़ देने पर भी तू आठ महान् नरकों तथा सोलह उस्सद नरकों से नहीं छूटेगा।' इतना कह चल दिये।

धूर्त को कुछ हाथ न लगा। वह श्मशान से निकल, खाई में स्नान कर जिस मार्ग से नगर से बाहर आया, उसी से नगर में प्रविष्ट हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय धूर्त देवदत्त था शृगाल-राजा तो मैं ही था।

१४३. विरोचन जातक

"लसी च ते निप्फलिता. . ."इसे शास्त्र ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के गयाशीर्ष[1] पर सुगत (तथागत) की नकल करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जब देवदत्त का ध्यान (-बल) जाता रहा और उसको लोगों से जो प्राप्ति होती थी वह बन्द हो गयी तथा लोगों ने उसका सत्कार करना छोड़ दिया तो उसने सोचकर एक उपाय निकाला। उसने बुद्ध से पाँच बातों[2] की याचना की, जिन्हें शास्ता ने अस्वीकार किया। तब उसने दोनों अग्रश्रावकों[3] के पाँच सौ शिष्यों को जो अभी प्रव्रजित हुए तथा धर्म-विनय से सुपरिचित न थे बहाकाया और उन्हें गयाशीर्ष पर ले जाकर संघ में भेद पैदा कर एक सीमा[4] में पृथक् विनय-कर्म[5] करने लगा।

शास्ता ने उन भिक्षुओं के आने का समय देख दोनों अग्रश्रावकों को भेजा। उन्हें देख देवदत्त प्रसन्न हुआ। रात को धर्मोपदेश देते समय उसने सोचा कि मैं बुद्ध की नकल करूँगा। वह बोला—सारिपुत्र! भिक्षु-संघ आलस्य रहित है।

---

१ गया का ब्रह्मयोनि पर्वत।

२. पाँच बातें यह हैं—(१) जिन्दगी भर वन में ही रहा करें, (२) जिन्दगी भर भिक्षा माँग कर ही खायें, (३) जिन्दगी भर फेंके चीथड़ों के ही चीवर पहनें (४) जिन्दगी भर पेड़ के नीचे ही रहें, (५) जिन्दगी भर मछली, मांस न खायें (चुल्लवग्ग, द्वितोय भाणवार)।

३. सारिपुत्र और मौद्गल्यायन।

४. सीमित-प्रदेश।

५. सांघिक कर्म।

तुम भिक्षु-संघ को कुछ धर्मोपदेश करो। मेरी पीठ में दर्द होता है। मैं इसे जरा तानूँगा।

इतना कह देवदत्त सो गया।

दोनों अग्रश्रावक उन भिक्षुओं को धर्मोपदेश दे (आर्य-) मार्ग और फल[1] के प्रति उनका ध्यान जाग्रत कर सभी को वे वेळुवन साथ ले गये।

कोकालिक ने जब देखा कि विहार खाली हो गया तब वह देवदत्त के पास गया और बोला—"आयुष्मान् देवदत्त! तेरे अनुयायियों में भेद पैदा कर अग्रश्रावक तेरा विहार खाली कर चले गये। तू पड़ा सो ही रहा है।" उसने उसकी चादर हटा दीवार में कील ठोंकने की तरह उसकी छाती में एड़ी से एक ठोकर लगायी। उसी समय उसके मुँह से खून गिर पड़ा। उसके बाद से वह रोगी हो गया।

शास्ता ने स्थविर से पूछा—"सारिपुत्र! तुम्हारे जाने के समय देवदत्त ने क्या किया?"

"भन्ते! हमें देखकर देवदत्त ने सोचा कि बुद्ध की तरह व्यवहार करूँगा। बुद्ध की नकल करता हुआ वह विनाश को प्राप्त हुआ।"

"सारिपुत्र! देवदत्त केवल अभी मेरी नकल करने जाकर विनाश को प्राप्त नहीं हुआ, पहले भी हुआ है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व केसरी (सिंह) होकर पैदा हुए और हिमालय की कञ्चनगुफा में रहने लगे।

एक दिन वे कञ्चनगुफा से निकल जम्हाई ले, चारों दिशाओं की ओर नजर उठा, सिंहनाद कर शिकार के लिए निकले। उन्होंने एक बड़े भारी भैंसे को मारा। उसका मांस खाया। फिर एक तालाब में उतर मणि-वर्ण जल की कोख पूर्ण करते हुए की तरह गुफा की ओर प्रस्थान किया।

शिकार के लिए निकले एक गीदड़ ने उन्हें एकाएक देखा। जब वह भाग न सका तो वह केसरी के पैरों में जाकर गिर पड़ा।

---

१. श्रोतापत्ति मार्ग आदि चार आर्य-मार्गों के चार फल।

"जम्बुक ! क्या बात है ?"

"स्वामी ! मैं आपके चरणों की सेवा करना चाहता हूँ।"

"अच्छा, आ मेरी सेवा कर। मैं तुझे अच्छे-अच्छे मांस खिलाऊँगा।" कह जम्बुक को कञ्चनगुफा में ले गया।

गीदड़ तब से सिंह का मारा हुआ मांस ही खाता रहा। कुछ ही दिन में वह मोटा हो गया।

एक दिन गुफा में पड़े ही पड़े उसे केसरी ने कहा—"जम्बुक ! जा, पर्वत की चोटी पर चढ़कर पर्वत के नीचे घूमने वाले हाथी, घोड़े तथा भैंसे आदि में से जिस किसी का मांस खाना चाहे, आकर मुझसे कह कि मैं अमुक पशु का मांस खाना चाहता हूँ। और मुझे प्रणाम कर यह भी कह कि 'हे स्वामी ! अपना पराक्रम दिखाएँ।' मैं उसे मार, उसका मांस खा, तुझे भी दूँगा।"

गीदड़ पर्वत की चोटी पर चढ़ नाना प्रकार के पशुओं को देख जिसका भी मांस खाना चाहता कञ्चनगुफा में आकर सिंह से निवेदन कर उसके पाँव में गिरकर कहता—"स्वामी ! अपना पराक्रम प्रकट करें।' सिंह जल्दी से छलांग मारकर चाहे मस्त हाथी ही होता उसकी हत्या कर उसका मांस स्वयं खाता और शृगाल को भी देता। गीदड़ पेट भर कर मांस खा, गुफा में जा सो रहता।

इस प्रकार ज्यों-ज्यों समय व्यतीत हुआ उसके दिल में अभिमान पैदा हो गया। मेरे भी तो चार पैर हैं। मैं क्यों रोज-रोज दूसरे पर निर्भर रहता हूँ। अब से मैं भी हाथी आदि को मारकर मांस खाऊँगा। सिंह भी हे मृगराज ! स्वामी ! अपना पराक्रम दिखाएँ' कहने पर ही हाथियों को मारता है; मैं भी सिंह से यह कहलवाऊँगा कि 'हे जम्बुक ! अपना पराक्रम दिखा' और एक बढ़िया हाथी को मार उसका मांस खाऊँगा।

उसने शेर से कहा—'स्वामी ! मैंने बहुत देर तक आपके द्वारा मारे हुए हाथियों का मांस खाया। मैं भी एक हाथी को मारकर उसका मांस खाना चाहता हूँ। जिस जगह आप कञ्चनगुफा में लेटते हैं, मैं वहाँ लेट रहूँगा। आप पर्वत के नीचे घूमनेवाले हाथी को देख मेरे पास आकर कहें 'जम्बुक ! अपना पराक्रम दिखा।' इतनी सी बात के लिए अनुदार न हों।

सिंह ने कहा—'जम्बुक ! तेरी सामर्थ्य हाथी मारने की नहीं है। गीदड़-

कुल में पैदा होकर कोई गीदड़ हाथी को मारकर उसका मांस खा सके, ऐसा गीदड़ दुनिया में नहीं है। तू ऐसी इच्छा मत कर। मेरे द्वारा मारे जाने वाले हाथियों का मांस खाकर ही रह।'

ऐसा कहने पर भी वह नहीं माना। बार-बार कहता ही रहा।

सिंह ने जब देखा कि वह नहीं मानता तो स्वीकार कर कहा—'अच्छा ! तो मेरे रहने की जगह पर लेट रह।, जम्बुक को कञ्चनगुफा में लिटा पर्वत की चोटी पर चढ़ मस्त हाथी को देख गुफा के द्वार पर जाकर कहा—'जम्बुक ! अपना पराक्रम दिखा।'

शृगाल कञ्चनगुफा से निकला, जम्हाई ली, चारों ओर देखकर तीन बार आवाज की। फिर मस्त हाथी के सिर पर आक्रमण करने जाकर उसके पाँव में गिरा। हाथी ने दाहिना पाँव उठाकर उसके सिर पर रख दिया। सिर की हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं।

उसके शरीर को हाथी ने पाँव से इकट्ठा किया और उस पर लीद करके चिंघाड़ता हुआ जंगल में चला गया।

बोधिसत्व ने यह हाल देख, 'जम्बुक ! अब अपना पराक्रम दिखा' कह, यह गाथा कही—

लसी च ते निप्फलिता मत्थको च विदाळितो,
सब्बा ते फासुका भग्गा अज्ज खो त्वं विरोचसि ॥

[तेरे सिर का भीजा निकल गया है। मस्तक फट गया है। तेरी सभी हड्डियाँ टूट गयी हैं। आज तू अपना पराक्रम दिखा रहा है।]

लसी का मतलब है माथे का भीजा। निप्फलिता, निकल आयी।

बोधिसत्व ने यह गाथा कही। जब तक जीवन था तब तक जीवित रह कर्मानुसार (परलोक) सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय गीदड़ देवदत्त था। सिंह मैं ही था।

⊙

१४४. नंगुट्ठ जातक

"**बहुम्पेतं असब्भि जातवेद** . . ." इसे शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय आजीविकों[1] के मिथ्या मत के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन की पिछली तरफ आजीवक नाना प्रकार की मिथ्या-तपस्याएँ करते थे। बहुत से भिक्षुओं ने उनके उकड़ूँ-बैठना, चिमगादड़-व्रत, काँटों पर सोना, तथा पञ्चाग्नि ताप आदि मिथ्या तपों के भेदों को देखकर भगवान् से पूछा—'भन्ते! इस मिथ्या-तप से कुछ भी उन्नति होती है?'

शास्ता ने उत्तर दिया—"भिक्षुओं, इस प्रकार के मिथ्या-तप से न कल्याण ही होता है, न उन्नति ही होती है। पूर्व समय में पण्डितों ने यह समझा कि इस प्रकार के तप से कल्याण होगा वा उन्नति होगी। वे जन्म-दिन पर रक्खी हुई अग्नि लेकर जंगल गये। वहाँ अग्नि-पूजा आदि से कुछ भी लाभ न देख, आग को पानी से बुझा वे कठिन अभ्यास कर अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोकगामी हुए।" इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उदीच्य ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। उनके पैदा होने के दिन माता-पिता ने जन्म-अग्नि लेकर रक्खी। सोलह वर्ष की आयु होने पर वे बोले—

"पुत्र! तेरे जन्म के दिन हमने आग रक्खी है। यदि गृहस्थ होना चाहता है तो तीनों वेद सीख। यदि ब्रह्मलोक जाना चाहता है तो आग लेकर जंगल

---

१ नग्न-साधुओं का एक सम्प्रदाय।

चला जा, वहाँ अग्नि की पूजा करते हुए महाब्रह्मा को प्रसन्न कर ब्रह्मलोकगामी होना ।"

उसने कहा, मुझे गृहस्थी से काम नहीं । वह आग ले जंगल में प्रवेश कर, वहाँ आश्रम बना अग्नि-पूजा करता हुआ आरण्य में रहने लगा ।

उस एक दिन किसी प्रत्यन्त-ग्राम से दक्षिण में एक बैल मिला । उस बैल को आश्रम पर ले जाकर उसने सोचा--अग्नि-भगवान् को गौ-मांस खिलाऊँगा । तभी उसे ख्याल आया--यहाँ नमक नहीं है । अग्नि-भगवान् बिना नमक के खा न सकेंगे । गाँव से नमक लाकर अग्नि-भगवान को नमक सहित खिलाऊँगा ।

वह बैल को वैसे ही बाँध नामक लेने के लिए गाँव गया । उसके जाने पर बहुत शिकारी वहाँ आये । उन्होंने बैल को देख उसे मार डाला और उसका मांस पका-खाकर उसकी पूँछ, जाँघ तथा चर्म वहीं छोड़कर शेष मांस लेकर चले गये ।

ब्राह्मण ने लौटकर जब केवल पूँछ आदि को देखा तो सोचने लगा--यह अग्नि-भगवान् अपनी चीज की भी रक्षा नहीं कर सके । मेरी तो क्या रक्षा करेंगे ? यह अग्नि-पूजा निरर्थक है । इससे कल्याण वा उन्नति नहीं है ।

उसका मन अग्नि-पूजा की ओर से उदासीन हो गया । वह बोला--भो अग्नि-भगवान् ! तुम अपनी चीज की भी रक्षा नहीं कर सके । मेरी क्या रक्षा करोगे ? मांस तो नहीं है, इतने से ही सन्तुष्ट होओ । यह कह पूँछ आदि को आग में फेंकते हुए यह गाथा कही--

बहुम्पेतं असब्भि ! जातवेद ! यंतंवालधिनाभिपूजायाम,
मंसारहस्य नत्थज्ज मंसं नंगुट्ठम्पि भवं पटिग्गहातु ॥

[हे असत्पुरुष ! अग्निदेव ! यह भी बहुत समझें कि हम पंछ से तेरी पूजा कर रहे हैं । तुझे मांस मिलना योग्य था, लेकिन मांस नहीं है । इसलिए आप जनाब पूँछ ग्रहण करें ।]

बहुम्पेतं, इतना भी बहुत है, **असब्भि**, असत्पुरुष ! असाधुजानिक । **जातवेद**, अग्नि को सम्बोधन करता है । अग्नि जात होते ही, पैदा होते ही, अनुभव होती

है, ज्ञात होती है, प्रकट होती है—इसलिये **जातवेद** कहलाती है। **यं तं बाल-धिनाभिपूजयाम,** आज हम तुझे जो अपनी पास की चीज भी सुरक्षित नहीं रख सकता उसकी पूँछ से पूजा कर रहे हैं। यही प्रकट करता है कि यह भी तेरे लिए बहुत कर रहे हैं। **मंसारहस्स,** तुझे मांस चाहिए था। आज तेरे लिए मांस नहीं है। **नंगुट्ठम्पि भवं परिग्गहातु,** अपनी चीज को रख सकने में असमर्थ आप यह खुर-सहित जाँघ का चर्म और पूँछ ही ग्रहण करें।

इस प्रकार कह बोधिसत्व आग को पानी से बुझा ऋषि-प्रव्रज्जा के अनुसार प्रव्रजित हो अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोक-परायण हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

आग को बुझाने वाला तपस्वी उस समय मैं ही था।

⊙

१४५, राध जातक

"**न त्वं राध ! विजानासि...**" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुए पूर्व-भार्या के प्रति आसक्ति के बारे में कही । वर्तमान-कथा **इन्द्रिय जातक**[1] में आयेगी ।

शास्ता ने उस भिक्षु को बुलाकर कहा—भिक्षु, स्त्रियों को बचाया नहीं जा सकता । पहरेदार रखने से भी उनकी देखभाल नहीं हो सकती । तू भी पहले पहरेदार रखकर भी नहीं बचा सका । अब कैसे बचा सकेगा ? इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व तोते की योनि में पैदा हुए । काशी देश के एक ब्राह्मण ने बोधिसत्त्व और उसके छोटे भाई को पुत्र की तरह पाला । उन दोनो में से बोधिसत्त्व का नाम हुआ पोट्ठपाद, दूसरे का राध ।

हाँ, उस ब्राह्मण की ब्राह्मणी अनाचारिणी थी, दुःशीला । वह व्यापार के लिए जाने लगा तो दोनों भाइयों से बोला—तात ! यदि माता ब्राह्मणी अनाचार करे, तो उसे रोकना । बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया-तात ! अच्छा ! यदि रोक सकेंगे तो रोकेंगे : नहीं रोक सकेंगे तो चुप रहेंगे ।

इस प्रकार ब्राह्मण, ब्राह्मणी को तोतों को सौंपकर व्यापार करने गया ।

उसके जाने के दिन से ब्राह्मणी ने अनाचार करना आरम्भ किया (घर में) प्रवेश करनेवालों की और बाहर निकलने वालों की गिनती नहीं रही । उसकी करतूत देख राध ने बोधिसत्त्व से कहा—"भाई ! हमारा पिता हमें कह गया

---

१ **इन्द्रिय जातक** (४२३)

९. (जातक २)

था कि यदि माता अनाचार करे तो उसे रोकना। अब वह अनाचार कर रही है। हम उसे रोकें।" बोधिसत्व ने कहा--तात ! तू अपनी बेसमझी के कारण, मूर्खता के कारण, ऐसा कह रहा है। स्त्रियों को उठाये लेकर फिरा जाय, तब भी उनकी देखभाल नहीं हा सकती। जो काम किया नहीं जा सकता, उसे न करना चाहिए। इतना कह यह गाथा कही--

न त्वं राध ! विजानासि अड्ढरत्ते अनागते ॥
अब्यायतं विलपसि विरत्ता कोसियायने ॥

[राध ! तू नहीं जानता। अभी आधी रात भी नहीं हुई। न जानने के कारण ही तू बकवास करता है। उसका (अपने पति की ओर से) मुँह मुड़ा है।]

न त्वं राध ! विजानासि अड्ढरत्ते अनागते, तात ! राध। तू नहीं जानता, आधी रात न होने पर ही पहले पहर में ही इतने आदमी आये। अब कौन जानता है कि कितने आदमी आयेंगे ? **अब्यायतं विलपसि,** तू व्यर्थ बकवास करता है। **विरत्ता कोसियायने,** माता कोसियायनि ब्राह्मणी का दिल विरक्त है। हमारे पिता के प्रति प्रेम नहीं है। यदि उसका उसमें प्रेम या स्नेह होता तो इस प्रकार अनाचार न करती। इन शब्दों से इस ब त को प्रकट किया।

इस प्रकार कह राध को ब्राह्मणी के साथ बोलने नहीं दिया।

वह भी जब तक ब्राह्मण नहीं आया तब तक यथारुचि अनाचार करती रही। ब्राह्मण ने लौटकर पोट्ठपाद से पूछा--तात ! तेरी माँ कैसी है ? बोधिसत्त्व ने ब्राह्मण को जो-जो हुआ सब कह दिया। फिर कहा--"तात ! इस प्रकार की दुश्चरित्रा से तुम्हें क्या प्रयोजन ? माता का दोष प्रकट करने के बाद से अब हम यहाँ नहीं रह सकते। वह ब्राह्मण के पाँव में गिरकर राध के सहित उड़कर जंगल चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला चार आर्य-सत्य प्रकाशित किये। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न भिक्षु श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय ब्राह्मण और ब्राह्मणी यही दो जने थे। राध आनन्द था। पोट्ठपाद मैं ही था।

⊙

१४६. काक जातक

"अपि नु हनुका सन्ता. . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बहुत से वृद्ध भिक्षुओं के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वे गृहस्थ होने के समय श्रावस्ती के धनी परिवार के थे। एक दूसरे के मित्र थे। परस्पर मिलकर पुण्य करते थे। बुद्ध का उपदेश सुनकर उन्होंने सोचा कि हम बूढ़े हुए। हमें गृहस्थी से क्या लाभ? शास्ता के पास रमणीय बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो हम दुःख का अन्त करें।

वे अपनी सारी जायदाद लड़के-लड़कियों को दे, रोते हुए रिश्तेदारों को छोड़, शास्ता से प्रव्रज्या की याचना कर प्रव्रजित हुए। लेकिन प्रव्रजित होने पर प्रव्रज्या के अनुकूल श्रमण-धर्म की पूर्ति नहीं की। बूढ़े होने से धर्म भी नहीं सीख सके। गृहस्थ रहने के समय की तरह प्रव्रजित होने पर भी विहार के एक कोने में पर्ण-शाला बनवाकर उसमें इकट्ठे ही रहते थे। भिक्षा माँगने के लिए भी प्रायः और कहीं न जाकर अपने लड़के लड़कियों के घर जाकर वहीं खाते थे।

उनमें से एक की पहली भार्या सभी वृद्ध भिक्षुओं का उपकार करनेवाली थी। इसलिए बाकी जनों को जो भिक्षा मिलती उसे लेकर भी उसी के घर जा बैठकर खाते। वह भी उनको जो सूप-व्यञ्जन तैयार होता, देती। किसी बीमारी से वह मर गयी।

वह वृद्ध स्थविर विहार जाकर एक दूसरे के गले मिल विहार के आस-पास यह कहते हुए रोने लगे--"जिसके हाथों में मधुर-रस था, वह उपासिका मर गयी।" उनकी आवाज सुनकर इधर-उधर से भिक्षुओं ने आकर पूछा--"आयुष्मानो! क्यों रो रहे हो?" वे बोले--"हमारे मित्र की पहली भार्या

मर गयी है। उसके हाथ में मधुर-रस था। वह हमारा बहुत उपकार करने वाली थी। अब वैसी स्त्री कहाँ मिलेगी ? इसी वजह से रो रहे हैं।"

उनको विलाप करते देख भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलायी--"आयुष्मानो ! इस कारण से वृद्ध स्थविर एक दूसरे के गले में हाथ डाल रोते हुए घूम रहे हैं।"

शास्ता ने आकर पूछा--"भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत" कहने पर शास्ता ने कहा--"भिक्षुओ, यह केवल अभी उसके मरने पर रोते हुए नहीं घूम रहे हैं। पहले भी इन्होंने इसके कौए की योनि में पैदा हो समुद्र में मरने पर सोचा कि समुद्र का पानी उलीचकर इसे निकाल लायेंगे। वे परिश्रम करते हुए (कठिनाई से) पण्डितों द्वारा जीवित बचाये गये।"--इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व समुद्र-देवता होकर पैदा हुए।

एक कौआ अपनी कौवी को लेकर चोगा खोजता हुआ समुद्र के किनारे गया। (उस समय मनुष्य समुद्र तट पर दूध की खीर, मत्स्य-मांस तथा सुरा आदि से नाग को बलि चढ़ा चले गये थे।) कौवे ने बलि की जगह पहुँच, खीर आदि देख कौवी के साथ दूध-खीर, मत्स्य-मांस आदि खाकर बहुत-सी सुरा पी ली। सुरापान से वे दोनों नशे में मस्त हो गये। उन्होंने सोचा कि समुद्र-क्रीड़ा करें। इस उद्देश्य से वह किनारे पर बैठकर स्नान करने लगे। एक लहर आयी और कौवी को समुद्र में बहा ले गयी। उसे एक मच्छ मांस खाकर निगल गया। कौआ रोने पीटने लगा--मेरी भार्या मर गयी।

उसके रोने पीटने की आवाज सुन बहुत से कौवे इकट्ठे होकर पूछने लगे--क्यों रोते हो ? किनारे पर नहाती हुई मेरी भार्या को लहर ले गयी। वे सब एक स्वर से रोने लग गये।

उनको यह ख्याल हुआ कि हमारे सामने इस समुद्र-जल की क्या सामर्थ्य है ? हम पानी को उलीचकर समुद्र को खाली कर अपनी सहायिका को

निकाल लेंगे । वे मुँह भर-भरकर पानी बाहर छोड़ने लगे । नमक के पानी से गला सूखने पर वह स्थल पर जाकर विश्राम लेते ।

जब उनकी दाढ़ें थक गयीं, मुख सूख गये, आँखें लाल पड़ गयीं तो उन्होंने दीन दुःखी होकर एक दूसरे को सम्बोधन कर कहा---"भो ! हम तो समुद्र से पानी लाकर बाहर गिराते हैं; लेकिन जिस-जिस जगह से पानी लाते हैं वह फिर पानी से भर जाती है । हम समुद्र को खाली न कर सकेंगे ।" इतना कह, यह गाथा कही--

अपि नु हनुका सन्ता मुखञ्च परिसुस्सति,
ओरमाम न पारेम पूरतेव महोदधि ॥

[हमारी दाढ़ें थक गयीं और मुँह सूखता है । हम प्रयत्न करते हैं, लेकिन पार नहीं पाते । महासमुद्र भरता ही जाता है ।]

अपि नु हनुका सन्ता,, हमारी दाढ़ें थक गयीं । **ओरमाम न पारेम,** हम अपना बल लगाकर समुद्र का पानी निकाल बाहर करना चाहते हैं; लेकिन हम खाली नहीं कर सकते, यह **पूरतेव महोदधि** ।

इस प्रकार कहते हुए वे सभी कौवे रोने लगे—उस कौवी की ऐसी चोंच थी ! ऐसी गोल-गोल आँखें थीं ! ऐसा सुन्दर आकार-प्रकार था ! ऐसा मधुर शब्द था ! वह इस चोर समुद्र के कारण नष्ट हो गयी ।

उन्हें इस प्रकार विलाप करते देख समुद्र-देवता ने भयानक रूप दिखाकर भगाया । इस प्रकार उनका कल्याण हुआ ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय कौवी यह पूर्व की भार्या थी । कौवा बूढ़ा स्थविर था । बाकी कौवे अन्य बूढ़े स्थविर थे । समुद्र-देवता तो मैं ही था ।

⊙

१४७. पुप्फरत्त जातक

"**नयिदं दुक्खं अदुं दुक्खं**. . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

भगवान् ने उससे पूछा---भिक्षु, क्या तू सचमुच उद्विग्न-चित्त है ? वह बोला--हाँ, सचमुच । "तुझे किसने उत्तेजित किया ?" पूछने पर उसने कहा--"मेरी पहली भार्या ने । भन्ते ! उस स्त्री के हाथ में मधुर-रस है । मैं उसके बिना नहीं रह सकता ।"

शास्ता ने कहा--"भिक्षु ! यह तेरा अनर्थ करनेवाली है । तू इसके कारण पहले भी शूली पर चढाया गया । इसी के कारण रोता हुआ मरकर तू नरक में पैदा हुआ । अब फिर तू उसे ही क्यों चाहता है ?" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व आकाश स्थित देवता हुए ।

वाराणसी में कार्तिक मास की रात्रि का उत्सव हुआ । नगर देवनगर की तरह सजाया गया । सब लोग उत्सव मनाने में मस्त थे ।

एक दरिद्र आदमी के पास केवल एक ही मोटे कपड़े का जोड़ा था । उसने उसे अच्छी तरह धुलवाकर, स्त्री कराके, उसमें सैकड़ों, हजारों चुनन देकर रखा था ।

उसकी भार्या बोली--"स्वामी ! मेरी इच्छा है कि केसर के रंग का एक वस्त्र पहन तेरे गले से लग कार्तिक के उत्सव में विचरूँ ।"

स्वामी बोला--"भद्रे ! हम दरिद्रों के पास केसर कहाँ से आयगा ? शुद्ध वस्त्र पहन कर खेल ।"

"केसर रंग न मिलने पर उत्सव न खेलूंगी । तू दूसरी स्त्री लेकर खेल ।"

"भद्रे ! मुझे क्यों कष्ट देती है । हम दरिद्रों के पास केसर कहाँ ?"

"स्वामी ! पुरुष की इच्छा हो तो क्या नहीं है ? क्या राजा के केसर-बाग में बहुत केसर नहीं है ?"

"भद्रे ! वह स्थान राक्षसों से सुरक्षित तालाब की तरह बहुत बलवान् आदमियों से सुरक्षित है । वहाँ नहीं जा सकता । तू उसकी इच्छा मत कर । जो है उसी से सन्तुष्ट रह ।"

"स्वामी ! रात को अन्धकार होने पर क्या कोई ऐसी जगह है जहाँ आदमी नहीं जा सकता ?"

उसके बार-बार कहने से आसक्ति होने के कारण उसने उसकी बात स्वीकार कर कहा--"अच्छा, भद्रे ! चिन्ता मत कर ।"

इस प्रकार उसे आश्वासन दे, रात को, जीवन का मोह छोड़, नगर से निकल, राजा के केसर-बाग पर जा, वहाँ बाड़ को तोड़, बाग में दाखिल हुआ । पहरेदारों ने बाड़ के शब्द को सुन 'चोर है' समझ घेर कर पकड़ लिया । फिर गाली दे, पीट, बाँधकर दिन होने पर राजा के पास ले गये । राजा ने आज्ञा दी--जाओ इसे सूली पर चढ़ा दो ।

वे उसकी बाहों को पीछे बाँध, वध्य-भेरी के बजते हुए उसे नगर के बाहर ले गये और वहाँ सूली पर चढ़ा दिया । बड़ी वेदना हुई । कौवे सिर पर बैठ कर बर्छी के नोक सदृश चोंच से उसकी आँखें निकालने लगे । वैसे कष्ट को भी भूलकर वह यही सोचता रहा--'ओह ! मैं घने पुष्प के रंग से रंगे वस्त्र पहने, गले में दोनों हाथ डाले उस स्त्री के साथ कार्तिक रात्रि के उत्सव में न घूम सका ।' इस प्रकार चिन्ता करते हुए यह गाथा कही--

नयिदं दुक्खं अदुं दुक्खं यं मं तुदति वायसो,
यं सामा पुप्फरत्तेन कत्तिकं नानुभोस्सति ॥

[न मैं इसे ही दुःख समझता हूँ, न उसे ही जो कि कौआ मुझे ठोंगे

मारता है। मुझे दुःख है तो यह है कि मेरी श्यामा फूल के रँगे वस्त्र से कार्तिक के उत्सव का आनन्द न ले सकेगी।]

नयिदं दुक्खं अदुं दुक्खं यं मं तुदति वायसो, यह जो सूली पर चढ़ने का शारीरिक और मानसिक दुःख है और यह जो लोहे जैसी चोंच से कौआ मुझे ठोंगे मारता है, यह सब मेरे लिए दुःख नहीं है। केवल वही दुःख मेरे लिये दुःख है। कौन सा? **यं सामा पुप्फरत्तेन कत्तिकं नानुभोस्सति,** जो वह प्रियङ्ग श्यामा मेरी भार्या एक केसरी वस्त्र पहन, एक ओढ़, इस प्रकार घने रंगीन लाल वस्त्र जोड़े को धारण कर मुझे गले लगा कार्तिक रात्रि के उत्सव का आनन्द न ले सकेगी। यही मेरा दुःख है। यही मुझे कष्ट देता है।

वह इस प्रकार उस स्त्री के बारे में विलाप करता हुआ ही मरकर नरक में पैदा हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय के पति-पत्नी इस समय के पति-पत्नी। उस बात को प्रत्यक्ष देखनेवाला आकाश देवता मैं ही था।

⊙

१४८. सिगाल जातक

"नाहं पुनं न च पुनं . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कामुकता का निग्रह करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में पाँच सौ महाधनवान्, सेठों के पुत्र, जिनकी परस्पर मित्रता थी, शास्ता का धर्मोपदेश सुन, शासन में दिल से प्रव्रजित हो, जेतवन के उस हिस्से में रहने लगे जिसमें अनाथपिण्डिक ने **कार्षापण** बिछवाये थे।

एक दिन आधी रात के समय उनके मन में कामुकता का भाव पैदा हुआ। उन्होंने उद्विग्न होकर एक बार छोड़े हुए कामुकता के विचार को फिर अपनाने की सोची।

शास्ता ने आधी रात के समय अपने सर्वज्ञता रूपी ज्ञान-दण्ड-प्रदीप को उठाकर देखा कि इस समय जेतवन के भिक्षुओं के मन में क्या विचार उत्पन्न हो रहे हैं। उन्हें पता लगा कि उन भिक्षुओ के मन में कामुकता का भाव पैदा हुआ है।

बुद्ध अपने शिष्यो की उसी तरह रक्षा करते हैं जैसे एक ही पुत्रवाली स्त्री अपने पुत्र की अथवा एक ही आँखवाला अपनी आँख की। पूर्वाह्न आदि जिस किसी समय में भी उनके मन में बुरे विचार आते हैं, वे उन्हें अधिक न बढ़ने देकर तुरन्त निग्रह करते हैं। इसलिए उनके मन में ऐसा हुआ कि यह तो चक्रवर्ती राजा के नगर के अन्दर ही चोरों के दाखिल हो जाने जैसी बात है। मैं अभी उन्हें धर्मोपदेश कर, उनके बुरे संकल्पो का निग्रह कर उन्हें अर्हत्व दूँगा।

उन्होंने सुगन्धित गन्धकुटी से निकल, आयुष्मान् आनन्द स्थविर को जो कि धर्म के खजाञ्ची थे, मधुर स्वर से बुलाया—"आनन्द!"

स्थविर "क्या आज्ञा है भन्ते!" कह प्रणाम करके खड़े हुए।

"आनन्द ! करोड़ों कार्षापण फैलाये जाने की सीमा के अन्दर जितने भिक्षु हैं, उन सब को गन्धकुटी के आँगन में एकत्र कर !"

बुद्ध ने सोचा कि यदि मैं केवल उन पाँच सौ भिक्षुओं को बुलवाऊँगा, तो उनके मन में होगा कि शास्ता ने हमारे मन के बुरे बिचारों को जान लिया। वे उद्विग्न हो जायेंगे और धर्मोपदेश ग्रहण न कर सकेंगे। इसलिए कहा कि सभी को इकट्ठा कर।

"अच्छा भन्ते !" कह स्थविर ने चाबी[1] ले, एक आँगन से दूसरे आँगन घूम, सभी भिक्षुओं को गन्धकुटी के आँगन में इकट्ठा कर बुद्ध के लिए आसन बिछाया। शास्ता बिछे हुए आसन पर पालथी मार, शरीर को सीधा रख वैसे ही बैठे मानो शिला-रूपी पृथ्वी पर सुमेरु पर्वत प्रतिष्ठित हुआ हो। बारी-बारी करके छः वर्ण की घनी बुद्ध रश्मियाँ निकल रही थीं। वह रश्मियाँ भी हाथ जितनी ऊँची हो, छत जितनी ऊँची हो, कंगूरे जितनी ऊँची हो, छीज-छीज कर आकाश में बिजली की तरह फैलीं। ऐसा हुआ जैसे समुद्र की कोख को क्षुब्ध करके उसमें से बाल सूर्य निकला हो।

भिक्षुसंघ भी शास्ता को प्रणाम करके बड़े आदर के साथ उन्हें घेरकर इस प्रकार बैठा जैसे शास्ता लाल कम्बल की कनात से घिरे हुए हों। बुद्ध ने भिक्षुओं को ब्रह्मस्वर से सम्बोधन कह कहा--

"भिक्षुओं, भिक्षु को काम-भोग सम्बन्धी वितर्क, क्रोध सम्बन्धी वितर्क, विहिंसा सम्बन्धी वितर्क--इन तीन बुरे संकल्पों को मन में जगह नहीं देनी चाहिए। यदि मन में कोई बुरा विचार आ जाये तो उसे छोटा न समझना चाहिए। बुरा विचार शत्रु की तरह होता है। शत्रु कभी छोटा नहीं होता। मौका मिलने से वह नाश ही कर डालता है। इसी प्रकार थोड़ा सा भी बुरा विचार यदि उसे बढ़ने का मौका मिले तो महाविनाश कर डालता है। बुरा विचार हलाहल विष की तरह होता है, ऐसे फोड़े की तरह होता है, जिसने चमड़ी और रोएँ उखाड़ लिये हों, विषैले साँप की तरह होता है, बिजली और आग की तरह होता है। इससे चिमटना ठीक नहीं। डरते रहना चाहिए।

---

१. अवापुरणं--दरवाजा खोलने का लकड़ी का कोई औजार।

जिस समय पैदा हो उसी समय ज्ञानबल से अथवा भावनाबल से उसे इस तरह त्याग देना चाहिए जिस तरह कमल के पत्ते पर पड़ी हुई बूँद उसे छोड़ देती है। पुराने पण्डितों ने थोड़े से भी बुरे विचार को सहन न कर उसका इस प्रकार निग्रह कर दिया कि वह फिर पैदा न हो।" इतना कह बुद्ध ने पूर्वजन्म की बात कही--

ख. अतीत कथा

पुराने समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व सियार की योनि में पैदा हो जंगल में नदी के किनारे बसने लगे।

एक बूढ़ा हाथी गङ्गा के किनारे मर गया। शिकार की खोज में घूमते हुए सियार ने हाथी के शरीर को देखकर सोचा कि मुझे बड़ा शिकार मिला है। उसने सूँड पर जाकर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो हल की फाल पर मुँह लगा। यहाँ कुछ खाने योग्य नहीं है, समझ उसने दाँतों पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो खम्भे पर मुँह लगा हो। कान पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो छाज के कोने पर मुँह लगा हो। पेट पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो धान की कोठी पर मुँह लगा हो। पैरों पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो ऊखल पर मुँह लगा हो। पूँछ पर मुँह मारा। ऐसा लगा मानो मूसल पर मुँह लगा हो। यहाँ भी कुछ खाने योग्य नहीं है, सोच कहीं भी कुछ मजा न आने पर उसने गुदा-मार्ग में मुँह मारा। ऐसा लगा मानो नरम-नरम पूए हों।

उसने सोचा कि अब मुझे इस शरीर में खाने योग्य कोमल जगह हाथ लग गयी। उसके बाद से वह खाता हुआ पेट के अन्दर घुस, वहाँ बृक्क, हृदय आदि को खाकर प्यास के समय रक्त पी, लेटने की इच्छा होने पर पेट में ही फैलकर लेटा। वह सोचने लगा कि यह हाथी का शरीर मुझे रहने का सुख देता है इसलिए घर की तरह है; खाने की इच्छा होने पर मांस की कमी नहीं; मुझे किसी दूसरी जगह जाने की क्या आवश्यकता? वह किसी दूसरी जगह न जा, हाथी के पेट में ही मांस खाता हुआ रहने लगा।

जैसे-जैसे समय गुजरता गया ग्रीष्म ऋतु की वायु के तथा सूर्य की किरणों के स्पर्श से वह लाश सूखकर उसमें बल पड़ गये। जिस द्वार से सियार ने प्रवेश किया था, वह दरवाजा बन्द हो गया। पेट में अँधेरा छा गया। सियार को

ऐसा हुआ मानो लोकान्तरिक[1] नरक में चला गया हो। लाश के सूखने पर मांस भी सूखने लगा। लोहू भी कम पड़ गया। निकलने को दरवाजा न मिलने पर, भयभीत हो वह दौड़ता हुआ, इधर उधर कुरेदता हुआ बाहर निकलने के लिए द्वार खोजता घूमने लगा।

इस प्रकार देगची में आटे का गोला उबलने की तरह पसीना बहाते रहने पर कुछ दिन में बड़ी भारी वर्षा हुई। उसने उस लाश को भिगोकर पहले की दशा में कर दिया। गुदा-मार्ग खुलकर तारे की तरह दिखायी देने लगा। सियार ने वह छेद देखा तो समझा कि अब मेरी जान बची। वह हाथी के सिर तक गया, फिर जोर से उछलकर गुदा-मार्ग को सिर से धक्का दे बाहर निकल आया। शरीर गीला होने के कारण उसके सभी बाल गुदा-मार्ग में ही सट गये।

ताड़-स्कन्ध के सदृश लोमरहित शरीर को देखकर उसका चित्त उद्विग्न हुआ। वह थोड़ी देर दौड़ा। फिर रुका और बैठ कर अपने शरीर को देखते हुए सोचने लगा--

"मुझे यह दुःख किसी दूसरे ने नहीं दिया है। यह लोभ के हेतु से, लोभ के कारण से, लोभ की वजह से ही मुझे भोगना पड़ा है। अब से मैं लोभ के वशीभूत न होऊँगा। फिर हाथी के शरीर में प्रवेश न करूँगा।"

उसका हृदय संवेग से भर गया और यह गाथा कही--

नाहं पुनं न च पुनं न चापि अपुनप्पुनं, ॥
हत्थिबोन्दि पवेक्खामि तथा हि भयतज्जितो ॥

[मैं ऐसा भयभीत हो गया हूँ कि मैं अब फिर, फिर और भी फिर, फिर अर्थात् कभी भी, हाथी के शरीर में प्रवेश नहीं करूँगा।]

न चापि अपुनप्पुनं, आकार निपात मात्र है। इस सारी गाथा का अर्थ यह है कि इससे फिर और उससे फिर तथा जो कहा गया है उससे भी फिर फिर हाथी के शरीर कहे जाने वाले **हत्थि बोन्दि न पवेक्खामि**। किस लिये ?**तथा हि**

---

१ इस नरक में अँधेरा घुप रहता है।

भय तज्जितो, मैं इसी बार प्रवेश करने से ही भयभीत हो गया; मरण-भय से त्रास को तथा उद्विग्नता को प्राप्त हुआ।

इतना कह और वहाँ से भाग फिर उस अथवा अन्य किसी भी हाथी के शरीर को खड़े होकर देखा तक नहीं। उसके बाद से लोभ के वशीभूत नहीं हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना लाकर कहा--"भिक्षुओ, अन्दर जो मल पैदा हो जाये उस चित्त के मैल को बढ़ने न देकर वहीं निग्रह करना चाहिए।" इतना कह आर्यसत्यों का प्रकाशन कर, जातक का सारांश निकाला। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर वह पाँच सौ भिक्षु अर्हत हो गये। शेष में से कुछ स्रोतापन्न कुछ सकृदागामी तथा कुछ अनागामी हुए।

उस समय सियार तो मैं ही था।

१४९. एकपण्ण जातक

"**एक पण्णो अयं रुक्खो**. . ." यह शास्ता ने **वैशाली** के पास महावन की कूटागार शाला में रहते हुए वैशाली के एक दुष्ट-स्वभाव लिच्छवि-कुमार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय वैशाली में गावुत-गावुत[1] की दूरी पर तीन प्राकारें बनीं थीं। तीनों जगहों पर गोपुर थे, अट्टालिकाएँ थीं तथा कोठे थे। इस प्रकार अत्यन्त शोभायमान था।

वहाँ सदैव राज्य करवाते हुए रहनेवाले राजाओं की संख्या सात हजार सात सौ सात होती थी। उतने ही उपराजा होते थे। उतने ही सेनापति-उतने ही भण्डारी।

उन राजकुमारों में एक राजकुमार दुष्ट लिच्छवि-कुमार कहलाता था। यह क्रोधी था, प्रचण्ड था, कठोर था। डण्डे से छेड़े गये जहरीले साँप की तरह क्रोध से सदैव जलता रहता था। कोई भी उसके सामने दो तीन शब्द भी नहीं बोल सकता था। उसे न उसके माता पिता, न रिश्तेदार और न यार-दोस्त ही समझा सके। तब उसके माता-पिता ने सोचा--"यह कुमार अत्यन्त कठोर स्वभाव का है। दुस्साहसी है। सम्यक् सम्बुद्ध को छोड़ और कोई इसे विनयी नहीं बना सकता। हो सकता है कि यह उन्हीं लोगों में से हो जो बुद्ध के विनीत बनाने से ही विनीत बनते हैं।" वे उसे शास्ता के पास ले गये और प्रणाम करके बोले--भन्ते ! यह कुमार प्रचण्ड है, कठोर है, क्रोध से जलता है। इसे उपदेश दें।

शास्ता ने उस कुमार को उपदेश दिया—"कुमार ! प्राणियों के प्रति प्रचण्ड

---

१. गव्यूति = २ मील।

नहीं होना चाहिए, दुस्साहसी नहीं होना चाहिए, कष्ट देने वाला नहीं होना चाहिए। कठोर वाणी, जिस माता ने जन्म दिया है उसको भी, पिता को भी, पुत्र को भी, भाई-बहन को भी, भार्या को भी, मित्र-बन्धुओं को भी अप्रिय होती है, अच्छी नहीं लगती। जो आदमी डसने के लिए आये सर्प की तरह, जंगल में लूटमार करने के लिए तैयार चोर की तरह, खाने के लिये आये यक्ष की तरह उद्विग्न होता है, वह दूसरे जन्म में नरक आदि में पैदा होता है। इस जन्म में क्रोधी आदमी सजा-धजा रहने पर भी दुर्वर्ण ही होता है। इसका पूर्ण चन्द्र की-सी शोभा वाला भी चेहरा आग से जले कमल के सदृश अथवा मैले कञ्चन के शीशे की तरह भोंडा हो जाता है, देखने में बुरा लगता है। क्रोध के कारण ही प्राणी शस्त्र लेकर स्वयं अपने को मार डालते हैं। विष खा लेते हैं। रस्सी से फाँसी लटक जाते हैं। प्रपात से गिर पड़ते हैं। इस प्रकार क्रोध के वशीभूत हो मरकर वह नरक आदि में पैदा होते हैं। दूसरों को कष्ट देनेवाले भी इस जन्म में निन्दा को प्राप्त हो मरने पर नरक आदि में उत्पन्न होते हैं। फिर जब मनुष्य होकर पैदा होते हैं तो पैदा होने के ही समय से लेकर प्राय: रोगी रहते हैं। आँख की बीमारी तथा कान की बीमारी आदि रोगों में एक से उठने पर दूसरी बीमारी में फँस जाते हैं। रोग से मुक्त न हो सकने के कारण नित्य दुखी रहते हैं। इसलिए सभी प्राणियों के प्रति मैत्री भावना रखनी चाहिए। सभी का हित-चिन्तक होना चाहिए। सभी के प्रति कोमल चित्त वाला होना चाहिए। क्योंकि इस प्रकार का (क्रोधी) आदमी नरक आदि के भय से मुक्त नहीं होता।

वह कुमार शास्ता का एक ही उपदेश सुनकर मान-रहित हो गया, शान्त इन्द्रिय हो गया; क्रोध-रहित हो गथा; मैत्री-चित्तवाला हो गया तथा कोमल-चित्त का हो गया। उसे कोई गाली देता, मारता तो भी वह उसकी ओर रुककर न देखता। वह ऐसा साँप हो गया जिसके दाँत उखाड़ दिये गये हों. ऐसा केकड़ा हो गया जिसका डंक जाता रहा हो, ऐसा बैल हो गया जिसके सींग न हो।

उसका समाचार जानकर भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बातचीत चलायी--आयुष्मानो '**दुष्ट लिच्छवि-कुमार** को चिरकाल तक उपदेश देते रहकर भी न

माता-पिता, न रिश्तेदार-मित्र आदि ही उसे विनीत बना सके। सम्यक् सम्बुद्ध ने उसे एक ही उपदेश से ऐसा कर दिया जैसे किसी मस्त हाथी को शान्त कर दिया हो। यह ठीक ही कहा गया है--भिक्षुओं! हाथी-दमन करने वाला जब हाथी को दमन करता है तो दमन किया हुआ हाथी एक ही दिशा में दौड़ता है चाहे पूर्व दिशा में, चाहे पश्चिम दिशा में, चाहे उत्तर दिशा में अथवा दक्षिण में। भिक्षुओ, घोड़ा-दमन करनेवाला जब घोड़े को दमन करता है तो दमन किया हुआ घोड़ा एक ही दिशा में दौड़ता है चाहे पूर्व-दिशा में, चाहे पच्छिम में, चाहे उत्तर में अथवा दक्षिण में। भिक्षुओ, बैल को दमन करने वाला जब उसे दमन करता है, तो दमन किया हुआ बैल एक ही दिशा में दौड़ता है चाहे पूर्व-दिशा में, चाहे पच्छिम मे, चाहे उत्तर में अथवा दक्षिण में। लेकिन भिक्षुओ, जिसे तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध शिक्षित करते हैं वह आठ दिशाओं में जाता है। रूपवान रूपों को देखता है, यह एक दिशा है. . . सञ्ञा तथा वेदना का जो निरोध है उसे प्राप्त कर विचरता है, यह आठवीं दिशा है। वह शिक्षकों में अनुपम पुरुष-दमन सारथि कहलाते हैं।[1] आयुष्मानो! सम्यक् सम्बुद्ध के समान पुरुषों का दमन करनेवाला सारथि नहीं है।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ! मैंने इसे केवल अब ही एक ही उपदेश से शिक्षित नहीं किया है; पहले भी एक ही उपदेश से शिक्षित किया है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व ने उदीच्य ब्राह्मण कुल में पैदा हो, बड़े होने पर तक्षशिला में तीनों वेद और सभी शिल्प सीखे। फिर कुछ समय घर में रहकर माता-पिता के मरने पर ऋषियों की प्रव्रज्या के ढंग से प्रव्रजित हो अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर हिमालय में प्रवेश किया। चिरकाल तक वहाँ रहने के बाद नमक और खटाई खाने के लिए जनपद में आकर वाराणसी पहुँच राजा के उद्यान में रहा। फिर

---

१. मज्झिम निकाय (३)।

एक दिन अच्छी तरह से वस्त्र पहन, आच्छादित हो, तपस्वी के रूपरंग में भिक्षा माँगने के लिए नगर में प्रविष्ट हो, राजा के आँगन में पहुँचा।

राजा ने झरोखे से देखा तो उसकी चाल-ढाल से मन प्रसन्न हुआ। उसने देखा कि यह तपस्वी शान्त-इन्द्रिय तथा शान्त मनवाला है। चलता है तो नीची नजर करके युग-मात्र[1] देखता हुआ चलता है। मालूम होता है कि कदम-कदम पर एक, एक हजार की थैली रखता हुआ सिंह की तरह चला आ रहा है। 'यदि कहीं पर शान्त-धर्म नाम की कोई चीज है तो वह इसके अन्दर अवश्य होगी' सोच एक अमात्य की ओर देखा।

'देव ! क्या आज्ञा है ?'

'उस तपस्वी को ले आओ।'

वह 'देव ! अच्छा' कह बोधिसत्त्व के पास गया। वहाँ पहुँचकर बोधिसत्त्व को प्रणाम कर उनके हाथ से भिक्षा-पात्र लिया। बोधिसत्त्व ने पूछा—"महा-पुण्यवान् ! क्या बात है ?"

"भन्ते ! महाराज आपको याद कर रहे हैं।"

"हम राजकुल में आने जाने वाले नहीं हैं, हम हिमवन्त-निवासी हैं।"

आमात्य ने जाकर राजा से यह बात कही। राजा—हमारे यहाँ आने जाने वाला कोई भिक्षु नहीं है। उन्हें जाकर ले आओ।

आमात्य ने जा बोधिसत्त्व को प्रणाम कर, प्रार्थना कर, साथ लिवा राज-भवन में पहुँचाया।

राजा ने बोधिसत्त्व को प्रणाम कर, श्वेत छत्र लगे हुए सोने के सिंहासन पर बिठा, अपने लिए तैयार किये गये नाना प्रकार के भोजन खिलाकर पूछा—'भन्ते ! कहाँ रहते हैं ?'

'महाराज ! हम हिमवन्त-निवासी हैं।'

'अब कहाँ जा रहे हैं ?'

'महाराज ! वर्षा-ऋतु के अनुकूल निवास स्थान की खोज है।'

'तो भन्ते ! हमारे ही उद्यान में रहें।'

---

१. युग, दो हाथ तक।

उनसे स्वीकृति ले अपना भी भोजन समाप्त कर राजा बोधिसत्त्व के साथ उद्यान गया। वहाँ पर्णशाला बनवा, उसमें रात के रहने योग्य तथा दिन में रहने योग्य स्थान तैयार करवा, प्रव्रजितों की आवश्कताएँ दे, उनकी सेवा आदि के लिए उद्यानपाल को भार सौंप स्वयं नगर को लौटा। उस समय से बोधिसत्त्व उद्यान में रहने लगे। राजा भी दिन में दो-तीन बार उनकी सेवा में जाता।

उस राजा का **दुष्ट कुमार** नाम का पुत्र था। वह क्रोधी था, कठोर था। न उसे राजा ही विनीत बना सका, न बाकी रिश्तेदार। आमात्यों और ब्राह्मण गृहपतियों ने क्रुद्ध होकर इतना कहा कि 'हे स्वामी ! ऐसा न करें। ऐसा न कर सकेंगे।' इतने से भी वह उसे कुछ न समझा सके।

राजा ने सोचा मेरे शीलवान् तपस्वी के अतिरिक्त कोई दूसरा इस कुमार को विनीत नहीं बना सकता।

वह कुमार को बोधिसत्त्व के पास ले गया और उन्हें सौंपते हुए कहने लगा--भन्ते ! यह कुमार क्रोधी है, कठोर स्वभाव का है। हम इसे विनीत नहीं कर सकते। आप इसे किसी ढंग से शिक्षा दें। इतना कह चला गया।

बोधिसत्त्व ने कुमार के साथ उद्यान में घूमते हुए नीम का एक पौधा देखा जिसके एक ओर एक पत्ता, दूसरी ओर दूसरा पत्ता --इस प्रकार कुल दो पत्ते थे। बोधिसत्त्व ने कुमार से कहा--कुमार ! इस पौधे के पत्ते खाकर इसका रस चखो। उसने उसका एक पत्ता मुँह में रखते ही उसका रस चख "थू" करके जमीन पर थूका। "कुमार यह क्या ?" "भन्ते ! यह पौधा अभी हला-हल विष के समान है; बड़े होने पर तो यह बहुत मनुष्यों की जान लेगा।" इतना कहते हुए उसने नीम के पौधे को उखाड़कर हाथों से मल डाला और यह गाथा कही--

एकपण्णो अयं रुक्खो न भुम्या चतुरंगुलो,
फलेन विषकप्पेन महायं किं भविस्सति ॥

[इस पौधे का केवल एक पत्ता है और यह भूमि से चार अंगुल ऊँचा नहीं। विष जैसे पत्तेवाला यह बड़ा होकर क्या होगा ?]

एकपण्णो, दोनों ओर एक एक पत्ता है। **न भुम्या चतुरंगुलो,** भूमि से चार अंगुल भी ऊँचा नहीं बढ़ा है। **फलेन,** अर्थात् पत्ते से। **विसकप्पेन,** हलाहल विष जैसे से। इतना छोटा होता हुआ भी ऐसे कड़ुवे फल वाला है। **महायं किं भविस्सति,** जब यह वृद्धि पाकर बड़ा होगा तब कैसा होगा? निश्चय से मनुष्य की जान लेने वाला होगा। इसी से उखाड़ कर हाथ से मलकर फेंक दिया—यह कहा।

तब बोधिसत्त्व ने उससे कहा—'कुमार! तूने इस पौधे को यह सोचकर कि यह अभी से इतना कड़ुवा है, बड़े होने पर इससे किसी की क्या उन्नति होगी, तोड़ कर, मरोड़ कर फेंक दिया। जैसे तूने इसके प्रति बरताव किया, ठीक इसी तरह तेरे राष्ट्र के वासी भी यह सोचेंगे कि यह कुमार क्रोधी है, कठोर स्वभाव का है, बड़ा होने पर राज्य करके क्या करेगा? इससे हमारी उन्नति कहाँ होगी? वह तुझे राज्य न दे, नीम के पौधे की तरह उखाड़कर तुझे राष्ट्र से निकाल देंगे। इसलिए नीम के पौधे के स्वभाव को छोड़ अब से शान्ति मैत्री तथा दया से युक्त हो।'

उस समय से उसने अभिमान छोड़ दिया। नम्र हो गया। शान्ति मैत्री और दया से युक्त हो बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार आचरण कर पिता के मरने पर राज्य प्राप्त किया। फिर दान आदि पुण्य कर्म करता हुआ यथाकर्म (परलोक) सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना सुना "भिक्षुओ! मैंने केवल अभी इस दुष्ट **लिच्छवि-कुमार** को सीधा नहीं किया, पहले भी सीधा किया है" कह जातक का मेल बैठाया।

उस समय दुष्ट कुमार यह **लिच्छवि-कुमार** था। राजा आनन्द था। उपदेश देनेवाला तपस्वी मैं ही था।

१५० सञ्जीव जातक

"**असन्तं यो पग्गण्हाति...**" यह शास्ता ने **वेळुवन** में विहार करते समय **अजातशत्रु** राजा द्वारा किये गये दुर्गुणी के आदर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसने बुद्धों के विरोधी, दुश्चरित्र, पापी **देवदत्त** के प्रति श्रद्धावान् हो, उस दुष्ट असत्पुरुष को ऊँचा स्थान दे उसका आदर करने की इच्छा से बहुत-सा धन खर्च करके **गया-सीस** पर एक बिहार बनवा दिया। उसी की बात मान अपने पिता को जो कि स्रोतापन्न आर्य-श्रावक था मरवा डाला। इस प्रकार अपने स्रोतापन्न होने की सम्भावना में बाधा डाला विनाश को प्राप्त हुआ।

अब उसने सुना कि देवदत्त को जमीन निगल गयी तो उसे डर हुआ कि कहीं उसे भी जमीन न निगल जाये। भयभीत होने से उसका राज्य-सुख जाता रहा। शय्या पर सोता तो उसे सोने में मजा न आता। तीव्र वेदना से पीड़ित हाथी के बच्चे के समान वह इधर-उधर विचरता। उसे ऐसा दिखायी देने लगा जैसे पृथ्वी फट गयी हो, उसमें से **अवीचि-ज्वाला**[1] निकल रही हो, और पृथ्वी उसे निगले जा रही हो; तप्त लोह शय्या पर लिटाकर लोहे की कीलें ठोंकी जा रही हों। इससे उस राजा को चोट खाये मुर्गे की तरह क्षण भर के लिए भी शान्ति न थी; काँपता ही रहता था।

उसने सम्यक् सम्बुद्ध के दर्शन कर उनसे क्षमा माँगने की तथा शंका मिटाने की इच्छा की। लेकिन अपने अपराध के भार के कारण उसकी जाने की हिम्मत न हुई।

राजगृह नगर में **कार्तिकोत्सव** था। नगर देवनगर की तरह अलंकृत था।

---

१. अवीचि नरक से निकलने वाली ज्वाला।

महल पर अमात्यगणों से घिरा राजा स्वर्ण सिंहासन पर बैठा था। उसने देखा कि **कौमारभृत्य जीवक** पास ही बैठा है। उसके मन में आया कि मैं जीवक को लेकर सम्यक् सम्बुद्ध के पास जाऊँ। लेकिन उसने साथ ही सोचा कि मैं जीवक को सीधा तो यह नहीं कह सकता कि हे जीवक ! मैं सम्यक् सम्बुद्ध के पास जाना चाहता हूँ। अकेला नहीं जा सकता। मुझे बुद्ध के पास ले चल। मैं उसे एक ढंग से कहूँगा--रात्रि के सौन्दर्य की प्रशंसा करके पूछूंगा कि आज हम किस श्रमण या ब्राह्मण का सत्संग करें, जिसका सत्संग करने से मन प्रसन्न हो। इसे सुनकर आमात्य अपने-अपने शास्ता की प्रशंसा करेंगे। जीवन भी सम्यक् सम्बुद्ध की प्रशंसा करेगा। तब उसे लेकर बुद्ध के पास जाऊँगा।

उसने पाँच पदों से रात्रि की प्रशंसा की--"भो ! चाँदनी रात्रि लक्षण-सम्पन्ना है। भो ! चाँदनी रात्रि सुन्दर है। भो ! चाँदनी रात्रि दर्शनीय है। भो ! चाँदनी रात्रि मन को प्रसन्न करने वाली है। भो ! चाँदनी रात्रि रमणीय है। आज की रात्रि हम किस श्रमण या ब्राह्मण का सत्संग करें, जिसका सत्संग करने से चित्त प्रसन्न हो ?"

एक आमात्य ने **पूरण कश्यप** की प्रशंसा की। एक ने **मक्खलि गोशाल** की। एक ने **अजित केश कम्बल** की। एक ने **प्रबुध कात्यायन** की। एक ने **वेलट्ठिपुत्र सञ्जय** की। एक ने **निर्ग्रन्थनाथपुत्र** की।

राजा उनकी बातचीत सुन चुप रहा। वह माहामात्य जीवक के कहने का ही विश्वास करता था। जीवक ने भी यह सोचकर कि जब राजा मेरे प्रति कुछ कहेगा, तभी देखूंगा मौन ही रखा। राजा ने पूछा--"जीवक ! तू क्यों चुप है?" तब जीवक ने आसन से उठ जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोड़कर कहा--देव ! यह भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध हमारे आम्रवन में रहते हैं। उनके साथ साढ़े बाहर सौ भिक्षु हैं। उन भगवान की इस प्रकार की कीर्ति है कि वह अर्हत् हैं... इस प्रकार नौ तरह[1] के गुण हैं, कह और उनके जन्म के

---

१. इति पि सो भगवा,[1] अरहं,[2] सम्मासम्बुद्धो,[3] विज्जाचरणसम्पन्नो,[4] सुगतो,[5] लोकविदू,[6] अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि,[7] सत्था देवमनुस्सानं,[8] बुद्धो भगवाति[9]।

समय से पूर्व निमित्त आदि भेद तथा भगवान् के प्रताप को प्रकाशित कर कहा कि देव ! उन भगवान बुद्ध का सत्संग करें, धर्म सुनें तथा शंकाएँ मिटाएँ ।

राजा का मनोरथ पूरा हुआ । वह बोला--सौम्य ! जीवक ! हाथियों को सजवाओ । हाथियों को सजवा बड़े राजसी ठाट-बाट से जीवक के आम्रवन में पहुँचा राजा ने देखा सुगन्धित बड़े भवन में तथागत भिक्षु संघ से घिरे बैठे हैं । जैसे महान् सरोवर हो, किन्तु उसकी लहरें शान्त हों, वैसे ही भिक्षु-संघ को इधर-उधर से देखकर राजा ने सोचा--ऐसी शान्त परिषद् तो मैंने इससे पहले कभी देखी ही नहीं । उसने भिक्षु परिषद् के उठने-बैठने के तरीके से ही प्रसन्न हो संघ को प्रणाम किया । फिर संघ की स्तुति करते हुए उसने भगवान् को प्रणाम किया और एक ओर बैठकर श्रमणत्व के फल के बारे में प्रश्न किया । भगवान् ने उसे दो भाणवारों में विस्तार करके **सामञ्ञफल सूत्र**[1] का उपदेश दिया । सूत्र का उपदेश हो चुकने पर वह प्रसन्न हो भगवान् से क्षमा माँग आसन से उठकर चला गया ।

राजा के चले जाने के थोड़ी ही देर बाद बुद्ध ने भिक्षुओं को बुलाकर कहा--भिक्षुओ, यह राजा जख्मी हो गया समझो । भिक्षुओ, राजा को आहत हो गया समझो । यदि यह ऐश्वर्य के लोभ में पड़कर अपने धार्मिक, धर्म से राज्य करने वाले पिता को जान से न मरवाता; तो इसे इसी आसन पर रज रहित, मल-रहित धर्म-चक्षु, उत्पन्न हो जाता । देवदत्त के कारण, दुष्ट को बड़ा स्थान देने से, वह **स्रोतापत्ति फल** को न प्राप्त कर सका ।

किसी दूसरे दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बातचीत चलायी--'आयुष्मानो ! अजातशत्रु ने दुष्ट का आदर करके, दुश्चरित, पापी देवदत्त की प्रेरणा से पितृ-हत्या करके स्रोतापत्ति फल से हाथ धोया । देवदत्त ने राजा का नाश कर दिया ।'

शास्ता ने आकर पूछा--भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ, केवल अभी अजातशत्रु दुष्ट का सम्मान

---

१. दीघ निकाय, (दूसरा सूत्र) ।

करके विनाश को प्राप्त नहीं हुआ पहले भी इसने दुष्ट का आदर कर अपना नाम किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व महा सम्पत्तिशाली ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला जाकर सब शिल्प सीख आये। फिर वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य हो पाँच सौ विद्यार्थियों को विद्या सिखाने लगे।

उन विद्यार्थियों में एक सञ्जीव नाम का विद्यार्थी था। बोधिसत्त्व ने उसे मुर्दे को जिलाने का मन्त्र सिखाया। उसने मुर्दे को जिलाने का ही मन्त्र सीखा, फिर सुलाने का नहीं सीखा। एक दिन विद्यार्थियों के साथ जब वह लकड़ी बटोरने जंगल गया तो उसने एक मृत-व्याघ्र को देखा। उसने अपने साथियों से कहा--"मैं इस मृत-व्याघ्र को जिलाऊँगा।"

विद्यार्थी--"नहीं जिला सकेगा।"

सञ्जीवक--"तुम लोगों के देखते ही देखते जिलाऊँगा।"

विद्यार्थी--"यदि जिला सकता है तो जिला।"

इतना कहकर वे विद्यार्थी वृक्ष पर चढ़ गये। सञ्जीवक ने मन्त्र पढ़कर मृत-व्याघ्र पर कंकड़ फेंके। व्याघ्र उठकर जल्दी से आया और सञ्जीवक का गला काट उसे मार स्वयं भी वहीं गिर पड़ा। सञ्जीवक भी वहीं गिर पड़ा। दोनों एक ही स्थान पर मुर्दे हो गये।

विद्यार्थियों ने लकड़ी ले आकर आचार्य को वह समाचार सुनाया। आचार्य ने विद्यार्थियों को बुलाकर कहा--तात! दुष्ट को बड़प्पन देनेवाले, जहाँ सम्मान नहीं करना चाहिए, वहाँ सम्मान प्रदर्शित करनेवाले, इस प्रकार के दु:ख को अवश्य प्राप्त होते हैं। इतना कह यह गाथा कही--

असन्तं यो पग्गण्हाति असन्तञ्चुपसेवति,
तमेव घासं कुरुते व्यग्घो सञ्जीविको यथा ॥

[जो दुश्चरित्र को बड़प्पन देता है, जो दुराचारी की संगत करता है, उसे वह दुराचारी वैसे ही खा जाता है जैसे जीवन-प्राप्त व्याघ्र।]

असन्तं—तीन प्रकार[1] के दुश्चरित्र से युक्त, दुश्शील, पापी **यो पग्गण्हाति,** क्षत्रिय, आदि में जो कोई इस प्रकार के दुराचारी प्रव्रजित को चीवर आदि देकर अथवा गृहस्थ को उपराज वा सेनापति आदि का पद देकर बड़प्पन देता है, सत्कार तथा सम्मान प्रदर्शित करता है। **असन्तञ्चुपसेवति,** जो इस प्रकार के दुश्शील की संगति करता है। **तमेव घासं कुरुते,** उसी दुष्ट आदमी को, बड़प्पन देनेवाले को वह दुराचारी खा जाता है, नष्ट करता है। कैसे ? **व्यग्घो सञ्जीविको यथा,** जैसे सञ्जीवक नाम के विद्यार्थी ने मृत-व्याघ्र को मन्त्र पढ़कर जिलाया, जीवन-दान दे आदृत किया। उसने उस जीवन-दान देनेवाले सञ्जीवक का ही प्राण ले लिया। इस प्रकार जो कोई भी दुष्ट आदमी का आदर करता है, वह दुष्ट अपना आदर करनेवाले ही को नष्ट करता है। इस तरह दुष्टों को बड़प्पन देनेवाले नाश को प्राप्त होते हैं।

बोधिसत्त्व इस गाथा द्वारा विद्यार्थियों को उपदेश दे, दानादि पुण्य करके कर्मानुसार परलोक सिधारे। शास्ता ने भी यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय मृत-व्याघ्र को जिलानेवाला विद्यार्थी **अजातशत्रु** था। चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य तो मैं ही था।

⊙

---

१. काय, वाक तथा मन के पाप-कर्म।

दूसरा परिच्छेद

१. दळ्ह वर्ग

१५१. राजोवाद जातक

"**दळ्हं दळ्हस्स खिपति**..." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय राजा को दिये गये उपदेश के बारे में कही। वह उपदेश **तेसकुण जातक**[1] में आयेगा।

क. वर्तमान कथा

एक दिन कोशल-नरेश पाप-कर्म सम्बन्धी किसी ऐसे मुकद्दमे का जिसका निर्णय करना आसान नहीं था, फैसला करके प्रातःकाल का भोजन कर चुकने पर गीले हाथों ही, अलंकृत रथ में बैठ शास्ता के पास गया। वहाँ पुष्पित कमल सदृश चरणों में गिर कर प्रणाम किया और एक ओर बैठा।

शास्ता ने पूछा—हन्त ! महाराज ! दिन चढ़े तुम कहाँ से आये ?

राजा—भन्ते ! आज पापकर्म सम्बन्धी एक ऐसे मुकद्दमे का जिसका निर्णय करना आसान नहीं था फैसला करने में लगे रहने के कारण समय नहीं मिला। अभी उसका फैसला कर, भोजन करके, गीले हाथों ही आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

शास्ता—महाराज ! धर्म से, न्याय से मुद्दकमे का फैसला करना शुभ-कर्म है। यह स्वर्ग का मार्ग है। लेकिन इसमें आश्चर्य की क्या बात है यदि तुम मेरे जैसे सर्वज्ञ से उपदेश लेते हुए भी धर्म से तथा न्याय से मुकद्दमे का फैसला करते हो। आश्चर्य तो इसी में है कि पूर्व के राजा लोग जिन्होंने ऐसे पण्डितों

---

१ जातक (५२१)

का ही उपदेश सुना जो सर्वज्ञ नहीं थे धर्म से तथा न्याय से मुकद्दमों के फैसले करते हुए चार **अगतियों**[1] से बचकर दस-राजधर्मों से विरुद्ध न जा, धर्मानुसार राज्य करते हुए स्वर्ग-मार्ग को भरनेवाले हुए।

इतना कह राजा के प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही——

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसकी पटरानी की कोख में रह, गर्भ की सम्यक् रक्षा होने पर माता की कोख से बाहर निकले। नाम-करण के दिन उसका नाम ब्रह्मदत्तकुमार ही रखा गया।

क्रम से बढ़ते हुए सोलह वर्ष की आयु होने पर वह तक्षशिला जाकर सब शिल्पों में निष्णात हो, पिता के मरने पर राजा हो धर्म से तथा न्याय से राज्य करने लगा। राग आदि के वशीभूत न हो वह मुकदमों का फैसला करता। उसके धर्म से राज्य करने से अमात्य भी धर्म से ही व्यवहारों (=मुकदमों) का फैसला करते। मुकदमों का धर्म से फैसला होने के कारण मुकदमे करनेवाले भी नहीं रहे। उनके न होने से राजाङ्गण में मुकदमे करनेवालों का शोर नहीं होता था। अमात्य सारा दिन न्यायालय में बैठे रहकर भी जब किसी को मुकदमा लिए आता न देखते तो उठकर चले जाते। न्यायालय खाली कर देने योग्य हो गये।

बोधिसत्त्व सोचने लगे कि मेरे धर्मानुसार राज्य करने के कारण मुकदमा करनेवाले नहीं आते। शोर नहीं होता। न्यायालय छोड़ने योग्य हो गये। अब मुझे अपने दुर्गुणों की खोज करनी चाहिए। जब मुझे यह पता लग जायेगा कि यह-यह मेरे दुर्गुण हैं तो उन्हें छोड़कर गुणवान बनकर ही रहूँगा।

उसके बाद से वह खोजने लगे कि कोई मेरे दोष कहने वाला है? उन्हें महल के अन्दर कोई ऐसा नहीं मिला जो उनके दोष कहे। जो मिला प्रशंसा करनेवाला ही मिला। 'यह मेरे भय से भी केवल मेरी प्रशंसा ही करते होंगे'

---

१. छन्द, द्वेष, भय तथा मोह के वशीभूत हो पक्षपात करना।

सोच महल के बाहर रहनेवालों की परीक्षा की। वहाँ भी कोई न मिला, तो नगर के अन्दर खोज की। नगर के बाहर चारों दरवाजों पर स्थित गाँवों में खोजा। वहाँ भी कोई दोष कहने वाला न मिला। प्रशंसा ही सुनने को मिली। तब बोधिसत्त्व ने जनपद में खोजने का निर्णय किया। अमात्यों को राज्य सँभाल वह रथ पर चढ़ केवल सारथि को साथ ले भेष बदल नगर से निकला। जनपद में खोजते हुए वह राज्य की सीमा तक चला गया। जब वहाँ भी उसे कोई दोष दिखानेवाला नहीं मिला, प्रशंसा ही सुनाने वाले मिले तो प्रत्यन्तदेश[1] की सीमा पर से महामार्ग से नगर की ओर लौटा।

उसी समय **मल्लिक** नाम का कोशल-नरेश भी धर्म से राज्य करता हुआ अपने दोष कहने वाले को ढूंढ़ने के लिए निकला था। जब उसे महल के अन्दर रहने वालों आदि में कोई दोष कहनेवाला नहीं मिला, प्रशंसा करने वाले ही मिले तो वह जनपद में खोजता हुआ वहाँ पहुँचा। वे दोनों, गाड़ियों के एक नीचे रास्ते पर आमने सामने हुए। रथों के लिए एक दूसरे को गुजरने देने की जगह नहीं थी।

मल्लिक राजा के सारथि ने वाराणसी राजा के सारथि से कहा—अपने रथ को लौटा ले।

वाराणसी राजा के सारथि ने कहा—तू अपने रथ को लौटा ले। मेरे रथ में वाराणसी राज्य के स्वामी महाराज ब्रह्मदत्त बैठे हैं।

दूसरे ने भी कहा—इस रथ में कोशल राज्य के स्वामी मल्लिक महाराज बैठे हैं। तू अपने रथ को मोड़ कर हमारे राजा के रथ को जगह दे।

वाराणसी राजा के सारथि ने सोचा—यह भी राजा है। अब क्या करना चाहिए? उसे एक उपाय सूझा कि राजा की आयु पूछकर जो आयु में छोटा होगा उसका रथ लौटवाकर जो बड़ा होगा उसके रथ के लिए जगह करवाऊँगा। ऐसा निश्चय कर उसने दूसरे सारथि से कोशल राजा की आयु पूछी। मिलान करने पर दोनों राजा समान आयु वाले निकले। फिर राज्य-विस्तार, सेना, धन, यश, जाति, गोत्र, कुल-भेद आदि के बारे में पूछा। दोनों तीन-तीन

---

१. **राज्य-सीमा के बाहर।**

सौ योजन राज्य के स्वामी निकले। दोनों की सेना, धन, यश, जाति, गोत्र तथा कुल-भेद सब एक सदृश था। तब सोचा जो अधिक शीलवान् होगा उसे जगह दी जायगी उसने पूछा--"सारथि! तुम्हारे राजा का सदाचार कैसा है?"

उसने अपने राजा के दुर्गुणों को भी गुण बताते हुए कहा कि हमारे राजा में यह गुण है, और यह गाथा कही--

दळ्हं दळ्हस्स खिपति मल्लिको मुदुना मुदुं
साधुम्पि साधुना जेति असाधुम्पि असाधुना,
एतादिसो अयं राजा मग्गा उय्याहि सारथि ॥

[मल्लिक कठोर के साथ कठोरता का व्यवहार करता है, कोमल के साथ कोमलता का। भले आदमी को भलाई से जीतता है, बुरे को बुराई से। सारथि! यह राजा ऐसा है। तू मार्ग छोड़ दे।]

दळ्हं दळ्हस्स खिपति, जो बहुत कठोर होता है उसे कठोर वचन से वा प्रहार से ही जीतना चाहिए। ऐसे आदमी के प्रति यह कठोर व्यवहार करता है अथवा कठोर वचन का प्रयोग करता है। इस प्रकार कठोर होकर ही उसे जीतता है। यही प्रकट करता है। **मल्लिको,** उस राजा का नाम है। **मुदुना मुदुं,** कोमल स्वभाव वाले को स्वयं भी कोमल होकर जीतता है। **साधुम्पि साधुना जेति असाधुम्पि असाधुना,** जो सज्जन हैं, उनके प्रति स्वयं भी सज्जन बनकर उन्हें सज्जनता से और जो दुर्जन हैं उनके प्रति स्वयं भी दुर्जन बनकर उन्हें दुर्जनता से जीतता है। **एतादिसो अयं राजा,** इस हमारे कोशल राजा का ऐसा सदाचरण है। **मग्गा उय्याहि सारथि,** अपने रथ को लौटा कर छोटे रास्ते से जा। हमारे राजा को रास्ता दे।

तब वाराणसी राजा के सारथि ने पूछा--"भो! क्या तुमने अपने राजा के गुण कह लिये?"

"हाँ।"

"यदि यही गुण हैं, तो अवगुण कैसे होते हैं?"

"अच्छा ! यह अवगुण ही सही। तुम्हारे राजा में कौन से गुण हैं?"

"अच्छा तो सुनो" कह दूसरी गाथा कही--

अक्कोधेन जिने कोधं, असाधुं साधुना जिने
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं,
एतादिसो अयं राजा मग्गा उय्याहि सारथि[1] ॥

[क्रोधी को अक्रोध से जीतता है। बुरे को भलाई से। कंजूस को दान से। झूठे को सत्य से। यह राजा ऐसा है। इसलिए सारथि ! तू मार्ग छोड़ दे।]

एतादिसो, इन **अक्कोधेन जिने क्रोधं** आदि कहे गये गुणों से युक्त। यह क्रोधी आदमी को स्वयं शान्त रहकर अक्रोध से जीतता है। **असाधु** को स्वयं भला होकर साधुता से। **कदरियं**, अत्यन्त कंजूस को स्वयं दाता बनकर दान से। **अलिकवादिनं**, झूठ बोलनेवाले को स्वयं सत्यवादी बनकर **सच्चेन जिनाति**। मित्र सारथि ! मार्ग से हट जा। इस प्रकार के सदाचार से युक्त हमारे राजा को मार्ग दे। हमारा राजा ही मार्ग पाने के योग्य है।

ऐसा कहने पर मल्लिक राजा तथा उसके सारथि, दोनों ने उतर कर, घोड़ों को खोल रथ को हटा वाराणसी के राजा को मार्ग दिया। वाराणसी राजा ने मल्लिक राजा को उपदेश दिया कि राजा को यह करना चाहिए। फिर वाराणसी जा वहाँ दानादि पुण्य-कर्म करके जीवन समाप्त होने पर स्वर्ग-मार्ग ग्रहण किया।

मल्लिक राजा ने भी उसका उपदेश ग्रहण कर जनपद में जा अपने दोष

---

१. धम्मपद (१०।३)।

बताने वाले को बिना खोजे ही अपने नगर पहुँच दानादि पुण्य-कर्म करके स्वर्ग को प्रयाण किया।

शास्ता ने कोशल-नरेश को उपदेश देने के लिए यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय मल्लिक राजा का सारथि मोग्गल्लान था। राजा आनन्द था। वाराणसी राजा का सारथि सारिपुत्र था। राजा तो मैं ही था।

⊙

१५२. सिगाल जातक

"असमेक्खित कम्मन्तं..." यह शास्ता ने कूटागार शाला में रहते समय वैशाली निवासी एक नाई के लड़के के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

उसका पिता राजाओं, रानियों, राजकुमारों तथा राजकुमारियों की हजामत बनाता, केश ठीक करता, शतरंज[1] बिछाता तथा और भी सभी कार्य करता था। वह श्रद्धावान् था। उसने बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण गही थी। वह पंचशीलों की रक्षा करता था। बीच-बीच में वह शास्ता का धर्मोपदेश सुनता हुआ, अपना समय व्यतीत करता था।

एक दिन वह राजा के यहाँ काम करने जाते समय अपने पुत्र को साथ ले गया। पुत्र ने वहाँ एक देवप्सरा सदृश सजी हुई लिच्छवि कुमारी को देखा। वह उस पर आसक्त हो गया। पिता के साथ राजभवन से लौटने पर उसने कहा कि यह कुमारी मिलेगी तो बचूंगा; नहीं तो यहीं मेरा मरण होगा। इतना कह वह खाना-पीना छोड़ चारपाई पर पड़ रहा।

उसके पिता ने पास आकर कहा—तात ! अनधिकार इच्छा मत कर। तू नाई का लड़का है। तेरी जाति छोटी है। लिच्छवि कुमारी क्षत्री की लड़की है। ऊँची जाति वाली। वह तेरे लिए योग्य नहीं है। तेरे लिए समान जाति और गोत्र की कोई दूसरी लड़की ला दूँगा।

उसने पिता का कहना नहीं माना। उसके माता, भाई, बहन, चाची, चाचा

---

१. दोनों ओर आठ-आठ मोहरों के स्थान होने से शतरंज का पुराना नाम अटठपद है।

सभी रिश्तेदारों तथा मित्रों आदि ने समझाने की कोशिश की। वे नहीं समझा सके। वह वहीं सूख-सूख कर मर गया।

उसका पिता शरीर का दाह-कर्म आदि कृत्य करके जब शोक कम हुआ तो शास्ता की वन्दना करने की इच्छा से बहुत सा गन्ध-माला-लेप आदि ले, महावन पहुँच शास्ता की पूजा कर, प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा—

"उपासक! क्यों इन दिनों दिखायी नहीं देता?"

उसने वह हाल कहा।

शास्ता बोले—"उपासक! तेरा लड़का केवल अभी अनधिकार इच्छा करके विनाश को प्राप्त नहीं हुआ, पहले भी हुआ है।"

उपासक के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व हिमालय-प्रदेश में सिंह होकर पैदा हुए। उनसे छोटे छः भाई थे और एक बहन थी। सभी काञ्चन-गुफा में रहते थे। उस गुफा से थोड़ी ही दूर रजत पर्वत पर एक स्फटिक गुफा थी। उसमें एक सियार रहता था। समय गुजरने पर उन सिंहों के माता-पिता मर गये। वह अपनी बहन सिंह बच्ची को गुफा में छोड़ जाते और स्वयं शिकार के लिए बाहर निकल मांस ला कर उसे देते। वह सियार उस सिंह बच्ची को देखकर उस पर आसक्त हो गया। उसके माता-पिता जब थे, तब तो उसे अवसर न मिलता था। अब इन सातों जनों के शिकार के लिए चले जाने पर स्फटिक गुफा से उतर काञ्चन-गुफा के द्वार पर जा सिंह बच्ची के सामने इस प्रकार कुछ लौकिक ढंग की गुप्त बातचीत कहता—

"सिंह की बच्ची! मैं भी चौपाया हूँ। तू भी चौपाया है। तू मेरी भार्या बन। मैं तेरा पति बनूंगा। हम मिलकर प्रसन्नता पूर्वक रहेंगे। अब से तू मेरी प्रेमिका हो जा"

वह उसकी बातचीत सुन सोचने लगी—

"यह सियार चौपायों में सबसे निचले दर्जे का निकृष्ट प्राणी है, वैसे ही

जैसे चाण्डाल। हम उत्तम राजकुल के हैं। यह मुझसे असभ्य अनुचित बातचीत करता है। मैं इस प्रकार की बातचीत सुनकर जीकर ही क्या करूँगी? साँस रोककर मर जाऊँगी।"

फिर उसने सोचा—

"मेरा इस प्रकार यूँ ही मरना ठीक नहीं। मेरे भाई आते हैं। उन्हें कह कर मरूँगी।"

सियार को भी जब उसकी ओर से कोई उत्तर न मिला तो उसने सोचा यह मुझसे सम्बन्ध नहीं करेगी। वह अफसोस करता हुआ स्फटिक-गुफा में जाकर पड़ रहा।

एक सिंह-बच्चा भैंस व हाथी में से किसी को मार मांस खा, बहन का हिस्सा लाकर बोला—"मांस खा।"

"भाई! मैं मांस नहीं खाऊँगी। मैं मरूँगी।

"क्यों?"

उसने वह हाल कहा।

"अब वह सियार कहाँ है?"

उसने स्फटिक-गुफा में पड़े हुए सियार को आकाश में समझा और बोली—"भाई! क्या नहीं देखते हो? यह रजत पर्वत पर आकाश में स्थित है।"

सिंह-बच्चा नहीं जानता था कि वह स्फटिक-गुफा में लेटा है। उसने उसे आकास में लेटा हुआ समझ सोचा "इसे मारूँगा" और सिंह वेग के साथ उछल कर, स्फटिक-गुफा पर छाती से चोट की। उसका हृदय फट जाने से वह मर कर वहीं गिर पड़ा।

तब दूसरा आया। उसने उसे भी वैसा ही कहा। उसने भी वैसा ही किया और मरकर पर्वत के नीचे गिर पड़ा। इस प्रकार छहों भाइयों के मरने पर सबसे अन्त में बोधिसत्त्व आये। उसने उन्हें भी वह हाल कहा और यह पूछने पर कि अब वह कहाँ है बताया कि वह रजत पर्वत पर आकाश में लेटा है।

बोधिसत्त्व ने सोचा—सियार आकाश में नहीं ठहर सकते। वह स्फटिक गुफा में पड़ा होगा। वे पर्वत के नीचे उतरे तो देखा कि छहों भाई मरे पड़े हैं।

वे समझ गये कि अपनी मूर्खता के कारण विचार न कर सकने के कारण स्फटिक-गुफा न जानने से उसी से हृदय टकराकर मरे होंगे। 'बिना विचारे जल्दबाजी करनेवालों का काम ऐसा ही होता है' कह पहली गाथा कही—

असमेक्खितकम्मन्तं तुरिताभिनिपातिनं,
सानि कम्मानि तप्पेन्ति उण्हं वज्झोहितं मुखे ॥

[जो आदमी बिना विचारे जल्दबाजी में काम करता है, उसके वह काम ही उसे तपाते हैं; जैसे मुँह में डाला हुआ गर्म भोजन।]

असमेक्खितकम्मन्तं तुरिताभिनिपातिनं, जो आदमी जिस काम को करना चाहता है, वह उसके दोषों का ख्याल न कर उन पर विचार न कर जल्दबाज होकर जल्दी में ही उस काम को करने को तैयार होता है, कूद पड़ता है, लग जाता है, उस बिना विचारे जल्दबाजी में काम करने वाले को वे इस प्रकार किये गये **सानिकम्मानि तप्पेन्ति**, सोच में डाल देते हैं, कष्ट देते हैं। कैसे? **उण्हं वज्झोहितं मुखे** जिस तरह खाते समय यदि इसका विचार न कर कि यह ठण्डा हैं, यह गर्म है, गर्म भोजन मुख में डाल दिया जाय तो मुँह भी जलता है, गला भी जलता और पेट भी जलता है; चिन्ता होती है तथा कष्ट होता है। इसी प्रकार उस तरह के आदमी को वह कर्म तपाते हैं।

उस सिंह ने यह गाथा कह सोचा—मेरे भाई उपाय-कुशल नहीं रहे। सियार को मारने जाकर वह बड़े जोर से कूद कर स्वयं मर गये। मैं ऐसा न कर गुफा में पड़े हुए सियार के हृदय को फाड़ डालूंगा।

उसने सियार के चढ़ने-उतरने के रास्ते का ख्याल कर उसके सामने खड़े हो तीन बार सिंहनाद किया। पृथ्वी सहित आकाश गूंज उठा। सियार का हृदय स्फटिक-गुफा में लेटे ही लेटे डर के मारे फट गया। वह वहीं मर गया। शास्ता ने कहा--इस प्रकार वह सियार सिंहनाद सुनकर मर गया।

शास्ता ने बुद्धत्व प्राप्त किये रहने पर यह गाथा कही--

सीहोच सीहनादेन दद्दरं अभिनादयि
सुत्वा सीहस्स निग्धोसं सिगालो दद्दरे वसं
भीतो सन्तासमापादि हृदयं चस्स अप्फलि ॥

[सिह ने सिंहनाद से गुफा को गुंजा दिया। गुफा में रहनेवाले सियार ने जब सिंह की आवाज सुनी तो वह डर कर त्रास को प्राप्त हुआ और उसका हृदय फट गया।]

सीहो, सिंह चार प्रकार के होते हैं (१) तृण-सिंह (२) पाण्डु-सिंह (३) काळ-सिंह (४) लाल हाथ पैर वाला केसरी। उनमें से यहाँ केसरी सिंह से ही मतलब हैं। **दद्दरं अभिनादयि** सौ बिजलियों के शब्द से भी भयानक सिंहनाद से उस रजत पर्वत को निनादित कर दिया, गुँजा दिया। **दद्दरे वसं,** स्फटिक मिले रजत पर्वत पर रहते हुए। **भीतो सन्तासमापादि** मृत्यु-भय से डरकर चित्तत्रास को प्राप्त हुआ। **हृदयं चस्स अप्फलि,** उस भय से उसका हृदय फट गया।

इस प्रकार सिंह उस सियार का प्राणान्त कर, भाइयों को एक जगह छिपाकर बहन को उनके मरने का वृत्तान्त कह, उसे दिलासा दे जन्म भर काञ्चन-गुफा में ही रह कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, आर्य-सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन हो चुकने पर उपासक श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय सियार नाई का लड़का था। सिंह-बच्ची लिच्छवि-कुमारी। छः छोटे भाई कोई स्थविर हुए। ज्येष्ठ-भ्राता सिंह तो मैं ही था।

⊙

१५३. सूकर जातक

"**चतुप्पदो अहं सम्म...**" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बूढ़े स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन रात में जब धर्म-देशना हो रही थी, जब शास्ता गन्धकुटी के दरवाजे पर मणिमय सीढ़ी पर खड़े होकर भिक्षुसंघ को उपदेश दे गन्धकुटी में चले गये थे, धर्म सेनापति (सारिपुत्र) शास्ता को प्रणाम कर अपने परिवेण में गये। महामोग्गल्लान भी अपने परिवेण में जा, वहाँ थोड़ी देर विश्राम कर स्थविर के पास चले आये और प्रश्न पूछने लगे। जो-जो प्रश्न पूछा जाता धर्म सेनापति आकाश में चन्द्रमा को उठाते हुए से उसका उत्तर देकर समझा देते। चारों प्रकार की परिषद् बैठी धर्म सुनती रही।

एक बूढ़े स्थविर को सूझा--यदि मैं इस सभा में सारिपुत्र से कोई प्रश्न पूछकर उसे चकरा दूँ तो यह सभा समझेगी कि यह भी बहुश्रुत है और मेरा सत्कार सम्मान करेगी। इसलिए उसने सभा में से उठ सारिपुत्र के पास जाकर एक तरफ खड़े हो कहा--आयुष्मान्! सारिपुत्र! हम भी एक प्रश्न पूछना चाहते हैं। हमें भी पूछने की आज्ञा दें। लपेटने के बारे में, उधेड़ने के बारे में, निग्रह के बारे में, प्रग्रह के बारे में, विशेष के बारे में, तथा निर्विशेष के बारे में अपना निश्चय कहें[1]।

स्थविर ने उसकी ओर देख सोचा--यह बूढ़ा इच्छाओं के वशीभूत है, तुच्छ है, कुछ नहीं जानता। वे उससे बिना कुछ बातचीत किये शरमाये हुए, पंखे

---

१. यह प्रश्न निरर्थक शब्द-समूह मात्र है।

२. धर्मोपदेश के समय पंखा हाथ में रहता है।

को रखकर आसन से उतर परिवेण में चले गये। मोग्गल्लान स्थविर भी अपने परिवेण में चले गये।

मनुष्यों ने उसका पीछा किया--पकड़ो इस बूढ़े को, इसने हमें मधुर धर्मोपदेश नहीं सुनने दिया। वह भागता हुआ विहार के सिरे पर एक दरार फटे पाखाने में गिर पड़ा और गन्दगी से पुत गया। आदमियों को उसे देख घृणा हुई। वे शास्ता के पास गये। शास्ता ने उन्हें देख पूछा--"उपासकों! क्यों असमय कैसे आये?" मनुष्यों ने वह हाल कहा।

शास्ता ने कहा--"उपासकों! न केवल अभी यह बूढ़ा उबल कर अपने बल को न जान महा बलवान् के साथ जूझ कर गूह से लिबड़ गया है, यह पहले भी उबल कर अपने बल को न जान महाबलवान् से जूझ गूह में लिबड़ चुका है।" उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व सिंह होकर पैदा हुए, और हिमालय प्रदेश में पर्वत-गुफा में रहने लगे।

उनके नजदीक ही एक तालाब के आस-पास बहुत से सुअर रहते थे। उसी तालाब के आस-पास तपस्वी भी पर्णशालाओं में रहते।

एक दिन सिंह भैंसे या हाथी में से किसी एक को मार, पेट भर मांस खा, उस तालाब में उतर पानी पी ऊपर आया।

उसी समय एक मोटा सुअर उस तालाब के आस-पास चरता था। सिंह ने उसे देख सोचा कि इसे किसी दूसरे दिन खाऊँगा। यदि यह मुझे देख लेगा तो फिर न आयेगा। उसके न आने के डर से वह तालाब से उतर एक तरफ को जाने लगा। सुअर ने उसे देखा तो सोचा--यह मुझे देख मेरे भय से सामने से न जा सकने के कारण भागा जा रहा है। आज मुझे इस सिंह जूझना चाहिए। उसने सिर उठाकर सिंह को युद्ध के लिए ललकारते हुए यह पहली गाथा कही--

चतुप्पदो अहं सम्म! त्वम्पि सम्म! चतुप्पदो,
एहि सीह! निवत्तस्सु किन्नु भीतो पलायसि॥

[दोस्त ! मैं चौपाया हूँ। तू भी चौपाया है। सिंह आ, रुक। डरकर किस लिए भागता है।]

सिंह ने उसकी बात सुनी तो कहा--दोस्त ! आज हमारा तेरे साथ युद्ध न होगा। आज से साँतवें दिन इसी जगह पर संग्राम होवे। इतना कह वह चला गया।

सुअर प्रसन्न हुआ कि सिंह के साथ युद्ध करूँगा। उसने अपने सब रिश्ते-दारो को कह दिया। वह उसकी बात सुन कर डरे। 'अब तू हम सभी को नष्ट करेगा। अपनी ताकत को न पहचान कर सिंह के साथ युद्ध करना चाहता है। सिंह आकर हम सब के प्राण ले लेगा। दुस्साहस न कर।'

उसने भयभीत हो पूछा--"तो अब क्या करूँ ?"

उन्होंने उपाय बताया--दोस्त सुअर ! तू उस जगह जाकर जहाँ यह तपस्वी मल-मूत्र त्यागते हैं सात दिन तक शरीर में गंदगी लपेटकर शरीर को सुखा, सातवें दिन शरीर को ओस की बूँदो से गीलाकर सिंह के आने से पहले ही आकर हवा का रुख देख जिधर से हवा आती हो उधर खड़े हो जाना सिंह सफाई पसन्द होता है। वह तेरे शरीर कों गन्दगी की सूँघ तुझे विजयी छोड़ चला जायगा।

उसने वैसे ही किया और साँतवें दिन वहाँ जाकर खड़ा हो गया। सिंह उसके शरीर की गन्दगी को सूँघकर समझ गया कि उसने देह में गूह पोता है। वह बोला--

"दोस्त सुअर ! तूने अच्छा उपाय सोचा है। यदि तूने गूह न पोता होता, तो मैं तुझे यहीं मार देता। लेकिन अब तो मैं तेरे शरीर को न मुंह से डस सकता हूं न पैरों से ही तुझ पर प्रहार कर सकता हूँ। इसलिए मैं तुझे विजयी मानता हूँ।"--इतना कह दूसरी गाथा कही--

असुचि पूतिलोमोसि दुग्गन्धो वासि सूकर !
सचे युज्झितुकामोसि जयं सम्म ! ददामि ते ॥

[सुअर ! तू अपवित्र गन्दे बालों वाला है। तेरे शरीर से दुर्गन्ध आती है। यदि तुझे युद्ध करने की इच्छा है, तो मैं तुझे विजयी मान लेता हूं।]

पूतिलोमोसि—गन्दगी लगे दुर्गन्धपूर्ण बालों वाला है। **दुग्गन्धो वासि,** अनिष्टकर, घृणित, प्रतिकूल दुर्गन्ध फैलाता है। **जयं सम्म ! ददामि ते !** तुझे विजयी मानता हूँ मैं पराजित हूं। तू जा। इतना कह सिंह रुक, अपना शिकार कर, तालाब में पानी पी, पर्वत-गुफा को ही चला गया।

सुअर ने अपने रिश्तेदारों को कहा--सिंह को मैंने जीत लिया। वे डरे कि फिर किसी दिन आकर सिंह हम सबको जान से मार डालेगा। वे भाग कर किसी दूसरी जगह चले गये।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय सुअर यह वृद्ध स्थविर था। सिंह तो मैं ही था।

◉

१५४. उरग जातक

"**उधूरगानं पवरो पविट्ठो**. . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय श्रेणियों[1] के संघ कलह के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशल राजा के दो सेवक श्रेणियों के प्रधान थे। वे दोनों महामात्य एक दूसरे को जहाँ कहीं देखते झगड़ा करते। उनके बैर की बात सारे नगर में फैल गयी। न राजा और न उनके रिश्तेदार तथा मित्र उनका झगड़ा मिटा सके।

एक दिन प्रात:काल शास्ता ने उन आदमियों का विचार करते हुए, जिनके ज्ञानी होने की संभावना थी। इन दोनों के स्रोतापन्न होने की संभावना को देखा। किसी एक दिन वे श्रावस्ती में भिक्षाचार करते हुए उनमें से एक के घर के दरवाजे पर खड़े हुए।

उसने बाहर निकल पात्र ले शास्ता को घर के अन्दर ले जा आसन बिछा कर बैठाया। शास्ता ने बैठते ही उसे मैत्री-भावना की महिमा समझायी, जब उसका चित्त कुछ कोमल हुआ देखा तो आर्य-सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर वह स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

शास्ता ने जब देखा कि वह स्रोतापन्न हो गया तो उसी के हाथ में पात्र रहने देकर उसे साथ ले दूसरे के घर पर पहुँचे। उसने भी बाहर निकल शास्ता को प्रणाम कर 'भन्ते'! घर में प्रवेश करें' कह, घर में ले जाकर बैठाया। दूसरा भी पात्र लिए हुए शास्ता के साथ ही अन्दर गया। शास्ता ने उसे मैत्रीभावना के ग्यारह लाभ[2] बताये। जब जाना कि उसका चित्त

---

१. शिल्पियों के संघ।

२. अंगुत्तर-निकाय, एकादशाक निपात।

तो आर्य-सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर वह भी स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

वे दोनों स्रोतापन्न हो परस्पर अपने-अपने दोषों को स्वीकार कर, उनके लिए क्षमा माँग एक दूसरे के साथ मिलकर आनन्दपूर्वक रहनेवाले, एक ही विचार के हो गये। उसी दिन भगवान् के सामने बैठकर उन्होंने इकट्ठे खाया।

शास्ता भोजन-कृत्य समाप्त करके विहार गये। वे भी बहुत-सा माला गन्धलेप आदि सुगन्धित वस्तुएँ तथा घी, शहद और शक्कर आदि लेकर शास्ता के साथ ही घर से निकले। भिक्षु-संघ ने शास्ता को आदर प्रदर्शित किया। बुद्ध उपदेश देकर गन्ध-कुटी में प्रविष्ट हुए।

भिक्षुओं ने सायंकाल धर्म-सभा में बातचीत चलायी। 'आयुष्मानों! शास्ता अविनयी को विनयी बनानेवाले हैं। जिन दो अमात्यों का चिरकाल तक प्रयत्न करके भी न राजा और न उनके रिश्तेदार वा सम्बन्धी मेल करा सके तथागत ने उनको एक ही दिन में विनीत कर दिया।' शास्ता ने आकर पूछा––भिक्षुओ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?' 'अमुक बातचीत' कहने पर तथागत ने कहा––'भिक्षुओ, मैंने केवल अभी इन दो जनों का मेल नहीं कराया, पहले भी कराया है।' इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही––

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वाराणसी के उत्सव की घोषणा होने पर बड़ा मेला हुआ। बहुत से मनुष्य, देव नाग तथा गरुण आदि समज्ज[1] देखने के लिए इकट्ठे हुए।

वहाँ एक जगह एक नाग और गरुड़ मेला देखते हुए इकट्ठे खड़े थे। नाग ने गरुड़ को, गरुड़ न समझकर उसके कंधे पर हाथ रख दिया। गरुड़ ने मुड़कर देखा कि मेरे कंधे पर हाथ किसने रखा? उसने देखा कि नाग है। नाग ने भी जब गरुड़ को देखा तो उसे जान का डर हुआ। नगर से निकल नदी के रास्ते भाग गया। गरुड़ ने भी पकड़ने के लिए पीछा किया।

---

१. समज्ज = मेला।

उस समय बोधिसत्त्व तपस्वी थे। वे उसी नदी के किनारे पर्णशाला में रहते हुए दिन की थकावट मिटाने के लिए नहाने का वस्त्र पहन वल्कल-छाल को बाहर छोड़ नदी में उतर स्नान कर रहे थे।

नाग ने सोचा इस प्रव्रजित की सहायता से जान बचा सकूँगा। उसने अपना असली रूप छोड़ मणि की शकल बना वल्कल के अन्दर प्रवेश किया। गरुड़ ने पीछा करते हुए उसे वहाँ घुसा देख वल्कल के प्रति गौरव होने से उसे न पकड़ बोधिसत्त्व को 'भन्ते! मैं भूखा हूँ। आपने वल्कल को लें। मैं नाग को खाऊँगा' कहने के लिए यह गाथा कही—

इधूरगानं पवरो पविठ्ठो
सेलस्स वण्णेन पमोक्खमिच्छं
ब्रह्मञ्च वण्णं अपचायमानो
बुभुक्खितो नो विसहामि भोत्तुं ॥

[यहाँ मणिवर्ण से नागराजा जान बचाने के लिए घुसा है। मैं ब्राह्मण वर्ण का आदर करने के कारण भूखा होता हुआ भी उसे खाने की हिम्मत नहीं करता।]

इधूरगानं पवरो पविट्ठो, उस वल्कल में नागों में श्रेष्ठ नागराज प्रविष्ट हुआ है। **सेलस्स वण्णेन**, मणि के वर्ण से, अर्थात् मणि की शक्ल बना प्रविष्ट हुआ। **पमोक्खमिच्छं**, मुझसे बचने की इच्छा से। **ब्रह्मञ्च वण्णं अपचायमानो**, ब्रह्म-वर्ण, श्रेष्ठ-वर्ण, की पूजा करने के कारण, गौरव करने के कारण **बुभुक्खितो नो विसहामि भोत्तुं**, वल्कल में घुसे हुए इस नाग को भूख होते भी नहीं खा सकता हूँ।

पानी में खड़े ही खड़े बोधिसत्त्व ने गरुड़ राज की प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही—

सो ब्रह्मगुत्तो चिरमेव जीव
दिब्बा च ते पातुभवन्तु भक्खा
सो ब्रह्मवण्णं अपचायमानो
बुभुक्खितो नो विसरासि भोत्त, ॥

[तू ब्रह्म द्वारा रक्षित होकर चिरकाल तक जीवित रह। तुझे दिव्य भोजन प्राप्त हो। तू ब्रह्म-वर्ण के गौरव के कारण भूखा होता हुआ भी नहीं खा रहा है।]

सो ब्रह्मगुत्तो, वह तू ब्रह्म द्वारा गोपित, ब्रह्म द्वारा रक्षित होकर **दिब्बा च ते पातुभवन्तु भक्खा**, देवताओं के भोजन करने योग्य भोजन तुझे मिलें। प्राण हिंसा करके नाग-मांस खानेवाला न बन।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने पानी में खड़े ही खड़े अनुमोदन कर, पानी से निकल वल्कल पहन उन दोनों को अपने आश्रम पर ले जा मैत्री-भावना की प्रशंसा कर दोनों का मेल करा दिया। उसके बाद से वह प्रसन्नता पूर्वक सुख से रहने लगे।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय नाग और गरुड़ यह दो महामाय थे। तपस्वी तो मैं ही था।

⊙

१५५. गग्ग जातक

"जीव वस्स सतं गग्ग. . ." यह शास्ता ने जेतवन के समीप राजा प्रसेनजित के बनवाये राजकाराम में रहते हुए अपनी छींक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन शास्ता को राजकाराम में चारों प्रकार की परिषद् में बैठे धर्मोपदेश करते समय छींक आयी। भिक्षुओं ने जोर से, ऊँचे स्वर से कहा—"भन्ते! भगवान्! जीएँ! सुगत! जीएँ।" उनके चिल्लाने से धर्मोपदेश में विघ्न पड़ा। भगवान् ने भिक्षुओं से पूछा—

भिक्षुओं, यदि किसी के छींकने पर "जीएँ" कहा जायगा, तो क्या उस कहने से उसके जीने मरने पर कुछ प्रभाव पड़ेगा?"

"भन्ते! नहीं।"

"भिक्षुओं! छींकने पर "जीएँ', नहीं कहना चाहिए। जो कहे उसे दुष्कृत का दोष लगेगा।"

उन दिनों भिक्षुओं को छींक आने पर लोग कहा करते—"भन्ते! जीएँ।" भिक्षु बुरा मानते और कुछ न बोलते। लोग खीझ उठते—कैसे हैं यह श्रमण शाक्य-पुत्रीय जो "भन्ते! जीएँ" कहने पर कुछ नहीं बोलते। भगवान् से यह बात कही गयी। भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ! गृहस्थ लोग मंगल-अमंगल को मानने वाले हैं। **भिक्षुओ! गृहस्थ लोगों के 'भन्ते जीएँ' कहने पर 'चिरकाल तक जीते रहो' कहने की अनुज्ञा देता हूँ।"**

भिक्षुओं ने भगवान् से पूछा—भन्ते? 'जीओ', तथा 'जीते रहो' यह कहने की प्रथा कब से आरम्भ हुई? शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह 'जीओ'

---

१. **विनय पिटक में यह शिक्षापद नहीं मिला।**

'जीते रहो' कहने की प्रथा पुराने समय में आरम्भ हुई। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व काशी देश में एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। उनका पिता व्यापार करके गुजारा करता था। उसने सोलह वर्ष के बोधिसत्त्व से मोती आदि की चीजें उठवा ग्राम निगम आदि में घूमते हुए वाराणसी पहुँचकर द्वारपाल के घर पर भोजन बनवाकर खाया। निवासस्थान नहीं था। उसने पूछा--"असमय पर आये हुए अतिथि कहाँ रहते हैं?"

मनुष्यों ने उत्तर दिया--"नगर के बाहर एक शाला है। लेकिन उसमें भूत-प्रेत आदि रहते हैं। यदि चाहें तो वहाँ रहें।"

बोधिसत्त्व ने कहा--"तात! चलें! डरने की जरूरत नहीं। मैं उस यक्ष का दमन कर उसे आपके चरणों पर गिराऊँगा।" वह पिता को लेकर वहाँ गये।

पिता तख्ते पर लेटा। वे स्वयं पिता के पैरों को दबाते हुए बैठे।

वहाँ रहनेवाले यक्ष ने बारह वर्ष कुबेर की सेवा करके उससे यह अधिकार प्राप्त किया था कि उस शाला में जो आदमी आयें उनमें से किसी को छींक आने पर यदि कोई 'जीवें' कहे और जिसको छींक आयी हो वह भी 'जीओ' कहे तो उनको छोड़कर वह शेष सभी को खा सकता है। वह चौखट पर रहता था। उसने बोधिसत्त्व के पिता को छींक लिवाने के लिए अपने प्रताप से सूक्ष्म-चूर्ण बिखेरा। चूर्ण आकर उसके नथनों में पड़ा। उसे तख्ते पर पड़े ही पड़े छींक आयी। बोधिसत्त्व ने उसे 'जीवें' नहीं कहा। यक्ष उसे खाने के लिए चौखट से उतरने लगा। बोधिसत्त्व ने उसे उतरते देख, सोचा इसी ने मेरे पिता को छिकाया होगा। छींकने पर जो 'जीवें' न कहें उन्हे यह यक्ष खा लेता होगा। उन्होंने पिता को सम्बोधन करके यह पहली गाथा कही--

जीव वस्स सतं गग्ग! अपरानि च वीसतिं,
मा मं पिसाचा खादन्तु जीव त्वं सरदोसतं॥

[गग्ग ! तू सौ वर्ष जीवित रह। और भी बीस वर्ष। मुझे पिशाच न खायें। तू सौ वर्ष जीवित रह।]

गग्ग, यह पिता को उसके नाम से सम्बोधन किया है। **अपरानि च वीसति**, और भी बीस वर्ष जीवित रहें। **मा मं पिसाचा खादन्तु**, मुझे पिशाच न खाये। **जीव त्वं सरदो सतं** तू एक सौ बीस वर्ष जी।

सरदसतं का अर्थ तो सौ वर्ष ही होता है। लेकिन पहले के बीस जोड़ देने से यहाँ एक सौ बीस से मतलब है।

———

यक्ष ने बोधिसत्त्व का वचन सुन सोचा कि इस माणवक ने 'जीवें' कहा है, इसलिए इसे नहीं खा सकता। इसके पिता को खाऊँगा। इसलिए पिता के पास गया। उसने उसे आते देख सोचा, यह यक्ष उन लोगों को खा लेता होगा, जो 'जीवें' के उत्तर में 'जीओ' न कहते होंगे। इसलिए मैं प्रतिवचन करूँगा। उसने पुत्र के बारे में दूसरी गाथा कही––

त्वम्पि वस्स सतं जीव अपरानि च वीसतिं,
विसं पिसाचा खादन्तु जीव त्वं सरदोसतं ॥

[तू भी सौ वर्ष जीवित रह। और भी बीस वर्ष। पिशाच विष खायें। तू सौ वर्ष जीवित रह।]

———

विसं पिसाचा, पिशाच हलाहल विष खाये।

———

यक्ष ने उसकी-बात सुन सोचा, मैं दोनों में से किसी को नहीं खा सकता। वह रुक गया।

बोधिसत्त्व ने पूछा––'भो यक्ष ! इस शाला में प्रवेश करनेवाले आदमियों को तू क्यों खाता है ?'

"बारह वर्ष कुबेर की सेवा करके अधिकार प्राप्त किया है।"

"क्या सभी को खाने का अधिकार है ?"

"जीवें' और 'जीओ' कहने वालों को छोड़ शेष सभी को खाता हूँ।"

"यक्ष ! तूने पहले बुरे कर्म किये। इसलिए तू निर्दयी, कठोर तथा दूसरों की हिंसा करनेवाला पैदा हुआ। अब फिर उसी तरह के काम करके तू **तमोतम-परायण**[1] हो रहा है। इसलिए अब से तू प्राणि-हिंसा आदि से विरत हो।"

इस प्रकार उस यक्ष का दमन कर, नरक के भय से उसे डरा, पञ्चशीलों में प्रतिष्ठित कर यक्ष को दूत की तरह विनीत कर दिया।

आगे चलकर आने-जाने वाले मनुष्यों ने यक्ष को देखा और जब उन्हें मालूम हुआ कि बोधिसत्त्व ने उसका दमन किया, तो उन्होंने राजा से कहा—"देव ! एक तरुण ने उस यक्ष का दमन कर उसे दूत की तरह विनीत कर रखा है।"

राजा ने बोधिसत्त्व को बुलाकर सेनापति के स्थान पर नियुक्त किया। और पिता का बहुत सत्कार किया।

राजा यक्ष को बलि-ग्रहण का अधिकारी बना, बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार चल, दान आदि पुण्य-कर्म कर स्वर्ग सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'जीवें' और 'जीओ' कहने की प्रथा उस समय चली, कहा और जातक का मेल बैठाया।

उस समय का राजा आनन्द था। पिता काश्यप था। और पुत्र तो मैं ही था।

⊙

१. अन्धकार से अन्धकार में जाने वाला = हीनकुल में पैदा होकर नीच कर्म करने वाला।

१५६. अलीनचित्त जातक

"**अलीनचित्तं निस्साय....**", यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक हिम्मत-हारे भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इसकी कथा ग्यारहवें परिच्छेद (निपात) की **संवर जातक**[1] में आयगी। शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा--"भिक्षु, क्या तूने सचमुच हिम्मत छोड़ दी?"

"भगवान्! सचमुच।"

शास्ता ने कहा--"भिक्षु, क्या तूने पूर्व समय में हिम्मत करके मांस के टुकड़े सदृश छोटे से कुमार को बारह योजन के वाराणसी के नगर का राज्य नहीं लेकर दिया था? अब इस प्रकार के शासन में प्रव्रजित होकर क्यों हिम्मत हारता है?" इनता कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वाराणसी के समीप ही बढ़ई-ग्राम था। वहाँ पाँच सौ बढ़ई रहते थे।

वह नौका से नदी के स्रोत के ऊपर की तरफ जाते। वहाँ जंगल में घर बनाने की लकड़ी काटकर वही एक तल्ले के मकान बना, खम्भे से आरम्भ करके सभी लकड़ियों पर चिह्न लगाते। फिर उन्हें नदी के किनारे ले जा, नौका पर चढ़ा, स्रोत के अनुसार चल नगर में आते। वहाँ जो जैसे घर चाहता, उसे वैसा बना देकर कार्षापण ले, फिर वैसे ही जा, घर के सामान लाते।

उनके इस प्रकार जीविका चलाते हुए एक बार पड़ाव डालकर लकड़ी काटते समय, उनके पास ही एक हाथी का पाँव खैर की लकड़ी के खूँटे पर पड़ा।

---

१. संवर जातक (४६२)।

उस खूँटे से उसका पाँव बिंध कर उसमें बड़ी पीड़ा होने लगी। पैर सूज गया। उसमें से पीप बहने लगा।

पीड़ा से पीड़ित हो उसने लकड़ी काटने का शब्द सुनकर सोचा कि इन बढ़इयों से मेरा कल्याण होगा। ऐसा समझ कर वह तीन पैरों से चलकर उनके पास पहुँचा और वहीं नजदीक ही पड़ रहा।

बढ़इयों ने उसका सूजा हुआ पैर देखा तो पास गये। उन्हें उसमें खूँटा दिखायी दिया। उन्होंने तेज कुल्हाड़ी से खूँटे के चारों ओर गहरा निशान कर, उसमें रस्सी बाँधकर उसे खींचकर निकाला। फिर पीप निचोड़कर, निकालकर गर्म पानी से धोया। उसके अनुकूल दवाई करने से थोड़े ही समय में घाव ठीक हो गया।

हाथी ने निरोग होकर सोचा—इन बढ़इयों ने मेरी जान बचायी। मुझे इनकी कुछ सेवा करनी चाहिए। उस दिन से वह बढ़इयों के साथ वृक्ष लाने लगा। छीलने के समय वह उन्हें उलट-उलट कर सामने करता। कुल्हाड़ी आदि औजार ले आता। सूण्ड में लपेटकर काले धागे के सिरे को पकड़ लेता। बढ़ई भी भोजन के समय इसे एक-एक पिण्ड देते तो पाँच सौ पिण्ड हो जाते।

उस हाथी का एक बच्चा था, जो एकदम श्वेत वर्ण का था और था मंगल हाथी। हाथी ने सोचा कि मैं बूढ़ा हो गया। अब मुझे अपने लड़के को इन बढ़इयों को काम करने के लिए देकर स्वयं जाना चाहिए। वह बिना बढ़इयों को सूचित किये ही जंगल में गया। वहाँ से लड़के को ले आकर बढ़इयों से बोला—"यह मेरा लड़का है। तुमने मुझे जीवन-दान दिया है। मैं डॉक्टर की फीस के बदले में इसे देता हूँ। अब से यह तुम्हारी सेवा किया करेगा।" इतना कह, पुत्र को आदेश दे कि पुत्र! जो कुछ मेरा काम है, वह सब अब से तू करना, उसे बढ़इयों को सौंप स्वयं जंगल में प्रवेश किया।

उस समय से वह हाथी-बच्चा बढ़इयों के कहने के अनुसार सब काम करने लगा। वे भी उसे पाँच सौ पिण्ड देकर पोसते। वह काम समाप्त कर नदी में उतर खेलकर आया करता। बढ़इयों के बच्चे भी उसे सूण्ड आदि से पकड़ जल और स्थल में सभी जगह उससे खेलते। श्रेष्ठ हाथी हों, घोड़े हों, अथवा

मनुष्य हों, कोई भी पानी में मल-मूत्र नही त्यागते। यह भी पानी में मल-मूत्र न कर बाहर नदी के किनारे पर ही करता था।

एक दिन नदी के ऊपर के हिस्से में वर्षा हुई। हाथी की आधी सूखी लेण्डी पानी से बहकर नदी के रास्ते जा वाराणसी नगर के पत्तन पर एक झाड़ी में जा अटकी।

राजा के हाथी-सेवक पाँच सौ हाथियों को नहलाने के लिए ले गये। श्रेष्ठ हाथी के लेण्डी की गन्ध सूँघकर एक भी हाथी ने पानी में उतरने की हिम्मत न की। सभी पूँछ उठाकर भागने लगे। हाथी-सेवकों ने हथवानों को खबर की। उन्होंने सोचा पानी में कुछ खतरा होगा। पानी खोज करने पर जब उन्होंने झाड़ी में श्रेष्ठ हाथी की लेण्डी देखी तो समझ गये कि यही कारण है। उन्होंने चाटी मँगवायी और उसे पानी से भर, उसमें उसे घोल हाथियों के शरीर पर छिड़कवा दिया। शरीर सुगन्धित हो गये तब हाथी नदी में उतरकर नहाये।

हथवानों ने राजा को वह समाचार सुना सलाह दी कि देव ! वह हाथी खोजवाकर मँगवाया जाना चाहिए। राजा नौकाओं के बेड़े से नदी में उतर ऊपर जाने वाले बेड़े से बढ़इयों के निवास-स्थान पर पहुँचा। वह हाथी-बच्चा नदी में खेल रहा था। जब उसने भेरी शब्द सुना तो जाकर बढ़इयों के पास खड़ा हो गया। बढ़इयों ने राजा की अगवानी करते हुए कहा——देव ! यदि लकड़ी की आवश्यकता थी, तो कष्ट क्यों किया ? क्या भेजकर मँगाना उचित न होता ?

"अरे ! मैं लकड़ी के लिए नहीं आया। मैं तो इस हाथी के लिए आया हूँ।"

"देव ! पकड़वा कर ले जायें।"

हाथी-बच्चे ने जाना नहीं चाहा।

"अरे, हाथी क्या करता है ?"

"देव ! जिससे बढ़इयों का पोषण हो, वह लाता है।"

राजा ने "अच्छा भाई !" कहा और हाथी की सूण्ड के पास, पूँछ के पास और चारों पैरों के पास एक-एक लाख कार्षापण रखवाये। हाथी इतने पर भी नहीं गया। सब बढ़इयों को दुशाले तथा बढ़इयों की स्त्रियों को पहनने

के वस्त्र मिलने पर तथा साथ खेलनेवाले लड़कों के पालन-पोषण का प्रबन्ध होने पर वह बढ़इयों को पीछे आने न दे, स्त्रियों और लड़कों को देखता हुआ राजा के साथ चला गया।

राजा उसे लेकर नगर गया। वहाँ नगर और हस्ति-शाला को अलंकृत करवाया। हाथी को नगर की प्रदक्षिणा करवा हस्ति-शाला में ले जाया गया। सभी तरह के गहने पहना, अभिषेक कर, उसे राजा की खास सवारी बनाया। फिर उसे अपना मित्र घोषित कर आधा राज्य हाथी को दे दिया। राजा ने उसे अपने बराबर का दर्जा दिया।

हाथी के आने के समय से सारे जम्बुद्वीप का राज्य राजा के हाथ में आया जैसा ही हो गया।

इस प्रकार समय गुजरता गया। बोधिसत्त्व ने उस राजा की पटरानी की कोख में प्रवेश किया। उसके गर्भ के पूरे होते-होते राजा मर गया। लोगों ने सोचा कि यदि हाथी को राजा के मरने की बात का पता लगेगा तो उसका हृदय फट जायगा। इसलिए वह हाथी से राजा के मरने की बात को गुप्त रखकर उसकी सेवा करते रहे।

ठीक पड़ोस के कोशल-राजा ने जब सुना कि वाराणसी-नरेश मर गये तो उसने राज्य को खाली देख बड़ी सेना ला नगर घेर लिया। नगर-निवासियों ने नगर के दरवाजे बन्द कर कोशल राजा के पास सन्देश भेजा—

"हमारे राजा की पटरानी गर्भवती है। अंग-विद्या के जानने वालों का कहना है कि अब से सातवें दिन पुत्र होगा। यदि वह पुत्र को जन्म देगी तो हम आज से सातवें दिन राज्य न देकर युद्ध करेंगे। इतने दिन प्रतीक्षा करें।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

देवी ने सातवें दिन पुत्र को जन्म दिया। लोगों ने कहा यह हमारे उदास-चित्त की उदासी को दूर करता हुआ पैदा हुआ है, और उसका नाम अलीन-चित्त कुमार रखा।

उसके पैदा होने के ही दिन से नगर-निवासी कोशल-नरेश के साथ युद्ध करने लगे। युद्ध का नेता न होने से बड़ी सेना भी युद्ध करती हुई थोड़ी-थोड़ी पीछे हटने लगी।

अमात्यों ने रानी से वह समाचार कह पूछा--

"आर्ये ! इस प्रकार सेना के पीछे हटने से हमें डर लगता है कि हम हार न जायें। राजा का मित्र मंगल हाथी न राजा के मरने की बात को जानता है, न पुत्र उत्पन्न होने की बात जानता है और न कोशल-नरेश के आकर युद्ध करने की बात जानता है। हम इसे यह सब कह दें ?"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। फिर पुत्र को अलंकृत कर कोमल वस्त्र की गद्दी पर लिटा महल से उतर अमात्यों को साथ ले हस्ति-शाला में गयी। वहाँ बोधिसत्त्व को हाथी के पैरों पर रखकर बोली--

"स्वामी ! तुम्हारा मित्र तो मर गया। हमने तुम्हारे हृदय के फट जाने के डर से तुमसे नहीं कहा। यह तुम्हारे मित्र का पुत्र है। कोशल-राजा आकर नगर को घेरे हुए तेरे पुत्र से युद्ध कर रहा है। सेना पीछे हट रही है। या तो तू अपने पुत्र को स्वयं ही मार डाल अथवा राज्य जीतकर इसे दे।"

उसी समय हाथी ने बोधिसत्त्व को सूण्ड में ले उठा कर सिर पर रखा। रोया-पीटा। फिर बोधिसत्त्व को उतार कर देवी के हाथ में लिटाया और कोशल-नरेश को पकड़ने के लिए हस्ति-शाला से निकल पड़ा।

मन्त्री-गण कवच उतार, सज-सजाकर दरवाजे खोल उसके पीछे-पीछे हो लिए। हाथी ने नगर से निकल क्रौंध-नाद किया। लोगों को डरा कर भगा दिया। सेना की पाँत को तोड़ कोशल-राजा को बालों से पकड़ लाकर बोधिसत्त्व के पैरों में डाल दिया। वह मारने के लिए उठा, तो उसे रोका। अब से सावधान रह। यह मत समझ कि कुमार बालक है। इस प्रकार उपदेश दे उसे उत्साहित किया।

उस समय से सारे जम्बूद्वीप का राज्य एक प्रकार से बोधिसत्त्व के ही हाथ में आ गया। कोई भी शत्रु विरोध न कर सका।

सात वर्ष की अवस्था होने पर बोधिसत्त्व का अभिषेक हुआ। वह अलीन-चित्त राजा के नाम से धर्मानूकूल राज्य करते रह कर मरने पर स्वर्ग सिधारा। शास्ता ने पूर्व-जन्म की यह कथा ला सम्यक् सम्बुद्ध होने की अवस्था में यह दो गाथाएँ कही--

अलीनचित्तं निस्साय पहट्ठा महती चमू
कोसलं सेना-सन्तुट्ठं जीवगाहं अगाहयी
एवं निस्सयसम्पन्नो भिक्खु आरद्धवीरियो
भावयं कुशलं धम्मं योगक्खेमस्स पत्तिया
पापुणे अनुपुब्बेन सब्बसञ्ञोजनक्खयं ॥

[अलीनचित के कारण बड़ी सेना प्रसन्न हुई । अपने राज्य से असन्तुष्ट कोशल नरेश को जिन्दा पकड़वा लिया । इसी प्रकार यदि भिक्षु प्रयत्नशील हो और उसका सहायक हो तो वह निर्वाण-प्राप्ति के लिए कुशल-कर्मों का अभ्यास कर क्रम से सञ्ञोजनों का क्षय कर सकता है ।]

अलीनचित्तं निस्साय, अलीनचित्त राजकुमार के कारण **पहट्ठा महती चमू,** हम लोगों को राज्य-परम्परा देखनी मिली, इसलिए बड़ी सेना प्रसन्न हुई । **कोसलं सनासन्तुट्ठं,** कोशल नरेश को, जो अपने राज्य से असन्तुष्ट हो पराया राज्य लेने को आया । **जीवगाहं अगाहयी** बिना मारे ही उस सेना ने उस हाथी से राजा को जीवित पकड़वाया । **एवं निस्सय सम्पन्नो,** जैसे वह सेना उसी प्रकार कोई कुल-पुत्र बुद्ध अथवा बुद्ध-श्रावक सदृश किसी हितैषी को या उसके आश्रय से युक्त । **भिक्खू,** जो शुद्ध है, उसी का यह नाम है । **आरद्धविरियो,** प्रयत्न-शील; चार प्रकार के दोषों से रहित प्रयत्न से युक्त । **भावयं कुसलं धम्मं,** कुशल, निर्दोष सैंतीस बोधि-पाक्षिक धर्मों की भावना करता हुआ । **योगक्खेमस्स पत्तिया** चारों प्रकार के योग से क्षेम अथवा निर्वाण की प्राप्ति के लिए उस धर्म का अभ्यास करते हुए । **पापुणे अनुपुब्बेन सब्बससञ्ञोजनक्खयं** इस प्रकार **विपश्यना** से इस कुशल-धर्म का अभ्यास करते हुए वह किसी हितैषी का आश्रय-प्राप्त भिक्षु क्रम से विपश्यना-ज्ञान और पहले मार्ग-फल प्राप्त करते हुए अन्त में दसों सञ्ञोजनों का नाश होने पर पैदा होने के कारण सब्ब-सञ्ञोजनक्खय स्वरूप कहे जाने वाले अर्हत्व को प्राप्त करता है । क्योंकि निर्वाण प्राप्त होने पर सभी सञ्ओजनों का क्षय हो जाता है, इसलिए उसे भी सञ्ञोजनक्षय ही कहा जा सकता है । इसलिए यह अर्थ हुआ कि निर्वाण कहे जाने वाले सभी सञ्ञोजनों के क्षय को प्राप्त करता है ।

इस प्रकार भगवान् अमृतमहानिर्वाण को धर्मोपदेश में मुख्य स्थान दे, आगे चार आर्य-सत्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर हिम्मत-हारा भिक्षु अर्हत्व पद लाभी हुआ।

उस समय माता महामाया, पिता शुद्धोदन महाराजा था। राज्य लेकर देने वाला यह हिम्मत-हारा भिक्षु था। हाथी का पिता सारिपुत्र। अलीनचित्त कुमार तो मैं ही था।

⊙

१५७. गुण जातक

"**येन कामं पणामेति......**" यह (उपदेश) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय आनन्द स्थविर को एक हजार वस्त्र मिलने के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

आनन्द स्थविर की कोशल-नरेश के महल में धर्मोपदेश करने की कथा पहले **महासार जातक**[1] में आ ही गयी है।

जिस समय स्थविर राजा के महल में धर्मोंपदेश दे रहे थे राजा के लिए हजार-हजार के मूल्य के हजार वस्त्र लाये गये। राजा ने उनमें से पाँच सौ वस्त्र पाँच सौ देवियों को दिये। उन सबों ने वे वस्त्र लेकर दूसरे दिन आनन्द स्थविर को दे दिये। स्वयं पुराने ही वस्त्र पहन कर राजा के जलपान करने की जगह गयी।

राजा ने पूछा—"मैंने तुम्हें हजार-हजार के मूल्य के वस्त्र दिलवाये। तुम उन्हें बिना पहने क्यों आयी?"

"देव! वह हमने आनन्द स्थविर को दे दिये।"

"आनन्द स्थविर ने सभी ले लिये?"

"देव! हाँ।"

उसे क्रोध आया—'सम्यक् सम्बुद्ध ने तीन चीवरों की अनुज्ञा दी है। मालूम होता है आनन्द स्थविर दुशालों का व्यापार करेंगे। उन्होंने इतने ज्यादा वस्त्र ग्रहण किये हैं।' जलपान समाप्त करके राजा विहार गया। वहाँ स्थविर के कमरे (परिवेण) में प्रवेश कर, उन्हें प्रणाम कर बैठा। फिर राजा ने पूछा—"भन्ते! हमारे घर की स्त्रियाँ आपके पास धर्म सुनती व सीखती हैं?"

---

१. **महासार जातक (९२)।**

"हाँ महाराज ! ग्रहण करने योग्य ग्रहण करती हैं, सुनने योग्य सुनती हैं।"

"क्या वे केवल सुनती हैं, अथवा तुम्हें कपड़ा वा वस्त्र भी देती हैं।"

"महाराज ! आज हजार-हजार मूल्य के पाँच सौ वस्त्र दिये।"

"भन्ते ! तुमने उन्हें ले लिया ?"

"महाराज ! हाँ।"

"भन्ते ! क्या शास्ता ने केवल तीन ही चीवरों की आज्ञा नहीं दी है ?"

"महाराज ! हाँ। शास्ता ने एक भिक्षु को केवल तीन ही चीवरों का उपयोग करने की आज्ञा दी। लेकिन ग्रहण करना मना नहीं किया है। इस-लिए मैंने भी दूसरे ऐसे (भिक्षुओं) को देने के लिए जिनके चीवर फट गये हैं वे वस्त्र ग्रहण कर लिये।"

"वे भिक्षु तुमसे वस्त्र पाकर अपने पुराने चीवरों को क्या करेंगे ?"

"पुराने वस्त्र का **उत्तरासंग**[1] बना लेंगे।"

"पुराने उत्तरासंग का क्या करेंगे ?"

"**अन्तरवासक**[2] बना लेंगे।"

"पुराने अन्तरवासक का क्या करेंगे ?"

"बिछावन बना लेंगे।"

"पुराने बिछौने का क्या करेंगे ?"

"जमीन पर बिछा लेंगे।"

"जमीन पर जो पहले बिछाते थे, उसका क्या करेंगे ?"

"पाँव झाड़ने का काम लेंगे।"

"पाँव झाड़ने के पुराने कपड़े का क्या करेंगे ?"

"महाराज ! जो श्रद्धापूर्वक दिया गया है, वह फेंका नही जा सकता। इसलिए पाँव झाड़ने के पुराने कपड़े को कुल्हाड़ी से कूटकर मिट्टी में मिला-कर शयनासन की जगहों पर मिट्टी का लेप करेंगे।"

"भन्ते ! आपको दिया हुआ वस्त्र पाँव झाड़ने का कपड़ा बनने पर भी फेंका नहीं जा सकता ?"

---

१. ऊपर ओढ़ने की चादर जैसा चीवर।

२. नीचे पहने का चीवर, जैसे धोती।

"महाराज ! हाँ, हमें दिया फेंका नहीं जा सकता। उपयोग में ही लाया जाता है।"

राजा ने सन्तुष्ट हो प्रसन्नता के मारे घर पर रखे दूसरे पाँच सौ वस्त्र भी मँगवा कर स्थविर को दिये। स्थविर ने दान का अनुमोदन किया। उसे सुन स्थविर को प्रणाम कर राजा स्थविर की प्रदक्षिणा कर चला गया।

स्थविर ने जो पाँच सौ चीवर पहले मिले थे वह उन भिक्षुओं को बाँट दिये जिनके चीवर पुराने हो गये थे।

स्थविर के पाँच सौ शिष्य थे। उनमें एक छोटी आयु का भिक्षु स्थविर की बहुत सेवा करता था। परिवेण में झाड़ू लगाता। पीने और काम में लाने का पानी लाकर उपस्थित करता। दातून लाकर देता। मुख धोने तथा स्नान करने के लिए जल देता। पाखाने, अग्नि-शाला तथा सोने-बैठने के स्थान को ठीक-ठाक करके रखता। हाथ-पैर दबाना तथा पीठ मलना आदि करता। स्थविर ने यह सोच कि इसने मेरा बड़ा उपकार किया है पीछे मिले सब वस्त्र उसी को देना उचित समझ दे डाले। उसने भी वह सब वस्त्र बाँट कर अपने गुरु-भाइयों को दिये।

वे सभी भिक्षु जिन्हें वस्त्र मिला वस्त्र के टुकडे-टुकड़े कर उन्हें रंग कर्णिकार पुष्प के सदृश, काषाय वस्त्र पहन शास्ता के पास गये। वहाँ प्रणाम कर एक ओर बैठे भिक्षु कहने लगे—

"भन्ते ! क्या स्रोतापन्न आर्य-श्रावक भी मुँह देखकर दान देते हैं ?"

"भिक्षुओं, आर्य-श्रावक मुँह देखकर दान नहीं देते।"

"भन्ते ! हमारे उपाध्याय धर्म-भण्डागारिक स्थविर ने हजार-हजार की कीमत के पाँच सौ वस्त्र एक ही छोटी आयु के भिक्षु को दिये। उसने जो उसे मिले बाँट कर हमें दिये।"

"भिक्षुओ, आनन्द मुख देखकर दान नहीं देता। उस भिक्षु ने इसकी बहुत सेवा की। उसने अपने उपकार का प्रत्युपकार करने के विचार से गुणवान् होने के ख्याल से, उचित होने से सोचा कि उपकारी का प्रत्युपकार करना चाहिए; और इसीलिए अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए दिये। पुराने पण्डितों ने भी अपना उपकार करने वाले का बदले में उपकार किया है।" उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व सिंह की योनि में पैदा हो पर्वत-गुफा में रहते थे।

उन्होंने एक दिन गुफा से निकल पर्वत के नीचे की ओर देखा। उस पर्वत के चारों ओर बड़ा भारी तालाब था। उसके एक (तरफ) ऊँची जगह पर कड़े दलदल के ऊपर कोमल हरी घास उगी थी। खरगोश, हरिण और हलके मृग उसके ऊपर विचर कर उसे खाते। उस दिन भी एक मृग उन तिनको को खाता हुआ घूम रहा था। सिंह उस मृग को पकड़ने के लिए पर्वत पर से उछल कर मृग की तरफ कूदा। मृग मरने के भय से डरकर चिल्लाता हुआ भाग गया। सिंह वेग को न रोक सकने के कारण दलदल पर गिरकर नीचे चला गया। ऊपर न आ सकने के कारण चारों पैर खंभे की तरह हो गये। उसे एक सप्ताह तक वहीं निराहार खड़ा रहना पड़ा।

एक सियार शिकार खोज रहा था। उसे देख भय से भागा। सिंह ने उसे बुलाकर कहा--"भो! सियार! भाग मत। मैं दलदल में फँसा हूँ। मेरे जीवन की रक्षा कर।" सियार उसके पास जाकर बोला--"मैं तो तुझे निकालूं, लेकिन डर लगता है कि तू निकलकर मुझे खा न जाय।"

"डर मत। मैं तुझे नहीं खाऊँगा। तेरा बड़ा उपकार करूँगा। मुझे किसी उपाय से निकाल।"

सियार ने उससे प्रतिज्ञा करवा चारों पैरों के इर्द-गिर्द से दलदल हटा चारों पैरों से चार नालियाँ पानी की ओर बना दीं। पानी ने घुसकर गारे को नरम कर दिया।

उसी समय सियार सिंह के पेट के नीचे घुस कर चिल्लाया--स्वामी! जोर लगायें। स्वयं सिंह के पेट में सिर से टक्कर लगायी। सिंह जोर लगाने से गारे के ऊपर आया और कूद कर स्थल पर जा खड़ा हुआ।

थोड़ी देर विश्राम कर तालाब में उतर गारे को धो, स्नान कर सिंह ने एक भैंसे का बध किया। उसे दाढ़ों से चीर उसका मांस उधेड़ सियार के आगे रख कहा--सौम्य! ले खा। सियार के खा चुकने पर अपने खाया। सियार ने एक मांस-पेशी मुंह में ली।

शेर ने पूछा—"सौम्य ! यह किसके लिए ?"

सियार बोला—"तुम्हारी दासी है। यह उसके लिए।"

सिंह बोला—'ले लें।' स्वयं भी सिंहिनी के लिए माँस लेकर उसने सियार से कहा—"सौम्य ! आ अपने पर्वत के शिखर पर जाकर वहाँ से सखि के निवास स्थान पर जायगें।" वहाँ पहुँच मांस खिला चुकने पर उसने सियार और सियारिनी को आश्वासन दिया—अब से मैं तुम्हारी देख-भाल करूँगा। वह उन्हें अपने निवास-स्थान पर ले गया। वहाँ गुफा के द्वार पर ही दूसरी गुफा में बसाया।

उसके बाद से सिंह सिंहनी और सियारिनी को छोड़ सियार के साथ शिकार के लिए जाता। वहाँ नाना पशुओं को मार कर दोनों वहीं खाते। सिंहिनी और सियारिनी को भी लाकर देते। इस प्रकार समय व्यतीत होता रहा। सिंहिनी ने तथा सियारिनी ने भी दो-दो पुत्र को जन्म दिया वे सब इकट्ठे रहने लगे।

एक दिन सिंहिनी के मन में आया—यह सिंह सियार को, सियारिनी को तथा उसके बच्चों को बहुत प्यार करता है। इसका सियारिनी से सम्बन्ध अवश्य होगा इसीलिए उससे स्नेह करता है। मैं इसे कष्ट देकर, डराकर भगाऊँ।

जिस समय सिंह सियार को साथ ले शिकार के लिए जाता सिंहिनी सियारिनी को डराती, धमकाती—तू यहाँ क्यों रहती है ? यहाँ से भागती क्यों नहीं ? उसके बच्चे भी सियारिनी के बच्चों को वैसे ही तंग करते, धमकाते।

सियारिनी ने सियार से सब हाल कहा और बोली—"पता नहीं, सिंहनी सिंह के ही कहने से ऐसा व्यवहार करती है। हम यहाँ बहुत दिन रह चुके। वह हमारी जान भी ले सकता है। अपने निवास-स्थान पर ही चलें।"

सियार ने उसकी बात सुन सिंह के पास जाकर कहा—

"स्वामी ! हम तुम्हारे पास बहुत समय रहे। अधिक देर तक समीप रहने वाले अप्रिय हो जाते हैं। हमारे शिकार के लिग चले जाने पर सिंहदी सियारिनी को तंग करती है। उसे डराती है कि यहाँ क्यों रहती है ? यहाँ से भाग।

सिंह-बच्चे भी सियार-बच्चों को डराते धमकाते हैं। यदि किसी को किसी का अपने पास रहना अच्छा न लगे तो 'जाओ' कह कर उसे निकाल देना चाहिए, तंग करने की क्या जरूरत है?"

इतना कह यह पहली गाथा कही--

येन कामं पणामेति धम्मो बलवतं मिगी ।
उन्नदन्ति विजानाहि जातं सरणतो भयं ।।

[हे सिंह ! बलवान् का यही स्वभाव है कि जहाँ चाहता है भगा देता है। हे उन्नत दाँत वाले (सिंह) ! यह जान लें कि शरण-स्थल से ही भय पैदा हो गया।]

येन कामं पणामेति धम्मो बलवतं बलवान अथवा ऐश्वर्यशाली अपने सेवक को जिस दिशा में चाहता है उस दिशा में भगा देता है, निकाल देता है, यह बलवानों का धर्म है। यह ऐश्वर्य-शालियों का स्वभाव है। यही परम्परा है। इसलिए यदि हमारा रहना अच्छा न लगता हो, तो हमें सीधा निकाल दें। कष्ट देने से क्या लाभ ?--यही अर्थ प्रकट करने के लिए यह कहा। **मिगी,** सिंह को सम्बोधन करता है। वह मृगराज होने से मृगों का मालिक है, इसी-लिए मिगी। **उन्नदन्ति**--यह भी उसी का सम्बोधन है। ऊँचे दाँतों वाला होने से उन्नदन्ति। उन्नदन्ति, यह भी पाठ है। **विजानाहि,** यही ऐश्वर्यशालियों का स्वभाव है, यह जान लें। **जातं सरणतो भयं** हमें तुमसे प्रतिष्ठा मिली, इससे तुम्हीं हमारे शरण। अब तुम्हारे ही पास से भय पैदा हो गया। इसलिए हम अपने निवास-स्थान को जायेंगे।

दूसरा अर्थ--**मिगी** (सिंहिनी) **उन्नदन्ती** मेरे बच्चों और स्त्री को ताड़ती है। **येन कामं पणामेति** जिस-जिस तरह से चाहता है उस-उस तरह से निकाल देता है, प्रवर्तित करता है, तंग करता है--इसे तू जान ले। इसमें हम क्या कर सकते हैं ? **धम्मो बलवतं** यह बलवानों का स्वभाव है। हम जाते हैं। किसलिये ? क्योंकि **जातं सरणतो भयं**।

उसकी बात सुनकर सिंह ने सिंहिनी से पूछा--"भद्रे ! अमुक समय मैं शिकार के लिए गया था और सातवें दिन इस सियार और सियारिनी के साथ लौटा था, इसकी कुछ याद है ?"

"हाँ, याद है ।"

"मेरे एक सप्ताह तक न आ सकने का कारण जानती है ?"

"स्वामी ! नहीं जानती हूँ ।"

"भद्रे ! मैं एक मृग को पकड़ने जाकर, चूक कर दलदल में फँस गया । उसमें से न निकल सकने के कारण सप्ताह भर भूखा खड़ा रहा । सो, इस सियार ने मेरे प्राण बचाये । यह मुझे जीवन-दान देने वाला मित्र है । जो मित्र का धर्म पूरा कर सके वह मित्र दुर्बल नहीं माना जाता । इसके बाद मेरे मित्र, मेरी सखी तथा उसके बच्चों का इस प्रकार अपमान न करना ।"

इतना कह सिंह ने दूसरी गाथा कही—

अपिचेपि दुब्बलो मित्तो मित्तधम्मेसु तिट्ठति
सो ञातको च बन्धू च सो मित्तो सो च मे सखा,
दाठिनि ? मातिमञ्ञत्थो सिगालो मम पाणदो ॥

[यदि मित्र दुर्बल है, लेकिन वह मित्र के कर्त्तव्य को पूरा करता है तो वही रिश्तेदार है, बन्धु है, मित्र है, सखा है ! सिंहिनी ! अपमान मत कर । सियार मेरे प्राणों की रक्षा करने वाला है ।]

अपि चेपि, एक 'अपि' जोर डालने के लिए है, दूसरा 'अपि' सम्भावना प्रकट करता है । अन्वय इस प्रकार है—**दुब्बलो चेपि मित्तो मित्तधम्मेसु अपि तिट्ठति** यदि स्थित रह सकता है । **सो ञातको च बन्धु च सो**, मैत्री चित्त होने से **मित्तो** ! **सो च मे** सहायक होने से **सखा** । **दाठिनि** ! **मातिमञ्ञत्थो**, भद्रे ! दाढ़ वाली ! सिंहिनी ! मेरे मित्र अथवा मेरी सखी का अपमान न कर । यह **सिगालो मम प्राणदो** ।

उसने सिंह की बात सुन सियारिनी से क्षमा माँगी। फिर उसके तथा उसके बच्चों के साथ मिल-जुल कर रहने लगी। सिंह-बच्चे भी सियार के बच्चों के साथ खेलते हुए मौज करते हुए रहने लगे। माता-पिता के मरने पर भी मैत्री बनाये रख मिल-जुल कर रहे। सात पीढ़ी तक उनकी मैत्री बराबर बनी रही।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, आर्य-सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का, प्रकाशन समाप्त होने पर कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी तथा कोई अर्हत हुए।

उस समय सियार आनन्द था। सिंह तो मैं ही था।

⊙

१५८. सुहनु जातक

"**नयिदं विसमसीलेन** ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय भिक्षुओं के बारे में जिनका स्वभाव बड़ा उद्दण्ड था, कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन में भी एक उद्दण्ड, कठोर, दुस्साहसी भिक्षु था और एक दूसरा देहात (जनपद) में भी था।

एक दिन देहात का भिक्षु किसी काम से जेतवन गया। श्रामणेर और छोटी आयु के भिक्षु उसके चण्ड-स्वभाव की बात जानते थे। उन्होंने दोनों उद्दण्ड भिक्षुओं का झगड़ा देखने की इच्छा से कुतूहलवश उस भिक्षु को जेतवन वासी भिक्षु के परिवेण में भेज दिया।

दोनों उद्दण्ड भिक्षु एक दूसरे को देखते ही परस्पर एक हो गये, मित्र बन गये। वह एक दूसरे के हाथ, पैर, पीठ दबाना आदि करने लगे।

भिक्षुओं ने धर्म सभा में बात चलायी--"भिक्षुओ! उद्दण्ड भिक्षु दूसरों के प्रति तो बड़े उद्दण्ड हैं, कठोर हैं तथा दुस्साहसी हैं लेकिन दोनों परस्पर एक हो गये, मेल कर लिया, प्रेमी बन गये।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ केवल अभी नहीं पहले भी यह औरों के प्रति तो उद्दण्ड, कठोर तथा दुस्साहसी थे लेकिन दोनों परस्पर एक हो गये थे, मेल से रहते थे तथा प्रेमी थे।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उस राजा के सर्वार्थसाधक अमात्य हुए। वे उसे अर्थ तथा धर्म की बातों में सलाह देते थे। वह राजा थोड़ा लोभी स्वभाव का था। उसके यहाँ **महासोण** नाम का एक दुष्ट घोड़ा था।

गान्धार (=उत्तरापथ) देश के घोड़ों के व्यापारी पाँच सौ घोड़े लाये। राजा को घोड़ों के आने की खबर दी गयी।

पहले बोधिसत्व घोड़ों की कीमत लगा उसे कम न कर दिलवाते थे। राजा को उससे संतोष न होता था। इसलिए उसने दूसरे अमात्य को बुलाकर कहा—"तात ! तू घोड़ों की कीमत लगा। लेकिन कीमत लगाने से पहले महासोण को ऐसा कर कि वह इन घोड़ों में जाकर उन्हें काटकर जख्मी कर दे। जब वे दुर्बल हो जायें और उनका मूल्य घट जाये, तब उनकी कीमत लगाना।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर वैसा ही किया। घोड़ो के व्यापारियों ने असन्तुष्ट हो, उसने जो किया वह बोधिसत्व से कहा।

बोधिसत्व ने पूछा—"क्या तुम्हारे नगर में दुष्ट घोड़ा नहीं है ?"

"स्वामी ! सुहनु नाम का दुष्ट, चण्ड, कड़े स्वभाव का घोड़ा है।"

"अच्छा तो फिर आते समय उस घोड़े को लेते आना।"

उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। फिर आते समय उस घोड़े को साथ लिवाकर आये।

राजा ने सुना कि घोड़ों के व्यापारी आये। उसने खिड़की खोलकर घोड़ों को देखा और महासोण का छुड़वा दिया। घोड़ों के व्यापारियों ने भी महासोण को आते देख सुहनु को छोड़ा। वे दोनों पास आने पर एक दूसरे का शरीर चाटने लगे। राजा ने बोधिसत्व से पूछा—"मित्र ! यह दो घोड़े दूसरों के प्रति चण्ड, कड़े स्वभाव के हैं, दुस्साहसी हैं। दूसरे घोड़ों को काट कर रोगी कर देते हैं। लेकिन एक दूसरे के शरीर को चाटते हुए आनन्द-पूर्वक खड़े हैं। यह क्या बात है ?"

बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "महाराज ! यह परस्पर विरोधी स्वभाव

के नहीं हैं, समान स्वभाव के, समान धातु के हैं" और यह दो गाथाएँ कहीं—

> **नयिदं विसमसीलेन सोणेन सुहनुस्सह,**
> **सुहनूपि तादिसोयेव यो सोणस्स स गोचरो ॥**
> **पक्खन्दिना पगब्भेन निच्चं सन्दान खादिना,**
> **समेति पापं पापेन समेति असता असं ॥**

[सुहनु और सोण का स्वभाव विरोधी नहीं है। जैसा सुहनु है, वैसा ही सोण। उछल-कूद करने वाले,प्रगल्भ तथा हमेशा लगाम खा जाने वाले इस घोड़े का पाप-कर्म और असत्कर्म दूसरे के बराबर है।]

नयिदं विसमसीलेन सोणेन सुहनुस्सह, यह जो सुहनु दुष्ट घोड़ा सोण के साथ प्रेम करता है, यह अपने विरुद्ध स्वभाव वाले के साथ नहीं। यह अपने समान शील वाले के ही साथ करता है। यह दोनों दुष्ट स्वभाव वाले होने से समान स्वभाव वाले वा समान धातु वाले हैं। **सुहनूपि तादिसोयेव यो सोणस्स सगोचरो,** जैसा सोण सुहनु भी वैसा ही। **यो सोणस्स सगोचरो,** जो सोण की चरने की जगह है, वही उसकी भी। जैसे सोण अश्व-गोचर है अश्वों को काटता हुआ ही चरता है, उसी तरह सुहनु भी। इस प्रकार उनकी समान गोचरता प्रदर्शित की गयी है। उनके आचरण की एकता दिखाने के लिए **पक्खन्दिना** आदि कहा गया है।

पक्खन्दिना, अश्वों के ऊपर कूद पड़ने के स्वभाव वाला। **पगब्भेन,** काय-प्रगल्भता आदि दुश्शीलता से युक्त। **निच्चं सन्दानखादिना,** हमेशा अपनी लगाम खा जाने की आदत वाले से। **समेति पापं पापेन,** इन दोनों में से एक का पाप दुष्टता दूसरे के बराबर है। **असता असं** इन दोनों में से एक दुष्ट दुराचारी के साथ दूसरे का असं बुरा काम बराबरी करता है। जैसे गूँह आदि के साथ गूँह आदि मिल जाता है, कोई अन्तर नहीं रहता, वैसे ही।

इतना कहकर बोधिसत्त्व ने राजा को उपदेश दिया—"महाराज ! राजा को अधिक लोभी नहीं होना चाहिए। दूसरों का धन नष्ट करना उचित नहीं।" फिर घोड़ों की कीमत लगवा उचित मूल्य दिलवाया।

घोड़ों के व्यापारी यथोचित मूल्य पाकर संतुष्ट लौटे। राजा भी बोधिसत्व के उपदेशानुसार रह कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय दो घोड़े यह दो दुष्ट भिक्षु थे। राजा आनन्द था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

१५९. मोर जातक

"**उदेतयं चक्खुमा**. . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

उस भिक्षु को भिक्षु शास्ता के पास ले गये। शास्ता ने पूछा--"भिक्षु ! क्या तू सचमुच उद्विग्न हो गया ?"

"भन्ते ! सचमुच।"

"क्या देखकर उद्विग्न हुआ ?"

"एक अलंकृत-शरीर स्त्री को देखकर।"

"भिक्षु ! स्त्री तुम्हारे ही जैसों के चित्त को कैसे नहीं उद्वेलित करेगी। स्त्री-शब्द को सुनकर पुराने समय में पण्डितों ने सात सौ वर्ष तक कामुकता से दूर रह मौका मिलने पर क्षण भर में ही दुराचरण किया। शुद्ध प्राणी भी अशुद्ध हो जाते हैं। उत्तम यश वाले भी बे-इज्जत हो जाते हैं। अशुद्धों की तो बात ही क्या।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने मोर का जन्म ग्रहण किया। वह जिस समय अण्डे में थे, उस समय उस अण्डे का रंग कर्णिका फूल की कली के सदृश था। जब अण्डा फोड़कर बाहर आये तो सुनहरा रंग था—देखने योग्य, चित्त प्रसन्न कर देने वाला। पङ्खों के बीच में लाल रंग की पाँति विराजित थी।

उसने अपने जीवन की रक्षा के ख्याल से तीन पर्वत पंक्तियाँ लाँघकर

चौथी पर्वत- शृंखला में एक दण्डक-हिरण्य पर्वत के नीचे रहना शुरू किया। रात्रि का प्रभात होने पर वह पर्वत के शिखर पर बैठ, उगते सूर्य को देख अपने घूमने फिरने की जगह को सुरक्षित करने के लिए ब्रह्म (=महान्) मन्त्र बनाता हुआ यह कहता—

उदेतयं चक्खुमा एकराजा
हरिस्सवण्णो पठविप्पभासो
तं तं नमस्सामि हरिस्सवण्णं पठविप्पभासं
तयज्ज गुत्ता बिहरेमु दिवसं ॥

[यह चक्षुमान एक राजा जिसका रंग सुनहरा है और जो पृथ्वी को प्रकाशित करता है उदय हो रहा है। मैं इस पृथ्वी को प्रकाशित करने वाले, सुवर्ण वर्ण को नमस्कार करता हूँ। आज इसके द्वारा रक्षित होकर दिन में घूमें।]

उदेति, प्राचीन लोकधातु से ऊपर उठता है। **चक्खुमा**, सारे ब्रह्माण्ड के निवासियों के अन्धकार को दूर कर आँख प्राप्त कराने से वह जिस आँख का देने वाला हुआ उसी आँख वाला होने से **चक्खुमा**। **एकराजा**, सारे चक्रवाल में प्रकाश फैलाने वालों में सर्वश्रेष्ठ होने से एकराजा। **हरिस्सवाणो**, हरि जैसा रंग, अर्थात् स्वर्ण-वर्ण। पठवि को प्रकाशित करता है, इसलिए **पठविप्पभासो**। **तं तं नमस्सामि**, इसलिए ऐसे उन्हें नमस्कार करता हूँ, वन्दना करता हूँ। **तयज्जगुत्ता बिहरेमु दिवसं**, उससे सुरक्षित होकर, उसकी हिफाजत में हम आज का दिन सुख-पूर्वक उठ-बैठ चल-फिर कर गुजारें।

इस प्रकार बोधिसत्व इस गाथा से सूर्य को नमस्कार कर इस दूसरी गाथा से अतीत काल के परिनिर्माण को प्राप्त हुए बुद्धों तथा बुद्ध-गुणों को स्मरण करते—

ये ब्राह्मणा वेदगु सब्ब धम्मे
ते मे नमो ते च मं पालयन्तु

नमत्थु बुद्धानं नमत्थु बोधिया
नमो विमुत्तानं नमो विमुत्तिया
इमं सो परित्तं कत्वा मोरो चरति एसना ॥

[जो ब्राह्मण सब धर्मों के जानने वाले हैं, उन्हें मेरा नमस्कार है। वे मेरी रक्षा करें। बुद्धों को नमस्कार है। बोधि को नमस्कार है। विमुक्तों को नमस्कार है। विमुक्ति को नमस्कार है--वह मोर इसे अपनी रक्षा (का साधन) बना खोजता रहता था।]

ये ब्राह्मणा, जिन्होंने पापों को बहा दिया है, जो विशुद्ध होने से ब्राह्मण कहे गये हैं। **वेदगु,** जो वेद के पार गये वह भी वेदगु और वेद द्वारा जो पार गये वह भी **वेदगु**। यहाँ मतलब है कि जितने संस्कृत असंस्कृत धर्म हैं उन सभी को प्रकट करके गये इसलिए वेदगु। तभी कहा गया है--**सब्ब धम्मे।** सब स्कन्ध, आयतन, धातु धर्मों को स्वलक्षण तथा सामान्य लक्षण की दृष्टि से अपने ज्ञान को प्रकट करके गये अथवा तीनों **मारों** के मस्तक को मर्दित कर दस सहस्र लोकधातु को उन्नादित कर बोधि-वृक्ष के नीचे सम्यक् सम्बुद्धत्व प्राप्त कर संसार के पार पहुँचे। **ते मे नमो,** वे मेरे इस नमस्कार को स्वीकार करें। **ते च मं पालयन्तु,** इस प्रकार मुझसे नमस्कृत वे भगवान् मेरी पालना करें, रक्षा करें, हिफाजत करें। **नमत्थु बुद्धानं नमत्थु बोधिया नमो विमुत्तानं नमो विमुत्तिया,** यह मेरा नमस्कार अतीत में परिनिर्माण को प्राप्त हुए बुद्धों को पहुँचे, उन्हीं की चार-मार्गों तथा चार-फलों का ज्ञान स्वरूप जो बोधि है उस बोधि को पहुँचे, उन्हीं की अर्हत्व-फल रूपी विमुक्ति को प्राप्त करने वाले विमुक्तों को पहुँचे, जो उनकी पाँच प्रकार की विमुक्ति है अर्थात् **तदंग-विमुत्ति विक्खम्भन-विमुत्ति समुच्छेद-विमुत्ति, पटिप्पस्सद्ध-विमुत्ति** तथा **निस्सरण-विमुत्ति;** उस विमुक्ति को भी पहुँचे। **इमं सो परित्तं कत्वा मोरो चरति एसना,** यह दो पद शास्ता ने बुद्धत्व प्राप्त करके कहे। इनका अर्थ है, "भिक्षुओ वह मोर इसे परित्राण बना उसे रक्षा का साधन बना अपने गोचर-भूमि में फल-फूल के लिए नाना प्रकार से खोजता फिरता था।"

इस प्रकार दिन भर घूम कर शाम को पर्वत के शिखर पर बैठे डूबते हुए सूर्य को देख बुद्धगुणों का ध्यान कर निवास-स्थान की रक्षा के लिए फिर ब्रह्ममन्त्र बाँधता हुआ 'अपेतयं' आदि कहता—

अपेतयं चक्खुमा एकराजा
हरिस्सवण्णो पठविप्पभासो
तं तं नमस्सामि हरिस्सवण्णं पठविप्पभासं
तयज्ज गुत्ता विहरेमु रत्तिं ॥
ये ब्राह्मणा वेदगु सब्बधम्मे
ते मे नमो ते च मं पालयन्तु
नमत्थु बुद्धानं नमत्थु बोधिया
नमो विमुत्तानं नमो विमुत्तिया
इमं सो परित्तं कत्वा मोरो वासमकप्पयि ॥

[ये....अस्त हो रहा है। इसे रक्षा (का साधन) बना वह मोर रहने को गया।]

अपेति, जाता है, अस्त को प्राप्त होता है। **इदं सो परित्तं कत्वा मोरो वासमकप्पयि**, यह भी बुद्धत्व प्राप्त करने पर कहा। इसका अर्थ है—भिक्षुओ! वह मोर इसे परित्राण बना, इसे रक्षा (का साधन) बना, अपने निवासस्थान पर रहने लगा। इस परित्राण के प्रताप से उसे न दिन में डर लगा, न रात में, न रोमाञ्च हुआ।

उस समय वाराणसी से कुछ ही दूर पर शिकारियों का एक गाँव था। वहाँ के निवासी एक शिकारी ने हिमालय-प्रदेश में घूमते हुए उस दण्डक-हिरण्य पर्वत पर बैठे हुए बोधिसत्व को देख आकर पुत्र को कहा।

वाराणसी-नरेश की खेमा नामक देवी ने स्वप्न में देखा कि सुनहरे रंग का मोर धर्मोपदेश कर रहा है। उसने राजा से कहा—"देव! मैं सुनहरे रंग के मोर से धर्मोपदेश सुनना चाहती हूँ।"

राजा ने अमात्यों से पूछा। अमात्य बोले—ब्राह्मण जानते होंगे। ब्राह्मणों ने कहा—सुनहरे रंग के मोर होते हैं। "कहाँ होते हैं?" पूछने पर बोले—"शिकारी जानते होंगे।"

राजा ने शिकारियों को इकट्ठा कर पूछा। वह शिकारी-पुत्र बोला—"महाराज! हाँ! दण्डक-हिरण्य नाम का पर्वत है। वहाँ सुनहरे रंग का मोर रहता है।"

"तो उसे बिना मारे, जीवित ही बांध कर लाओ।"

शिकारी ने जाकर उसके घूमने की भूमि पर जाल फैलाया। मोर के आने की जगह पर भी जाल न कसा। शिकारी उसे न पकड़ सका। सात साल घूमते रह कर वह वहीं मर गया।

खेमा देवी की इच्छा पूरी न हुई। वह भी मर गयी।

राजा को क्रोध आया कि मोर के कारण मेरी रानी की जान गयी। उसने एक सोने के पट्टे पर लिखवाया—"हिमालय प्रदेश में दण्डक-हिरण्य नाम का पर्वत है। वहाँ सुनहरे रंग का मोर रहता है। जो उसका मांस खाते हैं वह अजर-अमर हो जाते है।" उस सोने के पट्टे को उसने एक सन्दूकची में रखवा दिया।

उसके मरने पर दूसरे राजा ने उस स्वर्ण-पट्टे को पढ़कर अजर-अमर होने की इच्छा से दूसरे शिकारी को भेजा। वह भी जाकर बोधिसत्त्व को न पकड़ सका। वहीं मर गया। इस प्रकार छः राज-पीढ़ियाँ गयीं।

सातवें राजा ने राज्य पाकर एक शिकारी को भेजा। उसने जाकर देखा कि बोधिसत्त्व की चलने-फिरने की जगह पर भी फंदा नहीं लगता। वह समझ गया कि अपनी रक्षा करके ही मोर चरने आता है। वह देहात में आया और वहाँ से एक मोरनी ले, उसे ऐसी शिक्षा दी कि वह ताली बजाने पर नाचने लगती और चुटकी बजाने पर आवाज लगाती। ऐसा सिखा कर वह मोरनी को लेकर गया। प्रातःकाल ही जब अभी मोर ने परित्राण द्वारा अपने को रक्षित नहीं किया था उसने फंदे के खूंटे गाड़, फंदा फैला मोरनी से आवाज लगवायी। मोर ने जब मोरनी का असाधारण शब्द सुना तो कामासक्त हो परित्राण न कर सकने के कारण जाकर फंदे में फँस गया।

शिकारी ने उसे पकड़ ले जाकर वाराणसी के राजा को दिया। राजा ने उसका सौंदर्य देख प्रसन्न हो उसे आसन दिलाया।

बोधिसत्त्व ने बिछे आसन पर बैठ, पूछा--"महाराज ! मुझे क्यो पकड़वाया ?"

"जो तेरा मांस खाते हैं, वह अजर-अमर हो जाते हैं। मैंने तेरा मांस खाकर अजर-अमर होने की इच्छा से पकड़वाया है।"

"महाराज ! मेरा मांस खाने वाले तो अमर हों, और मुझे मरना होगा ?"

"हाँ, मरना हो।"

"जब मैं मरूँगा, तो मेरा मांस खाने वाले किस लिए नहीं मरेंगे ?"

"तू सुनहरे रंग का है, इसलिए तेरा मांस खाने वाले अजर-अमर होंगे।"

"महाराज ! मैं यूँ ही सुनहरे रंग का पैदा नहीं हुआ हूँ। पहले मैं इसी नगर में चक्रवर्ती राजा था। मैंने अपने आप भी पाँच शीलों की रक्षा की और सारे चक्रवाल के निवासियों से भी करवायी। मर कर मैं त्रयोत्रिंश लोक में पैदा हुआ। वहाँ आयु भर रह कर एक दूसरे पाप-कर्म के फलस्वरूप मोर होकर पैदा हुआ; लेकिन पुराने सदाचार के प्रताप से सुनहरे रंग का हुआ।"

"तू चक्रवर्ती होकर (पंच-) शील की रक्षा कर उसी के फलस्वरूप सुनहरे रंग का हुआ, इस बात पर हम कैसे विश्वास करें ? तेरा कोई साक्षी है ?"

"महाराज ! है।"

"कौन है ?"

"महाराज ! जब मैं चक्रवर्ती था, तो रत्नमय रथ में बैठ कर आकाश में विचरता था। वह मेरा रथ मङ्गल-पुष्करिणी के अन्दर जमीन में गड़वाया हुआ है। उसे मङ्गल-पुष्करिणी से निकलवायें। वह रथ मेरे कथन का साक्षी होगा।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार कर पुष्करिणी में से पानी निकलवा रथ को बाहर करवाया। तब उसे बोधिसत्त्व की बात पर विश्वास हुआ।

बोधिसत्त्व ने राजा को धर्म उपदेश दिया—"महाराज ! अमृत महा निर्वाण को छोड़ शेष जितने भी संस्कृत धर्म है, वे सब पैदा होकर अभाव को प्राप्त होते हैं, अनित्य हैं, क्षय होने वाले हैं, व्यय होने वाले हैं।" फिर राजा को पंच-शील में प्रतिष्ठित किया।

राजा ने प्रसन्न हो बोधिसत्त्व की राज्य से पूजा की और सत्कार किया। किया। उसने राज्य राजा को ही वापिस लौटा कुछ दिन रह कर राजा को उपदेश दिया कि महाराज ! अप्रमादी रहें।

फिर आकाश में उड़कर दण्डकहिरण्य नाम के पर्वत को ही चला गया।

राजा भी बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार चक्र दान आनि पुण्य-कर्म कर कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता दे यह धर्म-देशना ला आर्य-सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय राजा आनन्द था। सुनहरे रंग का मोर तो मैं ही था।

⊙

१६०. विनीलक जातक

"**एवमेव नून राजानं....**" यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के बुद्ध की नकल करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जब देवदत्त गया-शीर्ष पर गये हुए दोनों प्रधान श्रावकों के सामने बुद्ध का रंग-ढंग बनाकर लेट रहा, तो दोनो स्थविर धर्मोपदेश दे अपने शिष्यों को लेकर वेळुवन चले आये।

शास्ता ने पूछा--"सारिपुत्र ! तुम्हें देखकर देवदत्त ने क्या किया ?"

"भन्ते ! सुगत का रंग-ढंग दिखाकर महाविनाश को प्राप्त हुआ।"

"सारिपुत्र ! न केवल अभी देवदत्त मेरी नकल करके विनाश को प्राप्त हुआ है, पहले भी प्राप्त हुआ है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **विदेह** राष्ट्र में, मिथिला में विदेहराज के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए। बड़े होने पर तक्ष-शिला जाकर सब विद्यायें सीखीं। पिता के मरने पर राज्य गद्दी पर बैठे।

उस समय एक स्वर्ण-हंसराज का चुगने की जगह पर एक कौवी से सह-वास हो गया। उसे पुत्र हुआ। वह न माता के सदृश था, न पिता के सदृश। उसका रूप रंग भद्दा नीला होने से उसका नाम **विनीलक** ही हो गया।

हंसराज सदैव पुत्र को देखने जाता। उसके दूसरे हंस-बच्चे पुत्र थे। उन्होंने पिता को हमेशा बस्ती की ओर जाते हुए देखकर पूछा--"तात ! तुम हमेशा बस्ती की ओर क्यों जाते हो ?"

"तात ! एक कौवी से सहवास होकर मुझे एक पुत्र हुआ। उसका नाम विनीलक है। मैं उसे देखने जाता हूँ।"

"यह कहाँ रहते हैं ?"

"**विदेह** राष्ट्र में **मिथिला** के पास अमुक जगह पर एक ताड़ के वृक्ष पर रहते हैं।"

"तात ! बस्ती सशंकित जगह है। वहाँ खतरा होता है। तुम न जाओ। हम जाकर उसे ले आयेंगे।"

दोनों हंस-बच्चे पिता के बताये हुए निशान से वहाँ पहुँच उस विनीलक को एक डण्डे पर बिठा चोंच से डण्डे के सिरों को पकड़ मिथिला नगर के ऊपर से चले।

उस समय विदेह राज सर्वश्वेत चार सैन्धव घोड़ों वाले रथ में बैठकर नगर की परिक्रमा कर रहे थे। **विनीलक** ने उसे देख मन में कहा—"मुझमें और विदेह राज में क्या अन्तर है ? यह चार सैन्धव घोड़ों वाले रथ में बैठ-कर नगर में घूमता है। मैं हंस जुते रथ में बैठकर जा रहा हूँ।" उसने आकाश से जाते हुए यह गाथा कही—

एवमेव नून राजानं वेदेहं मिथिलग्गहं,
अस्सा वहन्ति आजञ्ञा यथा हंसा विनीलकं ॥

[जैसे हंस विनीलक को ढो रहे हैं उसी तरह ने श्रेष्ठ घोड़े मिथिला के विदेह-राजा (के रथ) को खींचते हैं।]

एतमेव, इसी तरह, **नून**, संकल्प-विकल्प विषयक निपात है। 'निश्चय से' भी ठीक अर्थ है। **वेदेहं**, वेदेह, राष्ट्र के स्वामी को। **मिथिलग्गहं**, मिथिला-गेहं मिथिला में घर लेकर रहने वाला। **आजञ्ञा**, कारण अकारण जानने वाले, **यथा हंसा विनीलकं**, जैसे यह हंस मुझ विनीलक को ढो रहे हैं, उसी प्रकार खींच रहे हैं।

हंस-बच्चों ने उसकी बात सुनी तो उन्हें क्रोध आया। उन्होंने सोचा इसे यहीं गिरा जायें। लेकिन फिर सोचा ऐसा करने से हमारा पिता हमें क्या कहेगा ? उसकी निन्दा के डर से वे उसे पिता के पास ले गये और उसकी करतूत पिता से कही।

पिता को क्रोध आया। वह बोला—'क्या तू मेरे पुत्रों से बढ़कर है जो उनको नीचा दिखा रथ में जुतनेवाले घोड़ों के समान बनाता है? अपनी बिसात नही जानता? यह स्थान तेरे योग्य नहीं है। जहाँ तेरी माँ रहती है, वहीं जा।' इस प्रकार धमकाकर दूसरी गाथा कही—

विनील! दुग्गं भजसि अभूमिं तात! सेवसि,
गामन्तिकानि सेवस्सु एतं मातालयं तव ॥

[विनील! तू दुर्ग में रहता है। तात! तू अयोग्य स्थान में रहता है। तू ग्राम के आस-पास में रह। वह तेरा मातृ-गृह है।]

विनील उसे नाम से बुलाता है। **दुग्गं भजसि**, इनके साथ गिरि-दुर्ग में रहता है। **अभूमिं तात! सेवसि**, तात! गिरि विषम स्थान तेरे लिए अयोग्य स्थान है। तू अभूमि में वास करता है। **एतं मातालयं तव**, यह ग्राम के सिरे पर जो कूड़ा फेंकने की जगह है तथा कच्चा श्मशान है वही तेरी माता का निवास-स्थान है। तू वहीं जा।

इस प्रकार उसे धमका कर पुत्रों को आज्ञा दी—जाओ, इसे मिथिला नगर की कूड़ा डालने की जगह पर ही उतार आओ। उन्होंने वैसा ही किया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय विनीलक देवदत्त था। दो हंस-बच्चे दो अग्र-श्रावक थे। पिता आनन्द था। विदेहराज तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

२. सन्थव वर्ग

१६१. इन्दसमान गोत्त जातक

"**न सन्थवं कापुरिसेन कयिरा....**" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ऐसे भिक्षु के बारे में कही जो किसी की बात न मानता था।

क. वर्तमान कथा

उसकी कथा नौवें परिच्छेद में **गिज्झ जातक**[1] में आयेगी। शास्ता ने उस भिक्षु को कहा—हे भिक्षु! तूने पहले भी किसी की बात न मानने वाला होने से पण्डितों का कहना न माना और मस्त हाथी के पैरों से रौंदा जाकर चूर-चूर हुआ। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर घर-बार छोड़ ऋषियों के ढंग की प्रव्रज्या ग्रहण कर पाँच सौ ऋषियों के दल का नेता बन हिमालय प्रदेश में रहने लगे। उन तपस्वियों में एक इन्दसगोत्त नाम का तपस्वी था—किसी की बात न मानता था, किसी का कहना न करता था।

उसने एक हाथी-बच्चा पाल रखा था। बोधिसत्व ने सुना। तो उसे बुलाकर पूछा—'सचमुच! तू हाथी-बच्चे को पाल-पोस रहा है?'

'सचमुच आचार्य! एक हाथी-बच्चा है, जिसकी माँ मर गयी है, उसे पोस रहा हूँ।'

---

१. **गिज्झ जातक (४२७)।**

'हाथी बड़े होने पर पालन-पोसन करने वाले को ही मारते हैं, तू उसे मत पोस।'

'आचार्य ! उसके बिना नहीं रह सकता।'

'अच्छा ! तो पता लगेगा।'

उससे पोसा जाकर वह हाथी-बच्चा आगे चलकर बड़े भारी शरीर वाला हो गया।

एक समय वे ऋषिगण जगल से फल-मूल लाने के लिए दूर चले गये और कुछ दिन वहीं रहे। हाथी को श्रेष्ठ दक्षिण हवा लगी तो उसका मद फूट पड़ा। उसने उस तपस्वी की पर्ण कुटी नष्ट कर डाली। पानी का घड़ा फोड़ दिया। पत्थर का तख्ता फेंक दिया। **आलम्बन-तख्ता**[1] नोच डाला। फिर उस तपस्वी को मार डाल कर ही जाने के विचार से एक घनी जगह में छिपकर उसके आने के रास्ते की ओर देखता हुआ खड़ा रहा।

इन्दसगोत्त अपना फल-मूल ले, सबके आगे-आगे आ रहा था। उसे देख वह साधारण स्वभाव से ही उसके पास गया।

हाथी ने घनी जगह से निकल, उसे सूण्ड से पकड़, जमीन पर गिरा, सिर पैर से दबा, मार डाला। फिर उसे मसलता हुआ क्रौञ्चनाद करके जंगल में चला गया। शेष तपस्वियों ने बोधिसत्त्व से वह समाचार कहा। बोधिसत्त्व ने यह कहते हुए कि बुरे आदमी से दोस्ती नहीं करनी चाहिए, यह गाथा कही--

न सन्थवं कापुरिसेन कयिरा
अरियो अनरियेन पजानमत्थं
चिरानुवुत्थो पि करोति पापं
गजो यथा इन्दसमानगोत्तं ॥
यं त्वेव जञ्ञा सदिसो ममं
सीलेन पञ्ञाय सुतेन चापि

---

१. **जिसके सहारे से बैठ सके।**

तेनेव मेत्तिं कयिराथ सद्धिं
सुखावहो सप्पुरिसेन संगमो ॥

[श्रेष्ठ आदमी अर्थ-अनर्थ को जानता हुआ बुरे आदमी से दोस्ती न करे। चिरकाल तक साथ रह कर भी बुरा आदमी बुराई करता है, जैसे हाथी ने इन्द्रसमानगोत्र की बुराई की।

जिसके सदाचार, प्रज्ञा तथा ज्ञान को अपने बराबर का समझे, उसी के साथ मैत्री करे। सत्पुरुष के साथ की गयी मैंत्री सुख को देने वाली होती है।]

न सन्थवं कापुरिसेन कयिरा, घृणित, क्रोधी आदमी के साथ आसक्ति वा मैत्री न करे। **अरियो अनरियेन पजानमत्थं**; आर्य चार प्रकार के होते हैं (१) आचार-आर्य, लिङ्ग-आर्य, (३) दर्शन-आर्य, (४) प्रतिवेध-आर्य। इनमें यहाँ आचार्य-आर्य से मतलब है। जो अर्थ को जानता है, अर्थ को पहचानता है, आचार में स्थित है--ऐसा आर्य-पुद्गल, अनार्य, निर्लज्ज, दुश्शील के साथ मैंत्री न करे। क्यों? **चिरानुवुथोपि करोति पापं**, क्योंकि अनार्य चिरकाल तक एक साथ रह कर भी, उस एक साथ रहने का ख्याल न कर पाप, पापकर्म, बुराकर्म करता है। जैसे क्या? **गजो यथा इन्दसमानगोत्तं**, जैसे उस हाथी ने इन्द्रसमान-गोत्र को मार कर पाप किया।

यं त्वेव जञ्जा सदिसो ममं, इत्यादि में जिस आदमी को जाने कि यह आदमी शील आदि में मेरे समान है, उसी के साथ मैत्री करे। सत्पुरुष के साथ मेल-जोल सुखदायी होता है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने उपदेश दिया कि बात न मानने वाला नहीं होना चाहिए, कहना मानने वाला होना चाहिए। यूँ ऋषिगण को उपदेश दे **इन्द्रसमान-गोत्र** का शरीर-कृत्य करवा ब्रह्म-विहारों की भावना करते हुए वह ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय इन्द्र समान गोत्त यह बात न मानने वाला भिक्षु था। ऋषिगण का शास्ता मैं ही था।

१६२. सन्थव जातक

"न सन्थवस्मा परमत्थि पापियो ....." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय अग्नि-हवन करने के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

इसकी कथा वैसी ही है जैसी **नंगुट्ठ जातक**[1] में हैं। भिक्षुओं ने उन्हें अग्वि-हवन करते देख भगवान् से पूछा--"भन्ते ! जटिल-साधु नाना प्रकार के मिथ्या-तप करते हैं । इनसे कुछ उन्नति होती है ?" शास्ता ने उत्तर दिया--"भिक्षुओं, इससे कुछ लाभ नहीं । पुराने पण्डितों ने अग्नि-हवन करने से उन्नति होगी समझ चिरकाल तक अग्नि-हवन किया । लेकिन जब उससे हानि ही होती देखी, तो उन्होंने उसे पानी डाल कर बुझा दिया और शाखा आदि से पीटकर चले गये। फिर मुड़कर उस तरफ देखा तक नहीं ।" इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पुराने समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल में पैदा हुए । माता-पिता ने उसके पैदा होने के दिन अग्नि संभाल कर रख, उसके सोलह वर्ष का होने पर पूछा--"तात ! जन्म-दिन से रखी हुई अग्नि लेकर जंगल में जा अग्नि की परिचर्या करोगे ? अथवा तीनों वेद सीखकर कुटुम्ब का पालन करते हुए घर पर रहोगे ?"

उसे घर रहने की इच्छा नहीं थी । इसलिए वह जंगल में जा, अग्नि की पूजा कर, ब्रह्मलोक-गामी होने की इच्छा से जन्म दिन से रखी हुई आग ले,

---

१. **नंगुट्ठ जातक (१४४)** ।

माता-पिता को प्रणाम कर जंगल चला गया। वहाँ पर्ण-कुटी में रहता हुआ अग्नि की पूजा करने लगा।

एक दिन वह किसी निमन्त्रित स्थान पर गया। वहाँ उसे घी के साथ खीर मिली। उसने सोचा इस खीर से महा-ब्रह्मा का यज्ञ करूँगा। उसने खीर ला आग जलायी। फिर सोचा घी मिश्रित खीर भगवान्-अग्नि को पिलाऊँ और खीर को आग में फेंका। बहुत चिकनाई वाली खीर के आग में पड़ते ही आग जोर से जली और उसकी जोर से उठी लपट ने पर्ण-कुटी जला डाली।

ब्राह्मण डरकर, घबरा कर भाग गया। बाहर खड़े होकर उसने सोचा कि बुरे से दोस्ती नहीं करनी चहिए। अब इसने बड़ी कठिनायी से बनाई मेरी कुटिया जला डाली। इतना कह यह गाथा कही--

> **न सन्थवस्मा परमत्थि पापियो**
> **यो सन्थवो कापुरिसेन होति,**
> **सन्तप्पितो सप्पिना पायसेन**
> **किच्छा कतं पण्णकुटिं अदड्ढहि ॥**

[बुरे आदमी की मैत्री से बढ़कर बुरा कुछ नहीं। आग को घी वाली खीर से सन्तर्पित किया। उसने कठिनाई से बनी पर्ण-कुटी जला दी।]

न सन्थवस्मा, आसक्ति और मैत्री, यह जो दोनों प्रकार की दोस्ती है, इससे बढ़कर दूसरी बुरी बात नहीं है। **यो सन्थवो कापुरिसेन,** जो पापी बुरे आदमी के साथ दोनों तरह की दोस्ती है, इस दोस्ती से बढ़कर और बुरा कुछ नहीं। किस लिए? **सन्तप्पितो...अदड्ढहि**, क्योंकि घी और घी से सन्तर्पित की गयी इस आग ने भी बड़ी कठिनाई से बनायी हुई मेरी पर्ण-कुटी जला दी।

इतना कह, उस मित्र-द्रोही से मुझे कुछ मतलब नहीं' सोच उसे पानी से बुझा, शाखाओं से पीट, हिमालय में चला गया। वहाँ उसने जब एक श्यामा मृगी को सिंह, व्याघ्र और चीते का मुंह चाटते देखा, तो 'सत्पुरुष से मित्रता करने से बढ़कर कुछ नहीं है' सोच दूसरी गाथा कही--

न सन्थवस्मा परमित्थ सेय्यो
यो सन्थयो सप्पुरिसेन होति,
सीहस्स व्यग्घस्स च दीपिनो च
सामा मुखं लेहति सन्थवेन ॥

[सत्पुरुष से जो स्नेह होता है, उस स्नेह से बढ़कर श्रेष्ठ कुछ नही है। श्यामा मृगी स्नेह से सिंह, व्याघ्र और चीते का मुंह चाटती है।]

सामा मुखं लेहति सन्थवेन, श्यामा मृगी इन तीनों जनों का मैत्री से, स्नेह मुंह चाटती है।

इस प्रकार कह, बोधिसत्व हिमालय में चले गये। वहाँ ऋषियों की प्रव्रज्या ग्रहण कर, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, मरने पर ब्रह्मलोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय तपस्वी मैं ही था।

⊙

१६३. सुसीम जातक

"काळामिग्गा सेतदन्ता तव इमे...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय **छन्दक-दान**[1] के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में कभी एक ही परिवार भिक्षुसंघ को जिसमें बुद्ध मुख्य रहते थे दान देता था, कभी बहुत से लोग एक साथ इकट्ठे हो दल बनाकर दान देते थे, कभी एक-एक गली के लोग मिलकर देते थे और कभी सारे नगर के लोग सबसे इकट्ठा करके दान देते थे।

इस समय सारे नगर निवासियों से दान इकट्ठा किया गया। सारा सामान तैयार हो गया। दाताओं में दो पक्ष थे। कुछ ने कहा यह सामान अन्यतैर्थिकों को दें। कुछ ने कहा संघ को, जिसके प्रमुख बुद्ध हैं। इस प्रकार बार-बार बात होने पर भी दोनों पक्षों का अपना-अपना आग्रह रहा--अन्य तैर्थिकों के शिष्य उन्हें दान दिये जाने के पक्षपाती रहे और बुद्ध के शिष्य बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघ को। तब यह हुआ कि बहुमत देखा जाय। बहुमत लिए जाने पर अधिक लोग यही कहने वाले हुए कि बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को ही दिया जाय। उन्हीं की बात स्थिर रही। अन्य-तैर्थिकों के शिष्य बुद्ध को दिये जाने वाले दान में बाधा नहीं डाल सके।

नगर के लोगों ने बुद्ध की प्रमुखता में भिक्षुसंघ को निमन्त्रित कर महा-दान दिया और सातवें दिन सब वस्तुओं का दान किया।

शास्ता अनुमोदन कर जनता को मार्ग तथा फल का बोध करा जेतवन

---

१. वह दान जिसके देने में छन्द (vote) दिया गया हो।

विहार में चले गये। वहाँ भिक्षुसंघ द्वारा आदर प्रदर्शित किये जाने पर गन्ध-कुटी के सामने खड़े हो उपदेश दे गन्धकुटी में प्रवेश किया।

शाम को धर्म-सभा में एकत्रित हुए भिक्षुओं ने बातचीत चलायी-- आयुष्मानों ! दूसरे तैर्थिक श्रावकों ने बुद्ध को मिलने वाले दान में विघ्न डालने की कोशिश की, किन्तु वे सफल नहीं हुए। सभी वस्तुओं का दान बुद्धों के ही चरणों पर आ पहुँचा। ओह ! बुद्धों की महानता !

शास्ता ने आकर पूछा ! भिक्षुओं, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा--'भिक्षुओं, यह दूसरे मतों के अनुयायी न केवल अभी मुझे मिलने वाले दान में विघ्न डालने का प्रयत्न करते हैं, पहले भी किया है। लेकिन दान की वस्तुएँ हमेशा मेरे ही चरणों में आ जाती रही हैं'--इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में सुसीम नाम का राजा था। बोधिसत्व ने उसके पुरोहित की ब्राह्मणी के कोख से जन्म ग्रहण किया। सोलह वर्ष की आयु होने पर उसका पिता मर गया। जिस समय वह जीवित था उस समय वह राजा का हाथी-मङ्गल-कारक[1] था। हाथी को माङ्गलिक करने के स्थान पर जो सामान, भाण्डे तथा हाथी के अलंकार आते, वह सब उसी को मिलते। इस प्रकार एक-एक मङ्गलोत्सव में उसे करोड़-करोड़ धन मिलता।

उस समय हाथी-मङ्गलोत्सव आया। शेष ब्राह्मणों ने राजा के पास आकर कहा--"महाराज। हस्ति-मंगलोत्सव आया है। उत्सव करना चाहिए। पुरोहित-ब्राह्मण का लड़का बहुत छोटा है। वह न तीनों वेद जानता है, न हस्ती-सूत्र। हम हस्ती-मंगल करेंगे।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। ब्राह्मण प्रसन्न हो इधर-उधर विचरते थे कि अब पुरोहित-ब्राह्मण के लड़के को हस्ती-मंगल न करने देकर हम हस्ती-मंगल करेंगे और धन लेंगे।

बोधिसत्व की माता ने जब यह सुना कि आज से चौथे दिन मंगल होगा तो

---

१. हाथी को माङ्गलिक करने की पूजा आदि करने वाला।

वह यह सोचकर रो पड़ी कि सात पीढ़ी से हाथी-मंगल करने का अधिकार हमारे वंश का रहा है। अब हमारा वंश पीछे पड़ जायेगा और हमें धन न मिलेगा।

बोधिसत्व ने पूछा, माँ ! तू क्यों रोती है ?" उसने कारण बताया। तब बोधिसत्व ने कहा--"माँ मैं मंगल करूँगा।"

"तात ! न तू तीन वेद जानता है और न हस्ती सूत्र। तू कैसे मंगल करेगा ?"

"माँ, हस्ती-मंगल कब करेंगे ?"

"तात ! अब से चौथे दिन।"

"माँ ! तीन वेदों तथा हस्ती-सूत्र के जानकार आचार्य कहाँ रहते हैं ?"

"तात ! ऐसे प्रसिद्ध आचार्य यहाँ से एक सौ बीस योजन पर **गन्धार देश** में **तक्षशिला** में रहते हैं।"

"माँ ! मैं अपने वंश को नष्ट होने न दूँगा। कल एक दिन में तक्षशिला पहुँच, एक ही रात में तीनों वेद और हस्ती-सूत्र सीख, फिर एक दिन में वापस लौट चौथे दिन हस्ती-मंगल करूँगा। मत रो।"

इस प्रकार माँ को आश्वासन दे बोधिसत्व अगले दिन प्रातःकाल ही खाकर, अकेले ही निकल, एक दिन में तक्षशिला जा, आचार्य को प्रणाम कर, एक ओर बैठे।

आचार्य ने पूछा--"तात ! कहाँ से आया है ?"

"वाराणसी से।"

"किस उद्देश्य से ?"

"आपसे तीनों वेद तथा हस्ती-सूत्र सीखने के लिए।"

"तात ! अच्छा सीख।"

बोधिसत्व ने कहा--'मेरा कार्य बहुत जल्दी का है' और सब हाल सुनाकर निवेदन किया--'मैं एक रात में एक सौ बीस योजन आया हूँ। आज की रात मुझे ही सीखने की आज्ञा दें। आज से तीसरे दिन हस्ती-मंगल होगा। मैं एक ही बार पाठ सुनने से सब सीख लूंगा।"

इस प्रकार आचार्य की आज्ञा पा, बोधिसत्व ने आचार्य के खा चुकने पर अपने खा, आचार्य के पाँव धो, हजार की थैली उनके सामने रखी। फिर

प्रणाम करके एक ओर बैठ पाठ आरम्भ कर अरुणोदय होने तक तीनों वेद और हस्ती-सूत्र समाप्त कर पूछा—'आचार्य ! और भी कुछ बाकी है ?"

"तात ! नहीं, सब समाप्त हो गया।"

"आचार्य ! इस ग्रंथ में इतना खो गया है; पाठ में इतना सदोष है। अब से शिष्यों को इस प्रकार पढ़ाया करें।"

इस तरह आचार्य की विद्या को निर्दोष बना 'प्रातःकाल ही खाकर आचार्य को प्रणाम कर एक ही दिन में वाराणसी आ माता को प्रणाम किया।

"तात ! तूने विद्या सीख ली ?"

"हाँ, सीख ली" कह माँ को सन्तुष्ट किया।

अगले दिन मङ्गलोत्सव की तैयारी हुई। सौ हाथियों को सोने के गहनों, सोने की ध्वजाओं के साथ सुनहरी जालों से ढक कर खड़ा किया गया। राजाङ्गण अलंकृत हुआ। ब्राह्मण लोग प्रसन्नचित सजधज कर खड़े थे कि हम हस्ती-मङ्गल करेंगे। सुसीम राजा भी गहने और भाण्डे लिवा जाकर मङ्गल-स्थान पर खड़ा हुआ।

बोधिसत्व ने भी एक कुमार के लिए जिस ढंग से अलंकृत होना उचित है, उस तरह अलंकृत हो, अपनी परिषद का नेता बन राजा के पास जाकर पूछा—"महाराज ! क्या आपने सचमुच ऐसी बात कही है कि हमारे वंश को नाश करके, दूसरे ब्राह्मणों से हस्ती-मङ्गल करवा, हाथियों के अलंकार तथा दूसरे सामान उनको देंगे ?" इतना कह, पहली गाथा कही—

काळा मिगा सेतदन्ता तव इमे
परोसतं हेमजालाभिसञ्छन्ना
ते ते ददामीति सुसीम ! ब्रूसि
अनुस्सरं पेत्तिपितामहानं

[सुसीम ! क्या तुम अपने और हमारे पूर्वजों को याद करके भी यह कहते हो कि सोने के जाल से ढके हुए सौ से अधिक काले हाथी, जिनके दाँत सफेद हैं, तुमको देंगे, तुमको देंगे ?]

———

ते ते ददामीति सुसीम ! ब्रूसि, वह यह अथवा तुम्हारे पास के **काळा मिगा**

सेत दन्ता, ऐसे नाम वाले सौ से अधिक सब अलंकारों से सजे हाथी दूसरे ब्राह्मणों को देता हूँ, हे सुसीम ! क्या तू यह सचमुच कहता है । **अनुस्सरं पेत्ति पितामहानं**, हमारे और अपने वंश के पिता-पितामह आदि को याद करते हुए। महाराज ! सात पीढ़ियों से हमारे पिता-पितामह हस्ती-मङ्गल करते रहे हैं। सो आप इसे याद करके भी क्या सचमुच हमारे और अपने वंश (के सम्बन्ध) को नष्ट करके ऐसा कहते हैं ?

सुसीम ने बोधिसत्व की बात सुन दूसरी गाथा कही—

काळा मिगा सेनदन्ता मम इमे
परोसतं हेमजालाभिसञ्छन्ना
ते ते ददामीति ब्रवामि माणव !
अनुस्सरं पेत्तिपितामहानं ॥

[माणव ! हाँ अपने और तुम्हारे पूर्वजों को याद करके भी यह कहता हूँ कि यह अपने स्वर्ण-जाल से ढके हुए सौ से अधिक हाथी, जिनके सफेद दाँत हैं, तुमको देता हूँ ।]

ते ते ददामि, वे यह हाथी दूसरे ब्राह्मणों को देता हूँ । माणव ! यह मैं सत्य ही कहता हूँ। अथवा तेरे हाथी ब्राह्मणों को देता हूँ, यह भी अर्थ है। **अनुस्सरं**, पिता-पितामह की कृति भी याद है सो नहीं। हमारे पिता-पितामह के हस्ती-मङ्गल को तुम्हारे पिता-पितामह करते थे, इसे याद करता हुआ भी यह कहता हूँ ।

बोधिसत्व ने कहा—"महाराज ! हमारे और अपने वंश को याद रखते हुए आप क्यों मुझे छोड़ दूसरों से हस्ती-मङ्गल करवाते हैं ?"

"तात ! मुझे कहा गया है कि तू तीन वेद और हस्ती-सूत्र नहीं जानता है। इसीलिए मैं दूसरे ब्राह्मणों से करवाता हूँ ।"

बोधिसत्व सिंह की तरह गरज कर बोला—"तो महाराज ! इतने

ब्राह्मणों में जो एक भी ब्राह्मण मेरे साथ तीनों वेद तथा हस्ती-सूत्र का कुछ हिस्सा भी कह सकता हो, वह उठे। तीन वेदों और हस्ती-सूत्र के साथ हस्ती-मङ्गल करने वाला मुझे छोड़ कोई दूसरा सारे जम्बूद्वीप में नहीं।"

एक ब्राह्मण भी प्रतिपक्षी बनकर खड़ा नहीं हो सका। बोधिसत्व ने कुलवंश को प्रतिष्ठित कर हस्ती-मङ्गल किया और बहुत धन ले अपने घर गये।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला आर्य-(सत्यों) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया कोई स्रोतापन्न हुए। कोई सकृदागामी, कोई अनागामी और कोई अर्हत्।

तब माँ महामाया थी। पिता शुद्धोदन महाराज थे। सुसीम राजा आनन्द था। चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य सारिपुत्र था। माणव तो मैं ही था।

⊙

१६४. गिज्झ जातक

"**यं ननु गिज्झो योजनसतं....**" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय माता-पिता का पोषण करने वाले एक भिक्षु के बारे में कही।

क वर्तमान कथा

इसकी कथा **साम जातक**[1] में आयेगी। शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—"भिक्षु! क्या तू सचमुच गृहस्थों का पोषण करता है!" हाँ! सचमुच' कहने पर पूछा—'वह तेरे क्या लगते हैं?'

"भन्ते! वे मेरे माता-पिता हैं।"

"बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!" कह अन्य भिक्षुओं को शास्ता ने मना किया—"भिक्षुओं! इस भिक्षु पर क्रोध न करे। पुराने समय में पण्डितजन गुणों का ख्याल करके भी रिश्तेदारों का उपकार करते रहे हैं। इसका तो कर्तव्य है कि यह माता-पिता की सेवा करे" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पुराने समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गृध्र-पर्वत पर गृध्र होकर-पैदा हो माता-पिता का पोषण करते थे।

एक बार आंधी-पानी आया। गृध्र आँधी-पानी न सह सकने के कारण शीत से डरकर वाराणसी जा वहाँ चारदीवारी के पास; खाई के निकट सर्दी से काँपते हुए बैठे। वाराणसी-सेठ नगर से निकल कर नहाने जा रहा था। उसने उन गृध्रों को कष्ट में देखकर एक ऐसी जगह पहुँचवा दिया जहाँ वर्षा नहीं हो रही थी। फिर वहाँ आग जलवायी। मुर्दा गौ फेंकने के स्थान से गो-मांस मंगवा कर उन्हें दिलवाया। उनकी रक्षा का प्रबन्ध किया।

---

१. **साम जातक (५४०)।**

आँधी-पानी के बन्द होने पर गृध्र स्वस्थ-शरीर हो पर्वत को ही लौट गये। उन्होंने वहाँ इकट्ठे हो, इस प्रकार मन्त्रणा की। 'वाराणसी-सेठ ने हमारा उपकार किया। उपकार करने वाले का प्रत्युपकार करना चाहिए। इसलिए अब से तुम में से जिस किसी को जो वस्त्र वा आभरण मिले, उसे चाहिए कि वह वाराणसी-सेठ के घर में खुले आँगन में गिरा दे।'

उस समय से गृध्र, आदमियों के धूप सुखाने के लिए डाले हुए वस्त्राभरणों को, उन्हें लापरवाह देख, जिस तरह से चील मांस के टुकड़े को एकदम उठा ले जाती है, उसी तरह उठा ले जाकर, वाराणसी-सेठ के खुले आँगन गिरा देते। सेठ ने यह मालूम करके कि वह वस्त्राभूषण गृध्र ला-लाकर डालते हैं, उन्हें पृथक एक ओर रखा।

राजा के पास खबर पहुँची कि गृध्र नगर उजाड़ रहे हैं। उसने कहा कि किसी एक गृध्र को पकड़ लो। सब माल मँगवा लूंगा। राजा ने जहाँ-तहाँ जाल और पाश फैलवाये। माता-पिता का पोषण करने वाला गृध्र जाल में फँस गया। उसे पकड़कर राजा को दिखाने के लिए ले चले।

वाराणसी-सेठ ने राजा की सेवा में जाते समय उन मनुष्यों को गृध्र पकड़ कर ले जाते हुए देखा। उसने सोचा यह इस गृध्र को कष्ट न दें, इसलिए साथ हो लिया। गृध्र को राजा के पास ले गये। राजा ने पूछा—

"तुम नगर पर डाका डालकर वस्त्र आदि ले जाते हो?"

"महाराज! हाँ।"

"वह किसे दिये हैं?"

"वाराणसी-सेठ को।"

"क्यों?"

"हमें उसने जीवन-दान दिया था। उपकार करने वाले का प्रत्युपकार करना चाहिए। इसलिये दिए।"

राजा ने उसे यह कहते हुए कि गृध्र तो सौ योजन की दूरी से लाश को देख लेते हैं, तूने अपने लिए फैलाये फंदे को क्यों नहीं देखा, (कह) पहली गाथा कही--

यं ननु गिज्झो योजनसतं कुणपानि अवेक्खति,
कस्मा जालं च पासं च आसज्जापि न बुज्झसि ॥

[गृध्र तो सौ योजन दूरी पर से लाश को देख लेता है। तू पास से भी जाल और फंदे को क्यों नहीं देख सका ?]

यं निपात मात्र है। **नु**, निपात ही है। **गिज्झो योजनसतं** (गीध सौ योजन) दूर पर पड़ी हुई **कुणपानि अवेक्खति** देखता है **आसज्जापि**, पास आकर भी पहुँच कर भी, तू अपने लिए फैलाये जाल और फंदे के पास पहुँच कर भी उसे क्यों न **बुज्झसि** (यह) पूछा।

गृध्र ने उसकी बात सुन दूसरी गाथा कही—

यदा पराभवो होति पोसो जीवितसंखये,
अथ जालं च पासं च आसज्जापि न बुज्झति ॥

[जब विनाश का समय आता है, जब जीवन पर संकट आता है, तब प्राणी पास में पड़े हुए जाल और फंदे को भी नहीं देखता।]

पराभवो, विनाश। **पोसो**, प्राणी।

गृध्र की बात सुनकर राजा ने सेठ से पूछा—

"महासेठ ! क्या यह बात सच है ? क्या गृध्र तुम्हारे घर वस्त्र आदि लाया है ?"

"देव ! सच है।"

"वह कहाँ हैं ?"

"देव ! मैंने सब पृथक् रखे हैं। जो जिसका है, वह उसे दूँगा। इस गृध्र को छोड़ दें।"

गृध्र को छुड़वाकर महासेठ ने जो जिसका था, वह सब को दिलवाया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला आर्य (-सत्यों) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर माता-पिता का पोषण करने वाला भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय राजा आनन्द था। वाराणसी सेठ सारिपुत्र था। माता-पिता का पोषण करने वाला गृध्र तो मैं ही था।

१६५. नकुल जातक

"**सन्धि कत्वा अमित्तेन...**"यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय दो श्रेणियों के कलह के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इसकी कथा उपरोक्त **उरग जातक**[1] की तरह ही है इसमें शास्ता ने कहा- "भिक्षुओं! इन दो महा-मन्त्रियों का न केवल अभी मैंने मेल कराया है। पहले भी मैंने इन दोनों का मेल कराया है।" यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला जाकर सब विद्याएँ सीखीं। फिर गृहस्थी जोड़ ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रज्या ली। अभिञ्ञ तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर फल-मूल चुग-चुग कर खाते हुए हिमालय-प्रदेश में रहने लगे।

उनके चङ्क्रमण करने के स्थान के एक सिरे पर बाम्बी में एक नेवला और उसी के पास वृक्ष की खोहे में एक सर्प रहता था। वह दोनों नेवला और साँप हमेशा आपस में झगड़ते रहते थे।

बोधिसत्व ने उनको झगड़ने का दुष्परिणाम और मैत्री-भावना का लाभ समझाकर कहा कि कलह न करके मिलकर रहना चाहिए। इस प्रकार उन दोनों का मेल करा दिया।

साँप के बाहर निकलने के समय नेवला चङ्क्रमण-भूमि के सिरे पर बाम्बी

---

१. उरग जातक (१५४)।

के द्वार में से सिर निकाल मुँह खोल स्वास-प्रश्वास लेता हुआ लेटकर सो रहा। बोधिसत्व ने उसे इस प्रकार सोते हुए देख 'तुझे किस कारण से भय लगा है ?' पूछते हुए यह पहली गाथा कही——

सन्धिं कत्वा अमित्तेन अण्डजेन जलाबुज !
विवरिय दाढं सयसि कुतो तं भयमागतं ॥

[हे नकुल ! तू साँप से दोस्ती करके भी मुँह खोले पड़ा है। तेरे भय-भीत होने का क्या कारण है ?]

सन्धि कत्वा मैत्री करके, **अण्डजेन,** अण्डे से पैदा हुए नाग से, **जलाबुज**[1] ! नकुल को पुकारता है। वह गर्भ से पैदा होने के कारण जलाबुज कहलाया। **विवरिय,** खोलकर।

इस प्रकार बोधिसत्व के कहने पर नेवला बोला——आर्य ! शत्रु की ओर से असावधान नहीं होना चाहिए। सशंकित ही रहना चाहिए। यह कहते हुए नेवले ने दूसरी गाथा कही——

संकेथेव अमित्तस्मिं मित्तस्मि पि न विस्ससे
अभया भयमुप्पन्नं अपि मूलं निकन्तति ॥

[शत्रु से सशंकित रहे। मित्र पर भी विश्वास न करे। अभय से जो भय पैदा होता है वह जड़ भी खोद देता है।]

अभया भयमुप्पन्नं यहाँ से तुझे भय नहीं है, ऐसा अभय (देने वाला) कौन है ? मित्र ! मित्र में भी विश्वास करने पर उससे जो भय उत्पन्न होता है वह

---

१. जलाबुज (=जरायुज)।

जड़ भी खोद देता है। मित्र को सब छिद्र मालूम होते हैं, इसलिए वह जड़ खोदने का काम करता है।

बोधिसत्व ने कहा—"डर मत। मैंने ऐसा कर दिया है कि सर्प अब तुझसे द्वेष नहीं करेगा। तू अब से उससे सशंकित मत रह।" इस प्रकार उपदेश दे, चारों ब्रह्म-विहारों की भावना कर बोधिसत्व ब्रह्मलोकगामी हुए। वे भी कर्मानुसार (परलोक) सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मोपदेश दे जातक का मेल बैठाया। उस समय सर्प और नेवला यह दोनों प्रधान थे। तपस्वी तो मैं ही था।

⊙

१६६. उपसाळ्हक जातक

उपसाळ्हक नामानं, यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उप-साळ-्हक नाम के एक ब्राह्मण के बारे में जिसे श्मशान की शुद्धि का बहुत ख्याल था कही।

क. वर्तमान कथा

वह ब्राह्मण बड़ा धनवान था लेकिन क्योंकि वह एक मिथ्या-मत का शिकार था, इसलिए वह पास के विहार में रहने वाले बुद्धों की भी सेवा नहीं करता था। हाँ, उसका पुत्र पण्डित था, ज्ञानी था।

उस ब्राह्मण ने बूढ़ा होने पर पुत्र को कहा––"तात ! मुझे किसी ऐसे श्मशान में मत जलाना जहाँ कोई चाण्डाल जलाया गया हो। मुझे किसी ऐसे ही श्मशान में जलाना जहाँ पहले कहीं कोई न जलाया गया हो।"

"तात ! मैं नहीं जानता कि आपको मुझे कहाँ जलाना चाहिए। बहुत अच्छा हो, मुझे साथ ले जाकर आप बता दें कि मुझे तुम इस जगह जलाना।"

ब्राह्मण ने 'तात ! अच्छा' कह, और उसे ले जा नगर से निकल गृध्रकूट पर्वत पर चढ़ कहा––'तात ! यहाँ पहले कोई चाण्डाल नहीं जलाया गया है। मुझे यहाँ चलाना।'

फिर वह पुत्र के साथ पर्वत से उतरने लगा।

शास्ता ने प्रातःकाल ही ऐसे लोगों का विचार करते हुए जिनकी उस दिन ज्ञानप्राप्ति की सम्भावना थी उन पिता-पुत्र की स्रोतापत्ति-मार्गारूढ़ होने की सम्भावना को देखा।

इसलिए मार्ग पकड़, एक शिकारी की तरह पर्वत की तराई में पहुँच, उनके पर्वत से उतरते समय उनकी प्रतीक्षा करते हुए बैठे। उन्होंने उतरते समय शास्ता को देखा। शास्ता ने कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा––"ब्राह्मण ! कहाँ गये थे ?"

माणवक ने वह बात कही। शास्ता ने कहा--'तो आओ, तुम्हारे पिता ने जो स्थान बताया है, वहाँ चलें।' उन दोनों को साथ लेकर पर्वत के शिखर पर चढ़ पूछा--'कौन सी जगह है ?'

माणवक ने कहा--"भन्ते ! इन तीनों चोटियों के बीच में बताया है।"

शास्ता बोले--'माणवक ! तेरे पिता केवल अभी श्मशान की शुद्धि मानने वाले नहीं हैं, पहले भी श्मशान की शुद्धि मानने वाले रहे हैं। न केवल अभी इसने तुझे कहा है कि मुझे इस स्थान पर जलाना, पहले भी इसने इसी स्थान पर जलाने के लिए कहा है।' इतना कह, माणवक के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में इसी राजगृह में यही उपसाळ्हक ब्राह्मण था, यही इसका पुत्र था।

उस समय बोधिसत्व मगध देश में ब्राह्मण कुल में पैदा हो, सब विद्याएँ सीख, ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो, अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर ध्यान-क्रीड़ा करते हुए हिमालय प्रदेश में चिरकाल तक रहे। फिर नमक-खटाई खाने के लिए गृध्रकूट पर पर्ण-कुटी में रहने लगे।

उस समय उस ब्राह्मण ने इसी तरह से पुत्र को कह, पुत्र के यह कहने पर कि 'तुम्हीं मुझे उस तरह का स्थान बता दो' यही स्थान बताया। फिर पुत्र के साथ उतरते हुए ब्राह्मण बोधिसत्व को देख उनके पास पहुँचा।

बोधिसत्व ने इसी तरह पूछ माणवक की बात सुन, कहा--'ओ, तेरे पिता द्वारा बताये गये स्थान की परीक्षा करें कि वहाँ पहले कोई जलाया गया है, वा नहीं ?' फिर उनके साथ पर्वत-शिखर पर चढ़, जब माणवक ने कहा कि यह तीनों चोटियों के बीच का स्थान है जहाँ कोई नहीं जलाया गया, कहा--"माणवक ! इसी स्थान पर जलाये गयों का हिसाब नहीं है। तेरा पिता इसी राजगृह में ब्राह्मण कुल में ही पैदा होकर, उपसाळ्हक नाम से ही इन्हीं चोटियों के बीच में चौदह हजार बार जलाया गया है। पृथ्वी में ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ कोई न कोई जलाया न गया हो, जहाँ श्मशान न बना हो, जहाँ सिर न कटे हों।" पूर्व-जन्मों का ज्ञान होने से, उघाड़ कर यह दो गाथाएँ कहीं—

उपसाळ्हक नामानं सहस्सानि चतुद्दस
अस्मिं पदेसे दड्ढानि नत्थि लोके अनामतं ॥
यम्हि सच्चं च धम्मो च अहिंसा संयमो दमो
एतदरिया सेवन्ति एतं लोके अनामतं ॥

[उपसाळ्हक नाम से ही चौदह हजार व्यक्ति इसी स्थान में जलाये गये। लोक में ऐसी जगह नहीं है जहाँ कोई न कोई मरा न हो।

जिसमें सत्य है, धर्म है, अहिंसा है, संयम है उसे आर्य-जन सेवन करते हैं। यही लोक में नहीं मरता है।]

अनामतं, मृत स्थान को ही व्यवहार से अ-मृत-स्थान कहा गया है। उसका प्रतिषेध करते हुए अनामतं कहा है। **अनमतं**, भी पाठ है। लोक में ऐसी जगह नहीं है जहाँ श्मशान न बना हो, जहाँ कोई न मरा हो। **यम्हि सच्चं च धम्मो च** जिस व्यक्ति में चार आर्य-सत्य, **पूर्व-भाग-सत्य ज्ञान**[1] तथा लोकुत्तर धर्म है, **अहिंसा**, दूसरों को कष्ट न देना, **संयमो**, सदाचार **दमो** इंद्रियों का दमन। जिस आदमी में यह गुण हैं: **एतदरिया सेवन्ति बुद्ध,** प्रत्येक-बुद्ध तथा बुद्ध-श्रावक आर्यजन इस स्थान का सेवन करते हैं। इस प्रकार के आदमी के पास जाते हैं, उसकी संगति करते हैं। **एतं लोके अनामतं,** यही गुण लोक में अमृतत्व का साधन होने से अमृत कहलाते हैं।

इस प्रकार बोधिसत्व पिता तथा पुत्र को धर्मोपदेश दे चारों ब्राह्मविहारों की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने इस धर्मोपदेश को ला (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर दोनों पिता पुत्र स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए।

उस समय के पिता पुत्र ही अब के पिता पुत्र हुए। तपस्वी तो मैं ही था।

⊙

---

१. मार्ग प्राप्ति से पहले का आर्य-सत्यों का ज्ञान।

१६७ समिद्धि जातक

"अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु. . ." यह शास्ता ने राजगृह के तपोदाराम में विहार करते हुए समिद्धि स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन आयुष्मान् समिद्धि सारी रात योगाभ्यास करके अरुणोदय के समय स्नान कर अपने स्वर्ण-वर्ण शरीर को सुखा रहे थे। उन्होंने अन्तरवासक पहन लिया था और उत्तरासंग उनके हाथ में था। वे सोने की सुन्दर प्रतिमा की तरह प्रतीत होते थे। उनका शरीर समृद्ध से ही उनका नाम समिद्धि था।

उनके शरीर का सौन्दर्य देख एक देव-कन्या उन पर आसक्त हो गयी और बोली—"भिक्षु ! तू तरुण है, तू युवा है, तेरे केश सुन्दर तथा काले हैं; श्रेष्ठ यौवन से युक्त है, तू मनोरम है, दर्शनीय है, तू मन को प्रसन्न करने वाला है। तेरे जैसे शरीर वाले को काम-भोगों को न भोग प्रव्रजित होने में क्या लाभ ? अभी तू काम-भोगों को भोग। पीछे प्रव्रजित होकर श्रवण-धर्म का पालन करना।"

उसे स्थविर ने उत्तर दिया—"हे देव-कन्या ! मैं नहीं जानता कि मैं किस आयु में मरूँगा। मेरी मृत्यु मुझसे छिपी है। इसलिए तरुणाई की अवस्था में ही श्रमण-धर्म करके दुःख का अन्त करूँगा।"

स्थविर ने उनका स्वागत नहीं किया। वह वहीं अन्तर्धान हो गयी।

स्थविर ने शास्ता के पास जाकर यह बात कही। शास्ता बोले—"समिद्धि ! न केवल तुझे ही अब देव-कन्या ने प्रलोभित किया है, पूर्व में भी देव-कन्याओं ने प्रव्रजितों को प्रलोभित किया है।"

शास्ता ने उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी

गाँव में ब्राह्मण कुल में पैदा हो, बड़े होने पर सब विद्याओं में पारङ्गत हो, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर हिमालय प्रदेश में एक तालाब के पास रहने लगे।

वह सारी रात योगाभ्यास करते रहे। अरुणोदय होने पर स्नान किया। फिर एक वल्कल-चीर पहन, एक हाथ में ले शरीर को सुखाने लगे। उसका सुन्दर शरीर देख एक देव-कन्या उस पर आसक्त हो, बोधिसत्व को ललचाती हुई यह पहली गाथा बोली——

अभुत्वा भिक्खसि ! भिक्खु ! नहि भुत्वान भिक्खसि।
भुत्वान भिक्खु ! भिक्खसु मा तं कालो उपच्चगा[1] ॥

[भिक्षु ! तू बिना काम-भोगों को भोगे भिक्षु बना है। काम-भोगों को भोग कर भिखारी नहीं बना है। भिक्षु ! काम-भोगों का भोग करके तू भिखारी बन। यह तेरा काम-भोगों को भोगने समय न बीत जाय।]

अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु, भिक्षु ! तू तरुणाई में काम-भोगों को न भोग कर भिक्षाचार करता है। **नहि भुत्वान भिक्खसि**, क्या पाँच प्रकार के काम-भागों को भोग कर ही भिखारी नहीं बनना चाहिए ? तू काम-भागों को न भोग कर ही भिखारी बना है। **भुत्वान भिक्खु ! भिक्खसु**, भिक्षु ! अभी तरुणाई में काम-भोगों को भोग कर पीछे वृद्ध होने पर भिखारी बनना। **मा तं कालो उपच्चगा**, यह काम-भोगों के उपभोग करने की आयु, यह तरुणाई यूँ ही न बिता।

बोधिसत्व ने देव-कन्या की बात सुन अपना विचार प्रकट करने के लिए दूसरी गाथा कही——

कालं वोहं न जानामि, छन्नो कालो न दिस्सति।
तस्मा अभुत्वा भिक्खामि, मायं कालो उपच्चगा ॥

[मैं मृत्यु के समय को नहीं जानता। छिपा हुआ समय दिखायी नहीं देता।

---

१. देवता संयुक्त, संयुक्त निकाय।

इसलिए बिना काम-भोगों का उपभोग किए ही भिक्षु बना हूँ। मेरा यह समय न बीत जाय।]

कालं वोहं न जानामि, 'वो' केवल निपात है। मैं प्रथम आयु में मरूँगा, मध्यम आयु में अथवा आखिरी में--अपना मरने का समय नहीं जानता हूँ।

अत्यन्त पण्डित आदमी को भी।

जीवितं व्याधि कालो च देहानिक्खेपनं गति
तञ्चेते जीवलोकस्मिं अनिमित्ता न जायरे॥

[जीव-लोक में इन पाँच बातों का पता नहीं लगता--(१) जीने की आयु, (२) रोग, (३) मृत्यु-समय (४) शरीर के पतन का स्थान, (५) मरने पर क्या गति होगी ?]

छन्नो कालो न दिस्सति, इसलिए इस आयु में अथवा इस समय वा हेमन्त आदि ऋतुओं में से इस ऋतु में मुझे मरना होगा, यह मुझसे भी छिपा हुआ मृत्यु-समय दिखायी नहीं देता। अच्छी प्रकार ढका होने से प्रकट नहीं है। **मा तस्मा अभुत्वाभिक्खामि** इसलिए काम-भोगों को न भोग भिखारी बना हूँ। **मा मं कालो उपच्चगा**, मेरा श्रमण-धर्म करने का समय बीत न जाय। इसलिए तरुणाई में ही प्रव्रजित होकर श्रमण-धर्म करता हूं।

देव-कन्या बोधिसत्व की बात सुन वहीं अन्तर्धान हो गयी।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय देव-कन्या यही देव-कन्या थी। मैं ही उस समय तपस्वी था।

⊙

१६८. सकुणग्घि जातक

"सेमो बलसा पतमानो" यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय अपने विचार के **द्योतक सकुणोवाद सूत्र**[1] के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन शास्ता ने भिक्षुओं को सम्बोधन कर उपदेश दिया "भिक्षुओं ! जो तुम्हारे योग्य हो उसमें विचरो जो तुम्हारा पैतृक विषय हो उसमें।" यह संयुक्त निकाय के महावर्ग का सूत्र है[2]। इसका उपदेश करते हुए कहा-- "तुम अपनी बात रहने दो। पूर्व समय में जानवर भी अपने पैतृक-विषय को छोड़ अयोग्य-स्थान में विचरने से शत्रुओं के हाथ में पड़ अपनी बुद्धि तथा उपाय-कौशल से शत्रुओं के हाथ से मुक्त हुए।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व बटेर होकर पैदा हुआ। वह हल चलाने की जगह पर ढेलों में रहता था।

एक दिन अपनी गोचर-भूमि को छोड़ दूसरे की गोचर-भूमि में जाने की इच्छा से वह जंगल तक चला गया। उसे वहाँ घूमता देख एक बाज ने यकायक आकर पकड़ लिया। जब उसे बाज पकड़ कर ले जा रहा था, तो वह इस प्रकार रोने लगा--"हम अत्यन्त अभाग्यवान् हैं। हमारा पुण्य बहुत कम है। हम दूसरों के स्थान में चरने गये। यदि आज हम अपने पैतृक-स्थान में ही चरते तो यह बाज मेरे साथ युद्ध करने में समर्थ न होता।"

---

१. **महावग्ग।**

२. **सतिपट्ठान संयुत्त, अम्बपालि वग्ग।**

"लापक ! तेरा स्वकीय पैतृक-स्थान कौन-सा है ?"

"यही जहाँ हल चलाने की जगह पर ढेले हैं।

बाज ने अपने बल को ढीला कर उसे छोड़ दिया और कहा--'हे बटेर तू जा ! मैं तुझे वहाँ भी जाकर पकड़ लूँगा।'

बटेर ने वहाँ जा एक बड़े से ढेले पर चढ़ बाज को ललकारा—'बाज ! अब तू आ।'

बाज ने अपना बल सँभाल, दो पंखों को उठा बटेर को एकदम घेर लिया। उस बटेर ने समझा कि बाज मेरे बहुत समीप आ गया, तो वह पलट कर उस ढेले के अन्दर चला गया।

बाज अपने जोर को न रोक सका। उसकी छाती ढेले से टकराई। इस प्रकार उसका कलेजा चूर-चूर हो गया। आँखें निकल आयीं। वह मर गया।

शास्ता ने यह अतीत-कथा सुना कहा—"भिक्षुओं ! इस प्रकार जानवर भी अयोग्य स्थान पर चरने से सत्रु के हाथ में पड़ जाते हैं। योग्न स्थान में, अपने पैतृक-स्थान में चरते हुए शत्रुओं को जीत लेते हैं। इसलिए तुम भी अयोग्य स्थान में, जो तुम्हारा विषय नहीं है, मत विचरो। अयोग्य स्थान में, जो अपना विषय नहीं है, विचरने वाले पर भिक्षुओं ! मार आक्रमण करता है। वह मार का निशाना बनता है। भिक्षुओं ! भिक्षुओं के लिए अयोग्य स्थान, जो उनका विषय नहीं है, क्या है ? जो यह पाँच प्रकार के कामोपभोग हैं। कौन से पाँच ? आँख से देखे जाने वाले (प्रिय) रूप, कान से सुने जाने वाले शब्द, नाक से सूँघी जाने वाली सुगन्धियाँ, जिह्वा से मजा लिये जाने वाले रस और शरीर से छुए जाने वाले स्पर्श--भिक्षुओं, यह भिक्षुओं के लिए अयोग्य-स्थान हैं। यह उनका विषय नहीं है।"

इतना कह सम्यक् सम्बुद्ध हुए रहने की अवस्था में प्रथम गाथा कही–

सेनो बलसा पतमानो लापं गोचरठायिनं[1]
सहसा अज्झपत्तो मरणं तेनुपागमि ॥

---

१. अगोचर ठायिनं के स्णान पर गोचर ठायिनं श्रेयस्कर प्रतीत होता है !

बोधिसत्व ने भी उसी तरह पुण्य कर्म करते हुए स्वर्ग का रास्ता लिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर वह कुल-पुत्र स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय काश्यप आनन्द था। कुम्हार तो मैं ही था।

१७९. सतधम्म जातक

"तञ्च अप्पं...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय इक्कीस तरह की अनुचित जीविका के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय भिक्षु इक्कीस तरह के ऐसे कर्मों से जीविका चलाते थे जैसे वैद्यक, दूत बनकर जाना, सन्देश लेकर जाना, पैदल दौड़ कर (सन्देश ले) जाना, भिक्षा (=पिण्ड) के बदले में भिक्षा लेना आदि।

शास्ता ने उन भिक्षुओं का उस-उस तरह जीविका चलाना जान सोचा—"इस समय भिक्षु अनुचित ढंग से जीविका चलाते हैं। इस प्रकार जीविका चलाने से वे यक्ष-योनि से वा प्रेत-योनि से मुक्त न होंगे। जुए के बैल होकर पैदा होंगे। नरक में जन्म ग्रहण करेंगे। इनके हित के लिए, सुख के लिए अपने विचारानुकूल तथा प्रतिभा के अनुसार एक धर्मोपदेश देना चाहिए।"

तब भगवान् ने भिक्षुओं को इकट्ठा करवा उपदेश दिया—"भिक्षुओ! इक्कीस तरह के अनुचित तरीकों से जीविका नहीं चलानी चाहिए। अनुचित तरीकों से जो भिक्षा मिलती है, वह लोहे के तप्त गोले के समान है, हलाहल विष की तरह है। अनुचित तरीकों से जीविका चलाने की बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध तथा श्रावकों, सभी ने निन्दा की है, निकृष्ट बताया है। अनुचित तरीकों से जिस भिक्षा की प्राप्ति होती है, उसे खाने वाले के मुँह पर मुस्कुराहट नहीं आ सकती, उसका मन प्रसन्न नहीं हो सकता। अनुचित तरीके से जो भिक्षा मिलती है, वह मेरे मत में चाण्डाल के जूठे भोजन की तरह है। उसका खाना ऐसा ही है, जैसे सतधम्म माणवक ने चाण्डाल का जूठा भोजन खाया।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने चाण्डाल का जन्म ग्रहण किया। बड़े होने पर किसी काम से उन्होंने रास्ते में खाने के लिए चावल और भात की पोटली ले रास्ता पकड़ा।

उसी समय में वाराणसी में एक माणवक था। नाम था सतधम्म। उदीच्च गोत्र के महाधनवान् कुल में पैदा हुआ था। वह भी किसी काम से रास्ते में खाने के लिए चावल वा भात की पोटली बिना लिए ही निकल पड़ा।

उन दोनों की महामार्ग में भेंट हुई। माणवक ने बोधिसत्व से पूछा--तेरी जात क्या है?" उसने कहा--"मैं चाण्डाल हूँ" और माणवक से पूछा-तेरी जात क्या है?" "मैं उदीच्च ब्राह्मण हूँ।" "अच्छा' तो चलें" कह दोनों ने रास्ता पकड़ा।

बोधिसत्व ने प्रातःकाल का भोजन करने के समय एक ऐसी जगह जहाँ पानी की सुविधा थी, बैठ हाथ धो भात की पोटली खोल माणवक से पूछा--

"भात खाओगे?"

"रे चाण्डाल! मुझे भात की जरूरत नहीं है।"

बोधिसत्व बोला "अच्छा।" फिर भात की पोटली को जूठा न कर, अपनी आवश्यकता भर भात एक दूसरे पत्ते में डाल, पोटली को बाँध कर एक ओर रख दिया। भोजन कर, पानी पी, हाथ-पैर धो, चावल तथा शेष भात ले माणवक से कहा "माणवक, चलें", और रास्ता पकड़ा।

वे सारा दिन चलकर, पानी की सुविधा की एक जगह में नहा कर बाहर निकले।

बोधिसत्व ने आराम की जगह बैठ भात की पोटली खोल माणवक को बिना पूछे ही खाना आरम्भ किया। दिन भर चलने से माणवक थक गया था और खूब भूख लगी थी। वह बोधिसत्व की ओर देखने लगा—"यदि यह भात देगा, तो खा लूंगा।" लेकिन बोधिसत्व बिना कुछ बोले खाते रहे।

माणवक ने सोचा—यह चाण्डाल बिना मुझे पूछे ही सब खाये जा रहा है। इससे जबरदस्ती छीनकर भी, ऊपर का जूठा भात हटा कर शेष खाना चाहिए उसने वैसा कर जूठा भात खाया।

भात खाने के ही साथ माणवक के मन में बड़े जोर का पश्चात्ताप पैदा हुआ। वह सोचने लगा—"मैंने अपनी जाति, गोत्र तथा प्रदेश के योग्य कार्य नहीं किया। मैंने चाण्डाल का जूठा भात खा लिया।" उसी समय उसके मुंह से रक्त सहित भात बाहर आया।

इस बड़े शोक से शोकातुर हो कि मैंने जरा-सी बात के लिए अनुचित कर्म किया, उसने रोते हुए यह पहली गाथा कही—

तञ्च अप्पञ्च उच्छिट्ठं तञ्च किच्छेन नो अदा,
सोहं ब्राह्मणजातिको यं भुत्तं तम्पि उग्गतं ॥

[वह थोड़ा-सा था। जूठा था; और वह भी उसने कठिनाई से दिया। ब्राह्मण जाति का होकर मैंने वह खाया। जो खाया सो भी निकल गया।]

———

जो मैंने खाया यह **अप्पं उच्छिट्ठं तं च नो**, उस चाण्डाल ने अपनी इच्छा से नहीं, बल्कि जबरदस्ती करने पर **किच्छेन**, कठिनाई से दिया। **सोहं** परि-शुद्ध ब्राह्मण जाति का होकर (खाया) उसी से मैंने **यं भुत्तं तम्पि** रक्त के साथ **उग्गतं**।

———

इस प्रकार माणवक रो पीट कर 'मैंने ऐसा अनुचित काम किया, अब मैं जी कर क्या करूँगा' सोच जंगल में चला गया। वहाँ सबसे छिपे रहकर अनाथ-मरण मरा।

शास्ता ने यह पूर्व की बात कह उपदेश दिया—"भिक्षुओ, जैसे सतधम्म माणवक को उस चाण्डाल का जूठा भात खाने से, अपने लिए अनुचित भात खाया रहने से, न हँसी आयी न मन प्रसन्न हो सका, इसी प्रकार जो इस शासन में प्रव्रजित हो अनुचित ढंग से जीविका चलाता है और उससे प्राप्त पदार्थों का उपभोग करता है, बुद्ध द्वारा निन्दित, बुद्ध द्वारा निकृष्ट कही गयी जीविका से जीविका चलाने के कारण उसके मुंह पर न हँसी आती है, न प्रसन्नता।

शास्ता ने सम्बुद्धत्व प्राप्त किये रहने पर यह दूसरी गाथा कही—

एवं धम्मं निरंकत्वा यों अधम्मेन जीवति
सतधम्मोव लाभेन लद्धेनपि न नन्दति ॥

[इस प्रकार धर्म छोड़ जो अधर्म से जीता है। वह सतधर्म की तरह लाभ होने पर भी प्रसन्न नहीं होता।]

धम्म जीविका को शुद्ध रखने के सदाचार का धर्म। **निरंकत्वा**, बाहर करके, छोड़ कर, **अधम्मेन**, इक्कीस तरह से अनुचित तरीकों से जीविका खोजना। **सतधम्मो** उसका नाम है। **न नन्दति** जैसे सतधम्म माणवक चाण्डाल का जूठा मुझे मिला सोच उस लाभ से प्रसन्न नहीं होता। इसी प्रकार इस शासन में प्रव्रजित कुलपुत्र अनुचित ढंग से प्राप्त लाभ का परिभोग करता हुआ प्रसन्न नहीं होता, सन्तुष्ट नहीं होता। निन्दित जीविका से जीता हूँ सोच दुःखी ही होता है। इसलिए अनुचित ढंग से जीविका खोजने वाले के लिए यही अच्छा है कि वह सतधम्म माणवक की तरह ज़ंगल में जा अनाथ की तरह मर जाए।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मोपदेश कर चार आर्य (-सत्यों) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर बहुत से भिक्षुओ को स्रोतापत्ति आदि फल की प्राप्ति हुई।

उस समय मैं ही चाण्डालपुत्र था।

⊙

१८०. दुद्दद जातक

"दुद्दं ददमानं. . ." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय सामूहिक दान के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में कुटुम्ब-पुत्र परस्पर मित्रों ने चन्दा इकट्ठा करके सभी आवश्यक वस्तुओं से युक्त दान की तैयारी कर भिक्षुसंघ को जिसके प्रमुख बुद्ध थे, निमन्त्रित कर एक सप्ताह तक महादान दिया।[1] सातवें दिन सब आवश्यक वस्तुएँ दीं।

उनमें जो मण्डली का प्रधान था उसने शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठ कर कहा––'भन्ते ! इस दान में अधिक देने वाले भी सम्मिलित हैं, थोड़ा देने वाले भी सम्मिलित हैं। यह दान सभी के लिए महान् फलदायी हो।' यह कह कर उसने दान दिया।

शास्ता बोले––'उपासकों ! भिक्षुसंघ को, जिसके प्रमुख बुद्ध हैं दान देते हुए जो तुमने इस प्रकार दिया, यह महान् कर्म है। पुराने समय में पण्डितों ने भी दान देते हुए इसी प्रकार दिया।'

उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी देश में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला जा वहाँ सब विद्याएँ सीखीं। फिर घर छोड़, ऋषियों के ढंग से प्रव्रज्या-ग्रहण कर, मण्डली का नेता बन हिमालय प्रदेश में चिरकाल तक रहे। नमक-खटाई के लिए बस्ती

---

१ सात दिन तक नियमित भोजन कराया।

में घूमते हुए, आकर वाराणसी पहुँचे। वहाँ राजोद्यान में रहकर अगले दिन परिषद् सहित दरवाजे पर के गाँव में भिक्षाटन किया। मनुष्यों ने भिक्षा दी। अगले दिन वाराणसी में भिक्षाटन किया। आदमियों ने श्रद्धावान् हो भिक्षा दे, टोली बनाकर चन्दा इकट्ठा कर दान की तैयारी की और ऋषिगण को महादान दिया। दान की समाप्ति पर टोली के नेता ने इसी प्रकार कहकर दातव्य-वस्तुओं का परित्याग किया।

बोधिसत्व ने "आयुष्मानों! श्रद्धा होने पर दान कभी थोड़ा नहीं होता" कह दानानुमोदन करते हुए यह गाथा कही—

दुद्ददं ददमानानं दुक्करं कम्मकुब्बतं।
असन्तो नानकुब्बन्ति सतं धम्मो दुरन्नयो॥
तस्मा सतञ्च असतञ्च नन्ना होति इतो गति।
असन्तो निरयं यन्ति सन्तो सग्गपरायणा॥

[कठिनाई से जो दिया जा सके देने वाले, कठिनाई से जो किया जा सके करने वाले सत्पुरुषों का धर्म दुर्ज्ञेय है; असत्पुरुष इसे नहीं करते। इसलिए सत्पुरुषों और असत्पुरुषों की गति भिन्न-भिन्न होती है। सत्पुरुष स्वर्ग जाने वाले होते हैं और असत्पुरुष नरक में।]

दुद्ददं लोभ आदि से युक्त अपण्डित-जन दान नहीं दे सकते। इसलिए दान को कठिनाई से दिया जा सकने योग्य कहा। उसे **ददमानानं**। **दुक्करं कम्मकुब्बतं** उसी दान कर्म को सब नहीं कर सकते, इसलिए उस दुष्कर कर्म को करने वाले। **दुरन्नयो** फल-सम्बन्ध की दृष्टि से दुर्ज्ञेय—इस प्रकार के दान का इस प्रकार का फल होता है, यह जानना कठिन है; और भी **दुरन्नयो** कठिनाई से प्राप्य, मूर्ख जन दान देकर भी दान का फल नहीं प्राप्त कर सकते। **नाना होति इतो गति** यहाँ से च्युत होकर परलोक जाने वालों को नाना प्रकार से जन्म ग्रहण करने होते हैं। **असन्तो निरयं यन्ति**, मूर्ख दुश्शील लोग दान न दे, तथा सदाचार की रक्षा न कर नरक को जाते हैं। **सन्तो सग्गपरायणा**, पण्डित लोग दान देकर शील की रक्षा कर, उपोसथ-व्रत

रख, तीनों प्रकार के सुचरित्र[1] पूरे कर स्वर्गगामी होते हैं। महान् स्वर्ग-सुख सम्पत्ति का आनन्द लूटते हैं।

इस प्रकार बोधिसत्त्व (दान-) अनुमोदन कर वर्षा के चार महीने वहीं रहे। वर्षा-ऋतु समाप्त होने पर ध्यान-प्राप्त कर ध्यान-युक्त ही ब्रह्मलोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ऋषि-गण बुद्ध-परिषद् थी। मण्डली का नेता तो मैं ही था।

⊙

---

१. काय, वाक् तथा वाणी के शुभ कर्म।

दूसरा परिच्छेद

४. असदिस वर्ग

१८१. असदिस जातक

"धनुग्गहो असदिसो...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय महाभिनिष्क्रमण के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन धर्म सभा में बैठे हुए भिक्षु भगवान् की नैष्क्रम्यपारमी की प्रसंसा कर रहे थे। शास्ता ने आकर पूछा--"भिक्षुओं, यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" "भिक्षुओ! तथागत ने केवल अभी अभिनिष्क्रमण नहीं किया, पहले भी श्वेत-छत्र छोड़कर अभिनिष्क्रमण किया है।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पुराने समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने उसकी रानी की कोख में जन्म ग्रहण किया।

सकुशल पैदा हुए उस राजकुमार का, नामग्रहण के दिन नाम रखा गया असदिसकुमार। जिस समय वह दौड़ भाग कर चलने फिरने लगा; एक-दूसरे पुण्यवान प्राणी ने देवी की कोख में जन्म ग्रहण किया। सकुशल पैदा हुए उस कुमार का नाम रखा गया ब्रह्मदत्त कुमार।

उन दोनों में से बोधिसत्व सोलह वर्ष की आयु होने पर तक्षशिला जा, वहाँ प्रसिद्ध आचार्य से तीनों वेद तथा अट्ठारह विद्याएँ सीख, तीर चलाने में

बेजोड़ हो, वाराणसी लौटे। राजा ने मरते समय कहा, असदिसकुमार को राजा तथा ब्रह्मदत्त कुमार को उपराजा बनाना। इतना कह वह मर गया।

उसके मर जाने पर बोधिसत्व को राज्य दिया जाने लगा, उसने मना कर दिया कि मुझे राज्य की जरूरत नहीं है। ब्रह्मदत्त का राज्याभिषेक कर दिया गया। बोधिसत्व ने कहा कि मुझे यह नहीं चाहिए; और किसी भी चीज की इच्छा नहीं की। छोटे भाई के राज्य करते हुए वह जैसे साधारण ढंग से रहते थे, उसी तरह रहते रहे।

राजा के नौकर चाकरों ने राजा को यह कह कर कि बोधिसत्व राज्य चाहते हैं, राजा का मन बोधिसत्व की ओर से फेर दिया। उसने उनका विश्वास कर, चित्त में सन्देह पैदा हो जाने के कारण मनुष्यों को आज्ञा दी कि मेरे भाई को पकड़ो।

बोधिसत्व के किसी हितचिन्तक ने उन्हें इसकी सूचना दी। छोटे भाई से क्रुद्ध हो बोधिसत्व किसी दूसरे राष्ट्र में चले गये। वहाँ राजद्वार पर पहुँच कहलाया कि एक धनुर्धारी आया है। राजा ने पूछा कि क्या वेतन लेगा? उत्तर दिया—एक वर्ष के लिए एक लाख। राजा ने आज्ञा दी 'अच्छा आ जाए।' उसके समीप आकर खड़े होने पर पूछा—

"तू धनुर्धारी है?"
"देव! हाँ।"
"अच्छा! मेरी सेवा में रह।"

तब से वह राजा की सेवा में रहने लगे। उन्हें जो वेतन मिलता था, उसे देख पुराने धनुर्धारी बहुत क्रुद्ध हुए कि इसे बहुत मिलता है।

एक दिन राजा उद्यान गया। वहाँ मङ्गल-शिला की शैया के पास कनात तनवा आम के वृक्ष के नीचे महाशय्या पर लेटा। ऊपर देखते हुए उसने एक आम देखा। उसे लगा कि इस आम को चढ़कर नहीं तोड़ा जा सकता। इसलिए उसने धनुर्धारियों को बुलवा कर पूछा—"क्या इस आम को तीर मार कर गिरा सकते हो?"

'देव! यह हमारे लिए कठिन कार्य नहीं है। लेकिन। देव! हमारा

कौशल तो आपने पहले अनेक बार देखा है । जो नया धनुर्धर आया है, वह हमारी अपेक्षा बहुत पाता है । उससे गिरवाएँ ।"

राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर पूछा—"तात ! इसे गिरा सकते हो ?"

"महाराज ! हाँ ! थोड़ी जगह मिलने पर गिरा सकूँगा ।"

"जगह कहाँ चाहिए ?"

"जहाँ आपकी शय्या है ।"

राजा ने शय्या हटवा कर जगह करा दी । बोधिसत्व हाथ में धनुष नहीं रखते थे । वह कपड़ों के नीचे छिपाए रखते थे । इसलिए कहा कि कनात चाहिए । राजा ने कहा 'अच्छा' और कनात मँगवा कर तनवा दी । बोधिसत्व कनात के अन्दर चले गये । वहाँ पहुँच उन्होंने ऊपर पहना श्वेत वस्त्र उतार एक लाल कपड़ा पहना । फिर कच्छ पहन, थैली से जुड़ने-वाली तलवार निकाल, बायीं ओर बाँधी । तब सुनहरा वस्त्र पहन, कमर पर तरकश बाँध, जुड़ने वाला मेढ़े की सींग का बना बड़ा धनुष ले, मूँगे के रंग की डोरी बाँध, सिर पर पगड़ी धारण की । तेज तीर को नाखूर पर घुमाते हुए वह कनात के दो हिस्से कर ऐसे निकला मानों पृथ्वी फाड़ कर अलंकृत नाग-कुमार बाहर आया हो । फिर बोधिसत्व तीर चलाने की जगह पर जा, तीर को तैयार कर राजा से बोले—

"महाराज ! इस आम को ऊपर जाने वाले तीर से गिराऊँ अथवा नीचे जाने वाले तीर से ?"

"तात ! मैंने ऊपर जाने वाले तीर से बहुत गिराते देखा है, लेकिन नीचे जाने वाले तीर से गिराते नहीं देखा है । नीचे जाने वाले तीर से गिराएँ ।"

"महाराज । यह तीर दूर तक जाएगा । चातुर्महाराजिक भवन तक जाकर स्वयं नीचे उतरेगा । जब तक यह नीचे उतरे, तब तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी ।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया ।

बोधिसत्व ने फिर कहा—"महाराज ! यह तीर ऊपर जाता हुआ आम की डंठल को ठीक बीच में से छेदता हुआ ऊपर जाएगा; और नीचे उतरता हुआ

केशाग्रमात्र भी इधर-उधर न हो, निश्चित जगह पर लग, आम को लेकर नीचे उतरेगा। महाराज ! देखें।"

तब बोधिसत्व ने जोर लगा कर तीर छोड़ा। आम की डंठल को बीच में से छेदता हुआ तीर ऊपर चढ़ा। बोधिसत्व ने यह समझ कि अब वह तीर चातुर्महाराजिक भवन पहुँचा होगा, पहले तीर से भी अधिक जोर से एक दूसरा तीर चलाया। वह तीर जाकर पहले छोड़े हुए तीर के पंख में लगा और उसे लौटा स्वयं तावतिंस भवन को चला गया। उसे वहाँ देवताओं ने पकड़ लिया। जो तीर लौट रहा था उसके हवा छेदते हुए आने की आवाज बिजली की आवाज के समान थी।

लोगों ने पूछा—"यह कैसी आवाज है?"

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"यह तीर के लौटने की आवाज है।"

लोगों को डर लगने लगा कि उनमें से किसी के बदन पर न गिरे। बोधिसत्व ने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं तीर को जमीन पर गिरने न दूँगा।

उतरते हुए तीर ने बाल की नोक भर भी इधर-उधर न जा निश्चित स्थान पर गिर आम को तोड़ा। बोधिसत्व ने तीर तथा आम को जमीन पर गिरने न दे, आकाश में ही रोक कर एक हाथ में तीर और दूसरे में आम लिया।

जनता उस आश्चर्य को देख "ऐसा तो हमने कभी पहले नहीं देखा" कहते हुए महापुरुष की प्रशंसा करने लगी, चिल्लाने लगी, तालियाँ पीटने लगी। अँगुलियाँ चटखाने लगीं, और सहस्रों वस्त्रों को ऊपर उछालने लगी। सन्तुष्टचित्त राज्यपरिषद् ने बोधिसत्व को एक करोड़ धन दिया। राजा ने भी धन की वर्षा करते हुए इसे बहुत-सा धन तथा यश दिया।

इस प्रकार आदृत तथा सत्कृत होकर बोधिसत्व के यहाँ रहते समय सात राजाओं ने यह जान कि अब असदिसकुमार वाराणसी में नहीं हैं, बाराणसी को घेर लिया और संदेस भेजा कि चाहे राज्य दें, चाहे युद्ध करें। राजा ने मरने से भयभीत हो पूछा—"इस समय मेरा भाई कहाँ है?"

"एक सामन्त राजा की सेवा में है।"

उसने दूत भेजे—यदि भाई नहीं आयेगा, तो मेरी जान नहीं बचेगी।

जाओ मेरी ओर से उनके चरणों में प्रणाम कर, क्षमा माँग उन्हें लिवा कर आओ।

उन्होंने जाकर बोधिसत्व को वह समाचार कहा। बोधिसत्व ने उस राजा को पूछ, वाराणसी लौट कर अपने भाई को आश्वासन दिया कि मत डरें। फिर उसने एक तीर पर लिखा कि मैं असदिसकुमार आ गया हूँ। दूसरा तीर चलाकर सबकी जान ले लूँगा। इसलिए जिन्हें जान प्यारी हो, वह भाग जाएँ। उस तीर को उसने अट्टालिका पर चढ़ ऐसे चलाया कि वह जहाँ सातों राजा भोजन कर रहे थे वहाँ सोने की थाली के ठीक बीच में जाकर गिरा। उन अक्षरों को देख मरने के भय से वह सभी भाग गये।

इस प्रकार बोधिसत्व ने, छोटी मक्खी जितना खून पीती है उतना खून भी बिना बहाए सातों राजाओं को भगा दिया। फिर छोटे भाई से भेंट कर, कामभोग के जीवन को त्याग ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रज्या ग्रहण की। अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर जीवन समाप्त होने पर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने बुद्ध हुए रहने पर "भिक्षुओ! असदिसकुमार ने सात राजाओं को भगा, संग्राम विजयी हो, ऋषियों के क्रम से प्रव्रज्या ग्रहण की" कह, यह गाथाएँ कहीं—

धनुग्गहो असदिसो राजपुत्तो महब्बलो।
दूरेपाती अक्खणवेधी महाकायप्पदालनो॥
सब्बामित्ते रणं कत्वा न च किञ्चि विहेठयि।
भातरं सोत्थिं कत्वान सञ्ञमं अज्झुपागमि॥

[महाबलशाली, बड़ी-बड़ी चीजों को बींधने वाले, अचूक निशाना लगाने वाले; धनुर्धारी असदिस राजपुत्र ने जो तीर को दूर गिराता था, बिना किसी को कष्ट दिए सभी शत्रुओं से यह युद्ध कर भाई का उपकार किया। वह स्वयं संन्यासी हो गया।]

———

असदिसो केवल नाम से ही नहीं, बल, वीर्य तथा प्रज्ञा में भी असदृश

महब्बलो शरीर-बल तथा ज्ञान-बल, दोनों बलों से बलशाली । **दूरेपाती** चातुर्महाराजिक भवन तथा तावतिंस भवन तक तीर पहुँचाने की सामर्थ्य रखने से दूर गिराने वाला । **अक्खणवेधि** अचूक निशाने वाला, अक्खणा कहते हैं बिजली को; जितनी देर एक बार बिजली चमकती है, एक बार बिजली चमकने के, उतनी ही देर के प्रकाश में सात आठ बार लेकर बींधने वाला । **महाकायपद्दालनो** बड़ी चीजों को बींधने वाला । चर्म-काय, लकड़ी-काय, लोह-काय[1], अयस्-काय, बालू-काय, उदक-काय तथा स्फटिक-काय, यह सात महाकाय हैं। कोई दूसरा चर्म-काय को बींधने वाला केवल भैंस के चर्म को बींधता है । वह सात भैंस-चर्मों को बींधता । दूसरा कोई आठ अंगुल मोटे अंजीर के तख्ते को, वा चार अंगुल मोटे असन वृक्ष के तख्ते को बींधता है । वह एक साथ सौ तख्ते बँधे हों, तो उनको भी बींधता । उसी तरह दो अंगुल मोटे ताम्बे के तख्ते, वा अंगुल मोट अयस्-तख्ते को अथवा बालू की गाड़ी, वा तख्तों की गाड़ी, वा पराल की गाड़ी में पीछे से तीर मार कर आगे निकाल देता । पानी में सामान्यतया चार ऋषभ की दूरी पर तीर पहुँचा देता; स्थल में आठ ऋषभ की दूरी पर । इस प्रकार इन सात कार्यों को बींधने वाला होने से महाकाय बींधने वाला । **सब्बामित्ते**, सभी शत्रु । **रणं कत्वा**, **युद्ध** करके भगा दिये । **न च किञ्चि विहेठयि**, किसी एक को भी कष्ट नहीं दिया । बिना कष्ट दिये उनके साथ केवल तीर भेज कर ही युद्ध करके । **सञ्ञमं अज्झुपागमि** शील-संयम रूपी प्रव्रज्या को प्राप्त किया ।

इस प्रकार शास्ता ने धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय छोटा भाई आनन्द था । असदिसकुमार तो मैं ही था ।

०

---

१. लोह = ताँबा ।

१८२. संगामावचर जातक

"**संगामावचरो सूरा...**" यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय नन्द स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जिस समय शास्ता पहली बार **कपिलपुर**[1] गये, उन्होंने छोटे भाई नन्द-कुमार को प्रव्रजित किया। कपिलपुर से निकल क्रमशः श्रावस्ती जाते समय आयुष्मान् **नन्द** भगवान् का पात्र ले शास्ता के साथ-साथ चले। **जनपद-कल्याणि**[2] ने सुना तो आधे बिखरे केशों से झरोखे में से देख कर कहा कि आर्यपुत्र शीघ्र लौटना। नन्द जनपदकल्याणि के इस कथन को याद करता हुआ उत्कण्ठा के कारण शासन में मन न लगा सका। वह पाण्डुवर्ण का हो गया; और उसके शरीर में नसें ही नसें दिखायी देने लगीं।

शास्ता ने उसका हाल जान सोचा कि मैं नन्द को अर्हत-पद पर प्रतिष्ठित करूँ। इसलिए उन्होंने उसके रहने के परिवेण में जा वहाँ बिछे आसन पर बैठ पूछा—"नन्द! इस शासन में तेरा मन लगता है वा नहीं?"

"भन्ते! जनपदकल्याणि में आसक्ति होने के कारण मन नहीं लगता।"

"नन्द! तू पहले हिमालय में चारिका करने गया है?"

"भन्ते! नहीं गया हूँ।"

"तो! आओ चलें।"

"भन्ते! मुझे ऋद्धि (-बल) नहीं है। मैं कैसे जाऊँगा?"

"नन्द! मैं तुझे अपने ऋद्धि (-बल) से ले जाऊँगा।"

---

१. कपिलवस्तु।

२. नन्द की भार्या।

शास्ता ने स्थविर को हाथ पकड़ आकाश मार्ग से जाते हुए रास्ते में जला हुआ खेत दिखाया। वहाँ जले हुए एक ठूँठ पर एक बन्दरी बैठी दिखायी; जिसके कान, नाक और पूँछ कटी थी; जिसके बाल जल गये थे; जिसकी खाल फट गयी थी; जिसकी चमड़ी मात्र बाकी रह गयी थी तथा जिसमें से रक्त बह रहा था।

"नन्द ! इस बन्दरी को देखते हो ?"

"भन्ते ! हाँ।"

"अच्छी तरह से प्रत्यक्ष करो।"

फिर उसे ले साठ योजन का मनोशिला-तल, अनवतप्त आदि सात महासर, पाँच महानदियाँ, स्वर्ण-पर्वत, रजन-पर्वत तथा मणि-पर्वत से सैकड़ों रमणीय-स्थान और हिमालय-पर्वत दिखा पूछा--

"नन्द ! तूने **तावतिंस-भवन**[1] देखा है ?"

"भन्ते ! नहीं देखा ?"

"नन्द ! आ तुझे तावतिंस भवन दिखाएँ।"

शास्ता उसे वहाँ ले जा पाण्डु-कम्बल-शिला आसन पर बैठे। दोनों देव-लोकों के देवताओं सहित देवेन्द्र शक्र-राजा ने आकर प्रणाम किया और एक ओर बैठ गया। उसकी ढाई करोड़ सेविकाएँ और कबूतरी की तरह लाल पाँव वाली पाँच सौ अप्सराएँ भी आकर, प्रणाम कर एक ओर बैठीं। शास्ता ने नन्द को ऐसा किया कि वह उन पाँच सौ अप्सराओं पर आसक्त हो उन्हें बार बार देखने लगा।

"नन्द ! कबूतरी जैसे पाँव वाली इन अप्सराओं को देखता है ?"

"भन्ते ! हाँ।"

क्या यह अच्छी लगती है, अथवा जनपद कल्याणि ?"

"भन्ते ! जनपदकल्याणि की तुलना में जैसे वह लुंजी बन्दरी थी, उसी तरह इनकी तुलना में जनपदकल्याणि है।"

"नन्द ! अब क्या करेगा ?"

"भन्ते ! क्या करने से यह अप्सराएँ मिल सकेंगी ?"

---

१. **त्रयस्त्रिंशत् देवताओं का भवन।**

"श्रमण-धर्म पूरा करने से।"

"यदि भन्ते ! आप मुझे इन्हें दिलाने के जिम्मेवार हों तो मैं श्रमणधर्म पूरा करूँगा।"

"नन्द ! कर। मैं जिम्मेवार होता हूँ।"

इस प्रकार देवसमूह के बीच में स्थविर ने तथागत को जिम्मेवार ठहरा कर कहा—"भन्ते ! देर न करें। आएँ चलें। मैं श्रमण-धर्म करूँगा।"

शास्ता उसे ले जेतवन चले आये। स्थविर ने श्रमण-धर्म करना आरम्भ किया।

शास्ता ने धर्मसेनापति सारिपुत्र को सम्बोधन कर कहा—"सारिपुत्र ! मेरे छोटे भाई नन्द ने त्रयस्त्रिंशत् देवलोक में देवसमूह के बीच अप्सराएँ दिलाने के लिए मुझे जिम्मेवार ठहराया है। इस उपाय से **महामौद्गल्यायन** स्थविर, **महाकाश्यप** स्थविर, **अनुरुद्ध** स्थविर, धर्मभण्डारी **आनन्द** स्थविर, अस्सी महा-श्रावकों तथा प्रायः करके शेष सभी भिक्षुओं को कहा। धर्मसेनापति सारिपुत्र स्थविर ने नन्द स्थविर के पास जाकर कहा—आयुष्मान् ! क्या तूने सचमुच त्रयस्त्रिंशत् लोक में देवसमूह के बीच अप्सराएँ मिलें तो श्रमण-धर्म करूँगा, इसके लिए दसबलधारी (बुद्ध) को जामिन ठहराया है? यदि ऐसा है तो तेरा ब्रह्मचर्य-जीवन स्त्रियों के लिए है, आसक्ति के लिए है। यदि तू स्त्रियों के लिए श्रमण-धर्म कर रहा है तो तुझ में और उस मजदूर में क्या अन्तर है जो मजदूरी के लिए काम करता है ?" इस प्रकार नन्द स्थविर को लज्जित किया, निस्तेज किया। इसी तरह सभी अस्सी महाश्रावकों ने तथा शेष भिक्षुओं ने उस आयुष्मान् को लज्जित किया।

उसे लज्जा आयी और निन्दा-भय के कारण उसने दृढ़ पराक्रम कर विपश्यना-भावना बढ़ा अर्हत्व प्राप्त किया। फिर शास्ता के पास जाकर कहा—"भन्ते ! मैं आपको आपकी जिम्मेवारी से मुक्त करता हूँ।" शास्ता ने कहा—"नन्द ! जिस समय तूने अर्हत्व प्राप्त किया, उसी क्षण मैं अपनी जिम्मेवारी से मुक्त हो गया।"

यह समाचार सुन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलायी—"यह आयुष्मान् नन्द स्थविर उपदेश के कितने अधिकारी हैं एक बार उपदेश देने से

लज्जा तथा निन्दा-भय का ख्याल कर श्रमण-धर्म करके अर्हत्व प्राप्त कर लिया ।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत ।"

"भिक्षुओ, न केवल अभी, पूर्व में भी नन्द उपदेश का अधिकारी ही रहा है ।"

फिर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हाथी शिक्षक के कुल में पदा हुए । बड़े होने पर हाथी-शिक्षक के कार्य में निष्णात हो वाराणसी राजा के एक शत्रु-राजा की सेवा में रहने लगा । उन्होंने उसके मङ्गल हाथी को अच्छी तरह सिखाया । राजा ने वाराणसी राज्य को जीतने की इच्छा से बोधिसत्व को साथ ले मङ्गल-हाथी पर चढ़, बड़ी भारी सेना के साथ चढ़ाई की । उसने वाराणसी-नरेश के पास सन्देश भेजा—युद्ध करें या राज्य दें ।

ब्रह्मदत्त ने युद्ध करने का निर्णय किया । उसने चारदीवारी के दरवाजों पर अटालिकाओं में, नगर-द्वारों पर सेना को बिठा युद्ध करना शुरू किया ।

शत्रु-राजा ने मङ्गल हाथी को कवच बाँध, स्वयं भी कवच पहन, हाथी के कन्धे पर बठ तेज अंकुश ले हाथी को नगर की ओर बढ़ाया; ताकि नगर (की चारदीवारी) को तोड़ शत्रु को मार राज्य को हस्तगत कर सके । हाथी ने जब देखा कि उधर से गर्म-गारा आदि फेंका जा रहा है तथा गुलेल और नाना प्रकार के दूसरे प्रहार किये जा रहे हैं तो वह मरने से भयभीत हो पास न जा सकने के कारण लौट पड़ा ।

हाथी-शिक्षक ने उसके पास जाकर कहा—"तात ! तू शूर है । संग्राम-जित है । इस तरह के मौके पर पीछे लौटना तेरे लिए अयोग्य है ।" इतना कह हाथी को उपदेश देते हुए यह दो गाथाएँ कहीं—

संगामावचरो सूरो बलवा इति विस्सुतो
किन्नु तोरणमासज्ज पटिक्कमसि कुञ्जर !

ओमद्द खिप्पं पळिघं एसिकानि च अब्बह
तोरणानि पमद्दित्वा खिप्पं पविस कुञ्जर !

[कुञ्जर ! यह प्रसिद्ध है कि तू संग्राम-जित है, सूर है, बलवान् है। तोरण के पास पहुँच कर तू क्यों पीछे लौटता है ? बाधा को जल्दी तोड़ डाल। स्तम्भों को उखाड़ फेंक। कुञ्जर ! दरवाजों का मर्दन करके तू जल्दी नगर में प्रविष्ट हो।]

इति विस्सुतो तात ! तू ऐसे संग्राम को जिसमें प्रहार मिलते हो मर्दन करके विचरने वाला होने से **संगामावचरो**, दृढ़-हृदय वाला होने से **सूरो**। बल-सम्पन्न होने से **बलवा**, यह प्रसिद्ध है, ज्ञात है, प्रकट है। **तोरणमासज्ज**, नगर-द्वार पर पहुँच **पटिक्कमसि** किस कारण से पीछे हटता है ? किस कारण से रुकता है ? **ओमद्द**, मर्दन कर, नीचे गिरा दे। **एसिकानि च अब्बह**, नगर-द्वार पर सोलह हाथ या आठ हाथ भूमि के अन्दर प्रवेश करके स्थिर रूप से गाड़े हुए स्तम्भ एसिका-स्तम्भ कहलाते हैं। उन्हें जल्दी उखाड़ फेंकने की आज्ञा देता है। **तोरणानि पमद्दित्वा** नगर-द्वार के पीछे के चौखट मर्दित कर। **खिप्पं पविस**, जल्दी से नगर में प्रवेश कर। **कुञ्जर**, नाग को सम्बोधित करता है।

उसे सुन बोधिसत्व ने एक ही उपदेश से रुक, स्तम्भों को सूण्ड से लपेट, 'साँप की छतरियों, की तरह उखाड़, तोरण का मर्दन कर बाधा को उखाड़ फेंका। फिर नगर-द्वार को तोड़, नगर में प्रवेश कर राजा को राज्य ले दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय हाथी नन्द था। राजा आनन्द था। हाथी-शिक्षक तो मैं ही था।

१८३. वाळोदक जातक

"वाळोदकं अप्परसं निहीनं....'' वह शास्ता ने जेतवन में रहते समय पाँच सौ जूठन खाने वालों के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में पाँच सौ श्रावक घर-गृहस्थी का भार अपने स्त्री-बच्चों को सौंप, शास्ता धर्मोपदेश सुनते हुए एक साथ रहते थे। उनमें कोई स्रोतापन्न थे, कोई सकृदागामी तथा कोई अनागामी; पृथकजन कोई भी नहीं था। शास्ता को निमन्त्रित करते तो भी वह मिलकर ही निमन्त्रित करते।

उसको दातुन, मुख धोने का जल, सुगन्धि तथा माला आदि देने वाले उनके पाँच सौ छोटे सेवक जूठन खाकर रहते। वह प्रातःकाल का भोजन खा, सो जाते और उठ कर **अचिरवती** नदी के किनारे जा कुश्ती लड़ते। लेकिन वह पाँच सौ उपासक हल्ला न मचाते हुए ध्यान-रत रहते थे।

शास्ता ने उन जूठन खाने वालों का शोर सुनकर पूछा--

"आनन्द ! यह शोर कैसा है ?"

"भन्ते ! यह जूठन खाने वालों का शब्द है।"

"आनन्द ! यह जूठन खाने वाले केवल अभी जूठन खाकर शोर नहीं मचाते, पहले भी शोर मचाते रहे हैं; और यह उपासक भी न केवल अभी शान्त हैं पहले भी शान्त रहे हैं।"

स्थविर के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व अमात्य कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर राजा के अर्थधर्मानुशासक का पद मिला।

एक बार वह राजा यह सुन कि उसके इलाके में उपद्रव हो गया है, पाँच

सौ सैन्धव घोड़े तैयार करा, चतुरङ्गिनी सेना के साथ जा, इलाके को शान्त कर वाराणसी लौट आया। उसने आज्ञा दी कि घोड़े थके हैं, इसलिए उन्हें कोई नरम चीज अंगूर का पेय ही पिलाया जाय।

सैन्धव घोड़े सुगन्धित पेय पीकर अश्व-शाला में आ अपनी-अपनी जगह खड़े हो गये। उनको जो रस दिया गया था, उसमें बचा हुआ बहुत कसैला हो गया। आदमियों ने राजा से पूछा—"इसका क्या करें?" राजा ने आज्ञा दी—"इसमें पानी मिला, मोटे कपड़े से छान, जो गधे घोड़ों का चारा ढो कर ले गये थे, उन्हें पिला दो।" पिला दिया गया।

गधे उस कसैले पानी को पी मस्त होकर रेंकते हुए राजाङ्गण में घूमने लगे। राजा ने बड़ी खिड़की खोल राजाङ्गण को देखते हुए पास खड़े बोधिसत्व को सम्बोधित करके कहा—"मित्र! यह गधे कसैला पानी पाकर मस्त हो रेंकते हुए उछलते फिरते हैं। सिन्धु-कुल में पैदा हुए सैन्धव घोड़े सुगन्धित पेय पीकर निःशब्द बैठे उछलते कूदते नहीं हैं। इसका कारण है?"

यह पूछते हुए राजा ने पहली गाथा कही—

वाळोदकं अप्परसं निहीनं
पीत्वा मदो जायति गद्रभानं
इमं च पीत्वान रसं पणीतं
मदो न सञ्जायति सिन्धवानं

[गधों को थोड़े से रस वाला, तुच्छ, बोरे से छना हुआ पानी पीकर भी मद हो जाता है। सैन्धव घोड़ों को यह श्रेष्ठरस पीकर भी मद नहीं होता।]

वाळोदकं बोरे से छाना हुआ पानी, **वाळूदकं** भी पाठ है। **निहीनं** हीन रस से युक्त, न **सञ्जायति**, सैन्धव घोड़ों को मद नहीं होता है, क्या कारण है?

इसका कारण कहते हुए बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

अप्पं पिवित्वान विहीनजच्चो
सो मज्जति तेन जनिन्द फुट्ठो

धोरय्हसीली च कुलम्हि जातो
न मज्जति अग्गरसं पिवित्वा

[राजन् ! हीन कुल में पैदा हुआ, थोड़ी भी पी लेने से उसके स्पर्श से (ही) मस्त हो जाता है। स्थिर शील वाला तथा श्रेष्ठ कुल में पैदा हुआ, श्रेष्ठ रस पीकर भी मस्त नहीं होता।]

तेन जनिन्द फुट्ठो, जनेन्द्र ! श्रेष्ठ राजन् ! वह हीन कुल में पैदा हुआ, अपने कुल की हीनता के कारण **मज्जति**, प्रमाद को प्राप्त होता है, **धोरय्ह-सीली**, स्थिर रूप से वहन करने की योग्यता वाला सैन्धव जाति का घोड़ा **अग्गरसं** सबसे पहले लिया हुआ अंगूर रस, **पिवित्वा न मज्जति**।

राजा ने बोधिसत्व की बात सुन गधों की राजाङ्गण से निकलवाया। उसी के उपदेशानुसार चल दानादि पुण्यकर्म करते हुए कर्मानुसार परलोक सिधारे।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय पाँच सौ गधे यह जूठन खाने वाले थे। पाँच सौ सैन्धव घोड़े वह उपासक। राजा आनन्द। अमात्य-पण्डित तो मैं ही था।

⊙

१८४. गिरिदत्त जातक

"दूसितो गिरिदत्तेन..." यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय विरोधी पक्ष का साथ देने वाले एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

पहले महिलामुख जातक[1] में जो कथा आयी है, इसकी कथा भी उसी प्रकार है। शास्ता ने कहा, भिक्षुओं, यह केवल अभी विरोधी पक्ष का साथ देने वाला नहीं है, पहले भी यह विपक्ष-सेवी ही रहा है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में सामराजा नाम के राजा का राज्य था। उस समय बोधिसत्व अमात्यकुल में पैदा हो बड़े होने पर उसके **अर्थ-धर्मानुशासक**[2] हुए।

राजा का पण्डव नाम का मङ्गल घोड़ा था। उसके शिक्षक का नाम था गिरिदत्त। वह लँगड़ा था। रस्सी पकड़ कर आगे-आगे (लँगड़ाते हुए) जाने से घोड़े ने सोचा कि यह मुझे सिखाना चाहता है। उसके अनुसार चलने से वह लँगड़ा हो गया। उसके लँगड़ेपन की बात राजा तक पहुँचायी गयी। राजा ने वैद्यों को भेजा। उन्होंने जब देखा कि घोड़े को कोई बीमारी नहीं है, तो उन्होंने राजा से कहा कि घोड़े के शरीर में कोई रोग तो नहीं दिखायी देता।

राजा ने बोधिसत्व को भेजा "मित्र ! जा, क्या कारण है, पता लगा।"

---

१. महिलामुख जातक (१.३.६)।
२. लौकिक तथा नैतिक दोनों विषयों में सलाहकार।

उसने जाकर शिक्षक के लँगड़े होने के कारण ही यह लँगड़ा हुआ है जान, राजा को सूचना दी; और यह दिखाने के लिए कि खराब संगत से ऐसा हो जाता है, यह गाथा कही--

दूसितो गिरिदत्तेन हयो सामस्स पण्डवो
पोराणं पकर्ति हित्वा तस्सेव अनुविधीयति ॥

[राजा साम के पण्डव घोड़े को गिरिदत्त ने खराब कर दिया। वह अपने पहले स्वभाव को छोड़ कर उसी का अनुकरण करता है।]

हयो सामस्स सामराजा का मङ्गल घोड़ा, **पोराणं पकर्ति हित्वा** अपनी पुरानी प्रकृति, शृङ्गार, छोड़ कर, **अनुविधीयति** अनुसार सीखता है।]

तब राजा ने पूछा--"मित्र ! अब क्या करना चाहिए ?" बोधिसत्व ने उत्तर दिया—अच्छा शिक्षक मिलने से फिर पहले की तरह हो जाएगा। और यह दूसरी गाथा कही--

सचेव तनुजो पोसो सिखराकारकप्पितो,
आनने तं गहेत्वान मण्डले परिवत्तये,
खिप्पमेव पहत्वान तस्सेव अनुविधीयति ॥

[यदि सुन्दर आकार-प्रकार वाला, उस घोड़े के अनुरूप शिक्षक उसे मुँह से पकड़ कर घुमायेगा, तो वह जल्दी ही यह (लँगड़ापन) छोड़ कर उसका अनुकरण करेगा।]

तनुजो, उसका अनुज: अनुकूल उत्पन्न हुआ होने से **अनुज**। मतलब यह है--महाराज ! यदि उस शृंगार-युक्त आचारवान् घोड़े के अनुरूप आकार-प्रकार वाला **पोसो**। **सिखराकारकप्पितो** शिखर अर्थात् सुन्दर तरह से जिसकी बाल दाढ़ी कढ़ी है। तं घोड़े को **आनने गहेत्वा** घोड़े के घुमाने की जगह पर घुमाए। तो यह शीघ्र ही लँगड़ेपन को छोड़, यह शृङ्गारयुक्त आचारवान्

अश्व-शिक्षक मुझे सिखा रहा है, समझ उसका अनुकरण करेगा, उसके अनुसार सीखेगा, स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त होगा।

राजा ने वैसा करवाया। घोड़ा स्वाभाविक अवस्था में प्रतिष्ठित हुआ। यह सोच कि बोधिसत्व पशुओं तक के आशय को समझते हैं, उन्हें बहुत धन दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय गिरिदत्त देवदत्त था। घोड़ा विरोधी पक्ष का साथ देने वाला भिक्षु। राजा आनन्द। अमात्य पण्डित तो मैं ही था।

⊙

185

१८५. अनभिरति जातक

"**यथोदके आविले अप्पसन्ने....**" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ब्राह्मण के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में तीनों वेदों का जानकर एक ब्राह्मण-कुमार बहुत से क्षत्रिय तथा ब्राह्मणकुमारों को वेद पढ़ाता था। आगे चलकर उसने घर बसाया। वस्त्र, अलंकार, दास, दासी, खेत, वस्तु, गौ, भैंस, पुत्र तथा स्त्री आदि की चिन्ता करने से राग, द्वेष और मोह के वशीभूत हो वह अस्थिर-चित्त हो गया। मन्त्रों को क्रम से न पढ़ा सकता था। जहाँ तहाँ मन्त्र समझ में न आते थे।

एक दिन वह बहुत-सी सुगन्धियाँ तथा माला आदि लेकर जेतवन गया। वहाँ शास्ता की पूजा कर एक ओर बैठा। शास्ता ने कुशलक्षेम पूछने के बाद कहा—"माणवक! क्या मन्त्र पढ़ाते हो? मन्त्रों का अभ्यास बना है?"

"भन्ते! पहले मुझे मन्त्र अभ्यस्त थे। लेकिन जब से घर बसाया, तब से मेरा चित्त अस्थिर हो गया। इसमें मन्त्रों का अभ्यास नहीं रहा।"

शास्ता ने उसे कहा—"माणवक! न केवल अभी, पहले भी जब तेरा चित्त स्थिर था, तभी तुझे मन्त्रों का अभ्यास था। रागादि से अस्थिर होने के समय तुझे मन्त्र समझ में नहीं आये।"

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते हुए बोधिसत्व ब्राह्मणों के एक प्रधान कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में मन्त्र सीख प्रसिद्ध आचार्य हो वाराणसी में बहुत से क्षत्रिय, ब्राह्मण कुमारों को वेद पढ़ाने लगा।

उसके पास एक ब्राह्मण माणवक ने तीनों वेदों का अभ्यास किया।

प्रत्येक पद तक में असंदिग्ध हो, उपाचार्य बन मन्त्र सिखाने लगा। वह आगे चलकर गृहस्थ हो गृहस्थी की चिन्ता से अस्थिर-चित्त होने के कारण मन्त्रों का पाठ नहीं कर सकता था। आचार्य के पास जाने पर आचार्य ने पूछा—"माणवक ! क्यों तुझे मन्त्र अभ्यस्त हैं ?"

"गृहस्थ होने के समय से मेरा चित्त अस्थिर हो गया। मैं मन्त्रों का पाठ नहीं कर सकता।"

ऐसा कहने पर आचार्य ने "तात ! अस्थिर चित्त होने से अभ्यास मन्त्रों का भी प्रतिभान नहीं होता; स्थिर चित्त रहने पर विस्मृति होती ही नहीं" कह यह गाथाएँ कहीं—

यथोदके आविले अप्पसन्ने
न पस्सति सिप्पिकसम्बुकञ्च
सक्खरं वालुकं मच्छगुम्बं
एवं आविले हि चित्ते
न पस्सति अत्तदत्थं परत्थं ॥
यथोदके अच्छे विप्पसन्ने
सो पस्सति सिप्पिकसम्बुकस्सञ्च
सक्खरं वालुकं मच्छगुम्बं
एवं अनाविले हि चित्ते।
सो पस्सति अत्तदत्थं परत्थं ॥

[जिस प्रकार गँदले, मैले पानी में सीपी, शंख, कंकर, बालू तथा मछलियों का समूह नहीं दिखायी देता; उसी प्रकार अस्थिर चित्त होने पर आत्मार्थ तथा परार्थ नहीं सूझता।

जिस प्रकार निर्मल, साफ पानी में सीपी, शंख, कंकर, बालू तथा मछलियों का समूह दिखायी देता है, उसी प्रकार स्थिर चित्त होने पर आत्मार्थ तथा परार्थ सूझता है।]

आविले कीचड़ से गँदले हुए, अप्पसन्ने उसी गँदलेपन के कारण मैले। सिप्पिकसम्बुक, सीपी और शंख। मच्छगुम्बं मछलियों का समूह। एवं आविले,

इसी प्रकार रागादि से अस्थिरचित्त **अत्तदत्थं, परत्थं** न आत्मार्थ न परार्थ देखता है—यही अर्थ है । **सो पस्सति**, इसी प्रकार स्थिरचित्त होने पर वह आदमी आत्मार्थ तथा परार्थ देखता है ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, आर्य (-सत्यों) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया ।

आर्य (-सत्यों) का प्रकाशन समाप्त होने पर ब्राह्मण कुमार स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ ।

उस समय माणवक यही माणवक था । आचार्य तो मैं ही था ।

⊙

१८६. दधिवाहन जातक

"**वण्णगन्धरसूपेतो**..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय विरोधी पक्ष का साथ देने वाले के बारे में कही।

क वर्तमान कथा

जो कथा पहले आ चुकी है,[1] वैसी ही कथा है। शास्ता ने कहा--भिक्षुओं ! बुरे की संगत बुरी होती है, अनर्थकारी होती है। मनुष्यों के लिए कुसंगति के दुष्परिणाम का क्या कहना ? पूर्व समय में अस्वादिष्ट, अमधुर नीम के वृक्ष की संगति के कारण मधुर-रस वाला, दिव्य रस वाला, जड़, आम का वृक्ष भी अमधुर, कड़ुआ हो गया।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय काशी राष्ट्र में चार ब्राह्मण भाई ऋषियों के प्रव्रज्या क्रम से प्रव्रजित हो, हिमवन्त प्रदेश में क्रम से पर्णशालाएँ बना रहने लगे। उनमें से जो ज्येष्ठ था वह मर कर शक्र देवता हुआ।

इस बात को जान वह बीच-बीच में सातवें आठवें दिन अपने उन भाइयों की सेवा में आता। एक दिन उसने ज्येष्ठ तपस्वी को प्रणाम कर एक ओर बैठ पूछा--"भन्ते ! आपको किस चीज की जरूरत है ?"

"पाण्डु-रोग से पीड़ित तपस्वी ने कहा--"मुझे आग की जरूरत है।" उसने उसे छुरी-कुल्हाड़ी दी। यह छुरी-कुल्हाड़ी दस्ते के हिसाब से जैसे दस्ता डाला जाता छुरी भी बन जाती, कुल्हाड़ी भी बन जाती। तपस्वी ने पूछा--"इसे लेकर कौन मेरे लिए लकड़ियाँ लाएगा ?"

---

१. देखो गिरिदत्त जातक (१८४)।

शक्र ने कहा--"भन्ते ! जब आपको लकड़ी की जरूरत हो इस कुल्हाड़ी को हाथ से रगड़ कर कहें; जाओ मेरे लिए लकड़ियाँ ला कर आग बना दो। यह लकड़ियाँ ला कर आग बना देगी।"

उसे छुरी-कुल्हाड़ी दे दूसरे से भी जाकर पूछा--"भन्ते ! तुम्हें क्या चाहिए ?" उसकी पर्णशाला के पास से हाथियों के आने जाने का रास्ता था। उसे हाथियों का उपद्रव था। इसलिए उसने कहा--"मुझे हाथियों के कारण दुःख होता है। उन्हें भगा दें।

शक्र ने उसे एक ढोल लाकर दिया और कहा कि इस ओर बजाने से तुम्हारे शत्रु भाग जाएँगे; और इस ओर बजाने से मैत्री भावयुक्त हो चारों प्रकार की सेना सहित तुम्हारे पास आ जाएँगे। इतना कह और वह ढोल दे छोटे भाई के पास जा पूछा--"भन्ते ! तुम्हें क्या चाहिए ?"

उसकी भी पाण्डुरोग की प्रकृति थी। इसलिए उसने कहा कि मुझे दही चाहिए। शक्र ने उसे एक दही का घड़ा दिया और कहा--"यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इसे उलटना। उलटने पर यह महानदी बहाकर, बाढ़ लाकर तुम्हें राज्य भी लेकर दे सकेगा।" इतना कह कर इन्द्र चला गया।

उस समय से छुरी-कुल्हाड़ी ज्येष्ठ भाई के लिए आग बना देती। दूसरा जब ढोल बजाता तो हाथी भाग जाते। छोटा दही खाता।

उस समय किसी उजड़े हुए गाँव की जगह पर घूमते हुए एक सूअर ने एक दिव्य मणि-खण्ड देखा। उसने उस मणि-खण्ड को मुँह से उठा लिया। उसके प्रताप से वह आकाश में ऊँचे उड़ा। वहाँ से उसने समुद्र के बीच में एक द्वीप पर पहुँच सोचा--मुझे यहाँ रहना चाहिए। इसलिए वहाँ उतर एक गूलर के वृक्ष के नीचे सुख पूर्वक रहने लगा। एक दिन वह उस वृक्ष के नीचे उस मणि-खण्ड को अपने सामने रख सो गया।

काशी राष्ट्र का एक आदमी, जिसे उसके माता-पिता ने निकम्मा समझ घर से निकाल दिया था, एक पत्तन गाँव पर पहुँचा। वहाँ उसने नाविकों के पास नौकरी की। नौका पर चढ़कर जा रहा था कि समुद्र के बीच में नौका टूट गयी। वह एक लकड़ी के तख्ते पर बैठा उस द्वीप में पहुँचा। वहाँ फलमूल खोजते हुए उसने उस सूअर को सोते हुए देख आहिस्ता से समीप जा मणि-खण्ड उठा लिया।

उसके प्रताप से आकाश में उड़ गूलर के वृक्ष पर बैठ सोचने लगा——यह सूअर इसी के प्रताप से आकाश में घूमता हुआ यहाँ रहता है। मुझे पहले ही इसे मार कर मांस खाकर पीछे जाना चाहिए।

उसने एक डण्डा तोड़ कर उसके सिर पर गिराया। सूअर ने जागकर जब मणि को न देखा तो वह काँपता हुआ इधर-उधर दौड़ने लगा। वृक्ष पर बैठा हुआ आदमी हँसा। सूअर ने उसे देखा तो वृक्ष से सिर दे मारा; और वहीं मर गया।

उस आदमी ने उतर कर आग बनायी और उसका मांस पका कर खाया। फिर आकाश में उड़कर हिमालय के ऊपर से जाते हुए उस आश्रम को देख ज्येष्ठ तपस्वी के आश्रम पर उतरा। दो तीन दिन रह कर तपस्वी की सेवा की। वहाँ उसने छुरी-कुल्हाड़ी की महिमा देखी। 'इसे मुझे लेना चाहिए' सोच उसने तपस्वी को मणि-खण्ड की महिमा बता कर कहा——भन्ते ! यह मणि-खण्ड लेकर मुझे यह छुरी-कुल्हाड़ी दें। आकाश में घूमने की इच्छा से उस तपस्वी ने मणि-खण्ड लेकर वह छुरी-कुल्हारी दे दी।

उसने थोड़ी दूर जा छुरी-कुल्हाड़ी को हाथ से रगड़ कर कहा——छुरी-कुल्हाड़ी ! तपस्वी के सिर को काटकर मेरा मणि-खण्ड ले आ।" वह जाकर तपस्वी का सिर काट मणि-खण्ड ले आयी।

उस आदमी ने छुरी-कुहाल्ड़ी को एक जगह छिपा कर मँझले तपस्वी के पास जा, कुछ दिन रह, ढोल की महिमा देख मणि-खण्ड दे, भेरी ली। फिर पूर्वोक्त प्रकार से उसका भी सिर कटवा छोटे तपस्वी के पास जा, दही के घड़े की महिमा देख पूर्वोक्त प्रकार से ही उसका भी सिर कटवा, मणि-खण्ड, छुरी-कुल्हाड़ी, ढोल तथा दही का घड़ा ले, आकाश में उड़ कर वाराणसी के पास पहुँचा। वहाँ से उसने वाराणसीके राजा के पास एक आदमी के हाथ पत्र भेजा—युद्ध करें अथवा राज्य दें।

राजा सन्देश सुनते ही विद्रोही को पकड़ने के लिए निकल पड़ा। उसने ढोल के एक तलको बजाया। चारों प्रकार की सेना पहुँच गयी। जब उसने देखा कि राजा ने अपनी सेना पंक्तिबद्ध कर ली, उसने दही के घड़े को छोड़ा। बड़ी भारी नदी बह निकली। जनसमूह दही में डूब गया और निकल न सका। छुरी-कुल्हाड़ी पर हाथ फेर उसे आज्ञा दी कि जाकर राजा का सिर ले आये। छुरी-कुल्हाड़ी ले जाकर राजा का सिर ला पैरों पर रख दिया। एक भी आदमी हथियार न उठा सका।

उसने बड़ी सेना के साथ नगर में प्रवेश कर, अभिषेक करवा, दधिवाहन नाम से धर्मपूर्वक राज्य किया।

एक दिन वह महानदी में जाल की टोकरी फेंक कर खेल रहा था। कण्ण-मुण्ड सरोवर से देवताओं के उपभोग में आने वाला एक पका आम आकर जाल में लगा। जाल उठाने वालों ने उसे देख कर राजा को दिया। वह बड़ा था, घड़े के प्रमाण का था, गोलाकार था, सुनहरे रंग का था। राजा ने बनचरों से पूछा—"यह किसका फल है?" उन्होंने बताया—आम्रफल। राजा ने उसे खाकर उसकी गुठली अपने उद्यान में लगवा, उसे दूध-पानी से सिचवाया। पेड़ लगकर उसने तीसरे वर्ष फल दिया। आम के पेड़ का बहुत सत्कार होने लगा। दूध-पानी से उसे सींचते; सुगन्धित द्रव्यों के पञ्चांगुलि-चिह्न लगाते, और मालाओं के जाल फेंकते। सुगन्धित तेल के दीपक जलाते। यह कीमती कपड़े की कनातों से घिरा रहता। इसके फल मधुर तथा सुनहरे रंग के होते।

जब दधिवाहन राजा दूसरे राजाओं के पास आम के फल भेजता तो इस डर से कि कहीं गुठली से पेड़ न लग जाय वह अंकुर निकलने की जगह को काँटे से बीध देता। वे आम खाकर गुठली को रोपते। पेड़ न लगता। उन्होंने पूछा तो पता लगा कि क्या कारण है?

एक राजा ने अपने माली को बुलाकर पूछा कि क्या वह दधिवाहन राजा के आमों के रस को नष्ट कर उन्हें कड़ुवा बना सकेगा? उसने कहा—देव! हाँ! "तो जा" कह, उसे हजार देकर बिदा किया।

उसने वाराणसी पहुँच राजा के पास खबर भिजवायी कि एक माली आया है। राजा ने उसे बुलवाया। उसने जा राजा को प्रमाण कर "तू माली है?" पूछने पर कहा—"देव! हाँ" और अपनी योग्यता का बखान किया। राजा ने आज्ञा दी—जा हमारे माली के साथ रह।

उस समय से वह दोनों व्यक्ति बाग की सार संभाल रखते। नये माली ने अकाल-फूल फुला कर और अकाल-फल लगाकर उद्यान को रमणीय बना दिया।

राजा ने उस पर प्रसन्न हो पुराने माली को निकाल उसी को उद्यान सौंप दिया। उसने उद्यान को अपने हाथ में जान, आम के वृक्ष के चारों ओर नीम

और कड़वी लताएँ लगा दी। क्रम से नीम के वृक्ष बढ़े। जड़ों से जड़ें तथा शाखाओं से शाखाएँ इकट्ठी हो एक-दूसरे में मिल गयी। उनके अस्वादिष्ट अमधुर रस के संसर्ग से वैसा मधुर फल वाला आम कड़ुवे हो गये, माली भाग गया। दधिवाहन ने उद्यान में जाकर आम का फल खाया; तो मुँह में डाला हुआ आम का रस उसे नीम की तरह कसैला लगा। उसे सहन न कर सकने के कारण, उसने खँखार कर थूक दिया।

उस समय बोधिसत्व उस राजा के अर्थधर्मानुशासक थे। राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर पूछा—

"पण्डित! इस वृक्ष की जो सेवा पहले होती थी, वह अब भी होती है। ऐसा होने पर भी इसका फल कड़ुवा हो गया है। क्या कारण है?" ऐसा कहते हुए राजा ने पहली गाथा कही—

वण्गन्धरसूपेतो अम्बायं अहुवा पुरे,
तमेव पूजं लभमानो केनम्बो कटुकप्फलो॥

[यह आम पहले वर्ण और रस से युक्त था। इसकी वही सेवा होती है, तो भी इसका फल कैसे कड़वा हो गया?]

इसका कारण बताते हुए बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

पुचिमन्दपरिवारो अम्बो ते दधिवाहन।
मूलं मूलेन सखा संसट्ठं साखा निसेवरे
असातसन्निवासेन तेनम्बो कटुकप्फलो॥

[हे दधिवाहन! तेरा आम्र-वृक्ष नीम से घिरा है। उसकी जड़, जड़ से तथा शाखाएँ शाखाओं से सटी हैं। कड़ुवे के साथ होने से आम का फल कड़ुवा हो गया।]

पुचिमन्दपरिवारो, नीम के वृक्ष से घिरा हुआ **साखा साखा निसेवरे** पुचिमन्द की शाखाएँ आम की शाखाओं को घेरे हैं। **असातसन्निवासेन** अमधुर

नीम के साथ रहने से, **तेन** उस कारण से यह **अम्बो कटुकप्फलो**, अस्वादिष्ट फल, कड़ुवे फल वाला हो गया।

राजा ने उसकी बात सुन सभी नीम तथा कड़ुवी लताएँ कटवा कर, जड़ें उखड़वा कर, चारों ओर से अमधुर बालू हटवा कर, उसकी जगह मधुर बालू डलवा कर, दुग्ध-जल से शक्कर-जल से तथा सुगन्धित जल से आम की सेवा करायी।

मधुर रस के संसर्ग से वह फिर मधुर हो गया। राजा ने जो पहला माली था, उसी को उद्यान सौंप दिया। आयु भर जी कर वह कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मैं ही पण्डित अमात्य था।

⊙

१८७. चतुमट्ठ जातक

"उच्चे विटभिमारुय्ह. . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बूढ़े भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन जब दोनों प्रधान शिष्य बैठे एक-दूसरे से प्रश्नोत्तर कर रहे थे, एक बूढ़ा उनके पास गया और उन दोनों में स्वयं तीसरा बन बैठकर बोला—भन्ते ! हम भी आपसे प्रश्न पूछेंगे। आप भी हमसे अपनी शंका निवारण करें।

स्थविर उसके प्रति घृणा प्रकट करते हुए उठकर चले गये। स्थविरों से धर्म सुनने के लिए इकट्ठी हुई परिषद्, सभा के टूटने पर, उठकर शास्ता के पास गयी। बुद्ध ने पूछा—असमय कैसे आये ? उन्होंने वह बात कही। शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी सारिपुत्र मौद्गल्यायन इनके प्रति जिगुप्सा दिखा बिना कुछ कहें चल देते हैं, पहले भी चल दिये थे।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व जंगल में वृक्ष-देवता हुए। दो हंस-बच्चे चित्रकूट पर्वत से निकल, उस वृक्ष पर बैठ चुगने जाते। फिर लौटते हुए भी वहीं विश्राम लेकर, चित्रकूट पर्वत पर जाते। समय बीतते-बीतते उनकी बोधिसत्व के साथ मैत्री हो गयी। आते जाते एक-दूसरे के कुशलक्षेम पूछ धार्मिक-कथा कह जाते।

एक दिन उनके वृक्ष के सिरे पर बैठ बोधिसत्व के साथ बातचीत करते हुए एक गीदड़ ने उस वृक्ष के नीचे खड़े हो उन हंस-बच्चों के साथ मन्त्रणा करते हुए पहली गाथा कही—

उच्चे विटभिमारुय्ह मन्तयव्हो रहोगता ।
नीचे ओरुय्य मन्तव्हो मिगराजापि सोस्सति ॥

[ऊँचे वृक्ष पर चढ़ कर एकान्त में मन्त्रणा करते हो । नीचे उतर कर बात-चीत करो, जिससे मृगराज भी सुने ।]

उच्चे विटभिमारुय्ह, स्वभाव से ही ऊँचे वृक्ष की एक ऊँची टहनी पर चढ़कर । **मन्तयव्हो** मंत्रणा करते हो, बातचीत करते हो । **नीचे ओरुय्ह** उतर कर नीचे स्थान पर खड़े होकर मन्त्रणा करो । **मिगराजापि सोस्सति** अपने को मृगराज करके कहता है ।

हंस-बच्चे घृणा कर उठकर चित्रकूट ही चले गये । उनके चले जाने पर बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही——

यं सुपण्णो सुपण्णेन देवो देवेन मन्तये ।
किं तेत्थ चतुमट्ठस्स बिल पविस जम्बुक ॥

[पक्षी पक्षी के साथ, देवता देवता के साथ मन्त्रणा करे तो हैं चारों दोषों से युक्त गीदड़ तुझे क्या ? तू बिल में जा ।]

सुपण्णक्षो सुन्दर पङ्ख, **सुपण्णेन** दूसरे हंस-बच्चे के साथ । **देवो देवेन** उन दोनों को ही देवता करके कहता है । **चतुमट्ठस्स** शरीर से; जाति से, स्वर से तथा गुण से——इन चारों से मृष्ट वा शुद्ध यही शब्दार्थ है; किन्तु भावार्थ है अशुद्ध । लेकिन उसे प्रशंसा के बहाने निन्दा करते हुए यह कहा——चारों बुराइयों वाले तुम गीदड़ को यहाँ क्या ? यही मतलब है । **विलं पविस** बोधिसत्व ने डर दिखा उसे भागते हुए यह कहा ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । बूढ़ा उस समय का शृगाल था । दो हंस-बच्चे सारिपुत्र-मौद्गल्यायन थे । वृक्षदेवता तो मैं ही था ।

१८८. सीहकोत्थुक जातक

"सीहङ्गुली सीहनखो . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोकालिक (भिक्षु) के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन दूसरे बहुश्रुत भिक्षुओं के धर्म बाँचते समय कोकालिक की भी धर्म बाँचने की इच्छा हुई--इस प्रकार सारी कथा उक्त प्रकार से ही विस्तार पूर्वक कहनी चाहिए। उस समाचार को जान शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिक अपनी वाणी के कारण प्रकट हो गया, वह पहले भी जाहिर हो गया था।" इतना कह शास्ता ने अतीत की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में पैदा हुए। वहाँ उन्हें एक श्रृगाली के साथ सहवास करने के फलस्वरूप एक पुत्र हुआ। उसकी अँगुलियाँ, उसके नख, उसके केसर, उसका रंग, उसका आकार-प्रकार पिता की तरह था। स्वर माता की तरह था।

एक दिन वर्षा हो चुकने पर सिंहों के दहाड़-दहाड़ कर सिंह-क्रीड़ा करते समय, उसने भी उनके बीच में दहाड़ने की इच्छा से श्रृगाल की तरह आवाज की। उसकी बोली सुनकर सब सिंह चुप हो गये। सिंह का अपना एक स्वजातीय पुत्र था। उसने उसकी आवाज सुनकर पूछा—"तात! यह सिंह वर्ण आदि से तो हमारे ही जैसा है, लेकिन इसका स्वर दूसरी तरह का है। यह कौन है ?" ऐसा प्रश्न करते हुए उसने यह गाथा कही--

सीहङ्गुलीं सीहनखो सीहपादपतिट्ठितो
सो सीहो सीहसङ्घम्हि एको नदति अञ्ञथा ॥

[सिंह की-सी अँगुलियाँ, सिंह के से नाखून और सिंह के से पैरों वाला वह सिंह सिंहों की जमात में दूसरी तरह की आवाज करता है।]

सीहपादपतिट्ठितो, सिंह के पैरों ही पर प्रतिष्ठित। **एको नदति अञ्ञथा** अकेला दूसरे सिंहों से भिन्न शृगाल-स्वर से बोलता हुआ अन्यथा बोलता है।

इसे सुन बोधिसत्व ने कहा--"तात ! यह तेरा भाई शृगाली का लड़का है। इसका रूप मेरे जैसा है, आवाज माता जैसी।" फिर शृगाल-पुत्र को बुला कर कहा--"तात ! अब से तू जब तक यहाँ रहे अधिक मत बोलना। यदि फिर ऊँचे बोलेगा, तो तेरा शृगाल होना जान लेंगे।" इस प्रकार उपदेश देते हुए दूसरी गाथा कही--

मा त्वं नदि राजपुत्त ! अप्पसद्दो वने वस,
सरेन खो तं जानेय्युं न हि ते पेत्तिको सरो ॥

[राजपुत्र ! तू ऊँचे स्वर से मत बोल। धीरे बोलता हुआ बन में रह। तेरे स्वर से जान लेंगे, (कि तू गीदड़ है) क्योंकि तेरा स्वर पिता का स्वर नहीं।]

राजपुत्त, मृगराज सिंह का पुत्र। इस उपदेश को सुनकर उसने फिर जोर से बोलने की हिम्मत नहीं की।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शृगाल कोकालिक था। स्वजातीय पुत्र राहुल। मृगराज तो मैं ही था।

१८९. सीसचम्म जातक

"नेतं सीहस्स नदितं. ." यह भी शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोकालिक (भिक्षु) के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह (भिक्षु) उस समय स्वर से सूत्र पाठ करना चाहता था। शास्ता ने वह समाचार सुन पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कृषक कुल में पैदा हो बड़े होने पर खेती करके जीविका चलाते थे।

उस समय एक बनिया गधे पर बोझा लाद कर व्यापार करता हुआ घूमता था। वह जहाँ-जहाँ जाता वहाँ-वहाँ गधे की पीठ पर से समान उतार; गधे को सिंह की खाल पहना, धान तथा जौ के खेत में छोड़ देता। खेत की रखवाली करने वाले उसे देख, शेर समझ, पास न जा सकते थे।

एक दिन उस बनिये ने एक ग्राम-द्वार पर ठहर प्रातःकाल का भोजन पकाते समय गधे को सिंह की खाल पहना जौ के खेत में छोड़ दिया। खेत की रखवाली करने वालों ने उसे शेर समझ पास न जा सकने के कारण घर जाकर खबर दी। सारे ग्रामवासी आयुध ले, शंख फूंकते तथा ढोल बजाते हुए खेत के समीप पहुँच चिल्लाने लगे। गधे ने मृत्युभय से डर गधे की तरह आवाज की, वह गधा है जान बोधिसत्त्व ने पहली गाथा कही—

नेतं सीहस्स नदितं न व्यग्घस्स न दीपिनो,
पारुतो सीहचम्मेन जम्मो नदति गद्रभो ॥

[न यह शेर की आवाज है, न व्याघ्र की, न चीते की, शेर की खाल पहनकर दुष्ट गधा चिल्लाता है।]

जम्मो, नीच।

ग्रामवासियों ने भी यह जान कि वह गधा है, उसकी हड्डियाँ तोड़ते हुए उसे पीटा और सिंह की खाल लेकर चले गये। उस बनिये ने आकर जब विपत्ति में पड़े उस गधे को देखा तो दूसरी गाथा कही—

चिरम्पि खो तं खादेय्य गद्रभो हरितं यवं
पारुतो सीहचम्मेन रवमानोव दूसयि॥

[सिंह की खाल पहनकर तू चिरकाल तक हरे जौ खाता रहा। हे गधे तूने बोल कर ही अपने को नष्ट किया।]

तं निपात मात्र है। यह **गद्रभो** अपने गधेपन को छिपा **सीहचम्मेन पारुतो चिरम्पि** देर तक **हरितं यवं खदेय्य** अर्थ हैं। **रवमानोव दूसयि** अपने गधे की आवाज करके ही अपने को विपत्ति में डाला। इसमें सिंह की खाल का दोष नहीं।

उसके ऐसा कहते ही गधा वहीं गिर कर मर गया। बनिया भी उसे छोड़कर चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गधा कोकालिक था। पण्डित काश्यप तो मैं ही था।

⊙

१९०. सीलानिसंस जातक

"**यस्स सद्धाय सीलस्स...**" यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक श्रद्धावान् उपासक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रद्धावान् प्रसन्नचित्त आर्य-श्रावक था। एक दिन जेतवन जाते समय उसने शाम को अचिरवती नदी के किनारे पर जाकर देखा कि नाविक नौकाओं को किनारे पर छोड़ धर्म सुनने के लिए। वह घाट पर नौका न देख, बुद्ध की याद से मन को प्रसन्न कर नदी में उतर पड़ा। पाँव पानी में नहीं भीगे। पृथ्वी तल पर चलते हुए की तरह बीच में पहुँचने पर उसने लहर को देखा। उसकी बुद्ध-भक्ति मन्द पड़ गयी थी; इससे उसके पैर डूबने लगे।

उसने बुद्ध-भक्ति को दृढ़ कर पानी पर ही चल, जेतवन में प्रवेश कर शास्ता को प्रणाम किया। वह एक ओर बैठा। शास्ता ने उसके साथ बात-चीत करते हुए पूछा—"उपासक ! क्या रास्ते में आते हुए अधिक कष्ट तो नहीं हुआ ?" "भन्ते ! बुद्ध की याद से मन को प्रति-युक्त कर पानी के तल पर प्रतिष्ठित हो मैं पृथ्वी को मर्दन करते हुए की तरह आया हूँ।" "उपासक न केवल तूने ही बुद्ध के गुणों का स्मरण कर रक्षा प्राप्त की है, पहले भी समुद्र में नौका के टूटने पर उपासकों ने बुद्ध के गुणों की याद कर रक्षा प्राप्त की।" इतना कह, उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में काश्यप सम्यक् सम्बुद्ध के समय में एक श्रोतापन्न आर्य-श्रावक, एक नाई गृहस्थ के साथ नौका पर चढ़ा। उस नाई की भार्या ने उस नाई को उपासक को सौंपा—आर्य ! इसके सुख-दुःख का भार आप पर है।

सातवें दिन वह नौका समुद्र के बीच में टूट गयी। वे दोनों जन एक तख्ते से

चिमटे, एक द्वीप पर पहुँचे। वह नाई पक्षियों को मारकर, पकाकर खाने के समय उपासक को भी देता। वह उपासक 'मुझे नहीं चाहिए' कह कर न खाता। वह सोचता त्रिरत्न की शरण को छोड़कर हमारे लिए यहाँ कोई दूसरा सहारा नहीं। उसने त्रिरत्न के गुणों का स्मरण किया।

उसके स्मरण करते-करते उस द्वीप के नागराज ने अपने शरीर की महान् नौका बनायी। समुद्र-देवता नौका चलाने वाला बना। नौका सात रत्नों से भरी गयी। तीन मस्तूल थे। इन्द्रनीलमणि की जीतें। सोने के चप्पू। समुद्र-देवता ने नौका में खड़े होकर घोषणा की—क्या कोई जम्बूद्वीप जाने वाला है? उपासक बोला—हम आयेंगे? तो आ नौका पर चढ़। उसने नौका पर चढ़ नाई को आवाज दी। समुद्र देवता ने कहा—तुझे ही जाने मिलेगा। इसे नहीं। क्या कारण है? कारण यही है कि यह शीलवान् नहीं है। मैं नौका तेरे लिए लाया हूँ। इसके लिए नहीं।

"रहो। मैं अपने दिये दान का, रक्षा किये गये शील का, तथा भावना की गयी भावना का इसे हिस्सेदार बनाता हूँ।"

"स्वामी! मैं अनुमोदन करता हूँ।"

"अब ले चलूंगा" कह देवता ने उसे भी चढ़ा, दोनों जनों को समुद्र में से निकाल, नदी से वाराणसी पहुँचा अपने प्रताप से उन दोनों के घर पर धन पहुँचा दिया। फिर, 'पण्डित की ही संगति करनी चाहिए। यदि इस नाई की इस उपासक के साथ संगति नहीं होती, तो यह समुद्र के बीच में ही नष्ट हो जाता' कहते हुए देवता ने पण्डित की संगति की महिमा बखानते हुए यह दो गाथायें कहीं—

पस्स सद्धाय सीलस्य चागस्स च अयं फलं
नागो नावाय वण्णेन सद्धं वहति उपासकं॥
सब्भिरेव समासेथ सब्भि कुब्बेथ सन्थवं
सतं हि सन्निवासेन सोत्थि गच्छति नहापितो॥

[श्रद्धा, शील और त्याग के इस फल को देखो। नाग नौका की शकल बना कर श्रद्धावन् उपासक का वहन करता है। सत्पुरुष के साथ रहे, सत्पुरुष के ही साथ दोस्ती करे। सत्पुरुष के साथ रहने से नाई कल्याण को प्राप्त होता है।]

———

पस्स किसी विशेष को सम्बोधन न कर केवल देखने कहता है। **सद्धाय** लौकिक तथा लोकोत्तर श्रद्धा से। शील में भी इसी प्रकार। **चागस्स** दान का त्याग तथा चित्तमैल का त्याग। **अयं फलं** यह फल। गुण या परिणाम अर्थ है। अथवा त्याग के फल को देखो। यह नाग नौका की शकल में, यह अर्थ भी समझना चाहिए। **नावाय वण्णेन** नौका के आकार से। **सद्धं** तीन रत्नों में प्रतिष्ठित श्रद्धा। **सब्भिरेव** पण्डितों के ही साथ। **समासेथ** एक साथ रहे, निवास करे यही अर्थ है। **कुब्बेथ** करे। **सन्थवं** मित्रता तृष्णा-पूर्ण दोस्ती तो किसी से न करनी चाहिए। **नहापितो**— -नाई गृहस्थ। **न्हपितो** यह भी पाठ है।

———

इस प्रकार समुद्र देवता आकाश में ठहर, धर्मोपदेश दे तथा नसीहत कर, नागराजा को साथ ले अपने विमान को ही चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, आर्य-सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। आर्य-सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उपासक सकृदागामी-फल में प्रतिष्ठित हुआ। तब स्रोतापन्न उपासक परिनिर्वाण को प्राप्त हुआ। नागराजा सारिपुत्र था। समुद्रदेवता तो मैं ही था।

———

⊙

दूसरा परिच्छेद

५. रुहक वर्ग

१९१. रुहक जातक

"अम्भो रुहक ! छिन्नापि. . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पहली स्त्री से लुभाये जाने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा आठवें परिच्छेद की इन्द्रिय जातक[1] में आयेगी। शास्ता ने उस भिक्षु को कहा—"भिक्षु ! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है। पहले भी इसने तुझे राजा सहित परिषद् के बीच में लज्जित कर घर से बाहर निकलने के योग्य नहीं रखा।"

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए। बड़े होने पर, पिता के मरने के बाद राजा बन धर्म से राज्य करने लगे। उसका रुहक नाम का पुरोहित था। रुहक की पुराणी नाम की भार्या थी।

राजा ने ब्राह्मण को, साज से सजाकर एक घोड़ा दिया। वह उस घोड़े पर चढ़ कर राजा की सेवा में जाता था। उसे अलंकृत घोड़े की पीठ पर आते जाते देखकर जहाँ तहाँ खड़े आदमी घोड़े की प्रशंसा करते थे—ओह! अश्व का रूप कैसा है ! ओह ! अश्व कितना सुन्दर है !

---

१. इन्द्रिय जातक (४२३)।

उसने घर आ प्रासाद पर चढ़ भार्या को बुलाया--भद्र ! हमारा घोड़ा बड़ा सुन्दर लगता है । दोनों ओर खड़े आदमी हमारे घोड़े की ही प्रशंसा करते हैं।

वह ब्राह्मणी थोड़ी धूर्त थी । उसने उसे कहा--आर्य ! तू घोड़े के सौन्दर्य के कारण को नहीं जानता । यह घोड़ा अपने साज के कारण शोभा देता है। यदि तू भी अश्व की तरह सुन्दर लगना चाहता है, तो घोड़े का साज पहन, बाजार में उतर, अश्व की तरह पैरों की टाप देते हुए, जाकर राजा को देख। राजा भी तेरी प्रशंसा करेगा । आदमी भी तेरी ही प्रशंसा करेंगे ।

उस पगले ब्राह्मण ने उसकी बात सुन, अमुक कारण से यह ऐसा कहती है न समझ, उसकी बात में विश्वास कर वैसा किया । जो-जो देखते वे वे मजाक करते हुए कहते—आचार्य ! खूब शोभा देते हैं ।

राजा ने उससे पूछा--"आचार्य ! क्या पित्त प्रकोप हुआ है ? क्या तू पगला हो गया है ?" इस प्रकार लज्जित किया ।

उस समय ब्राह्मण ने सोचा 'मैंने अनुचित किया ।' वह लज्जित हुआ । ब्राह्मणी से क्रुद्ध हो, 'उसने मुझे राजा सहित सेना के बीच में लज्जित किया' सोच उसे पीटकर घर से निकालने के लिए घर गया । धूर्त ब्राह्मणी को जब मालूम हुआ कि वह उस पर क्रोधित होकर आया है, तो वह पहले ही छोटे दरवाजे से निकल राज-महल में जा पहुँची । वह चार पाँच दिन वहीं रही । राजा ने वह समाचार जान पुरोहित को बुला कर कहा--

"आचार्य ! स्त्री से दोष होता ही है । ब्राह्मणी को क्षमा करना चाहिए ।" उसे क्षमा दिलाने के लिए पहली गाथा कही--

अम्भो रुहक छिन्नापि जिया संधीयते पुन,
सन्धीयस्सु पुराणिया मा कोधस्स वसं गमि ॥

[भो रुहक । धनुष की डोरी टूट कर फिर भी जुड़ जाती है । पुराणि के साथ मेल कर लो । क्रोध के वशीभूत मत हो ।]

संक्षेपार्थ--भो रुहक ! छिन्नापि धनुष की डोरी जुड़ ही जाती है। इसी प्रकार तू भी पुराणी के साथ सन्धीयस्सु कोधस्स वसं मा गमि ।

उसे सुनकर रुहक ने दूसरी गाथा कही--

> विज्जमानासु मरुवासु विज्जमानेसु कारिसु
> अञ्ञं जियं करिस्सामि अलञ्ञेव पुराणिया ॥

[मरुव नाम की छाल के रहते और बनाने वालों के रहते मैं दूसरी डोरी बनवा लूँगा मुझे पुरानी की जरूरत नहीं।]

महाराज! मरुव छाल और डोरी बनाने वाले मनुष्यों के रहते दूसरी डोरी बनवा लूँगा। इस टूटी हुई पुरानी डोरी की मुझे जरूरत नहीं। ऐसा कह उसे निकाल दूसरी ब्राह्मणी को ले आया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, आर्य-सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होंने उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय पुराणि पूर्व-भार्या थी। रुहक उद्विग्न-चित्त भिक्षु था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

⊙

१९२. सिरिकालकण्णि जातक

"इत्थी सिया रूपवती..." यह सिरिकालकण्णि जातक **महाउम्मग जातक**[1] में आयेगी ।

---

१. महाउम्मग जातक ५४६ ।

१९३. चुल्लपदुम जातक

"अयमेव सा अहमपि सो अनञ्ञो . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुए, उद्विग्नचित भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा **उम्मदन्ति जातक**[1] में आयेगी। शास्ता ने पूछा—"भिक्षु ! क्या सचमुच उद्विग्न-चित्त है ?"

"भगवान् ! सचमुच।"

"तुझे किसने उद्विग्न किया है ?"

"भन्ते ! मैं एक अलंकृत सजीधजी स्त्री को देखकर आसक्त होने के कारण उद्विग्न हुआ हूँ।"

"भिक्षु ! स्त्री अकृतज्ञ होती है, मित्रद्रोही होती है, कठोर हृदया होती है। पुराने पण्डित दाहिनी जाँघ का लहू पिलाकर भी, जीवनदान देकर स्त्री का चित्त न जीत सके।"

शास्ता ने यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए। नामकरण के दिन उसका नाम **पदुम-कुमार** रखा गया। उसके और छः भाई थे। यह सातों जने क्रम से बड़े हो, विवाह कर राजा के मित्रों की तरह रहने लगे।

एक दिन राजा ने राजांगन में खड़े होकर उन्हें बड़े ठाट बाट से राजा की सेवा में आते देख, सोचा—यह मुझे मारकर राज्य भी ले सकते हैं। इस

---

१. **उम्मदन्ति जातक (५२७)।**

शंका से सशंकित हो उसने बुलाकर कहा—तात ! तुम इस नगर में नहीं रह सकते। दूसरी जगह जाओ। मेरे मरने पर आकर कुल-प्राप्त राज्य ग्रहण करना।

वे पिता का कहना मान रोते पीटते घर गये। अपनी-अपनी स्त्रियों को ले, जहाँ कहीं जाकर जीवन बिताने के लिए नगर से निकले। रास्ते चलते हुए वे एक कान्तार में पहुँचे। वहाँ खाना पीना न मिला। भूख न सह सकने के कारण उन्होंने सोचा, जीते रहेंगे तो स्त्रियाँ मिलेंगी सब से छोटे भाई की स्त्री को मारकर उसके तेरह टुकड़े कर उसका मांस खाया।

बोधिसत्व ने अपने और भार्या के लिए मिले दो हिस्सों में से एक रख छोड़ा; एक को दोनों ने खाया। इस प्रकार छः दिनों में छः स्त्रियों का मांस खाया गया। बोधिसत्व ने एक-एक कर के छः दिनों में छः टुकड़े रख छोड़े। सातवें दिन बोधिसत्व की भार्या को मारेंगे' कहने पर बोधिसत्व ने वे छः टुकड़े उन्हें देकर कहा कि आज यह खाओ। कल देखेंगे।

जिस समय वह मांस खाकर सो रहे थे, बोधिसत्व अपनी भार्या को लेकर भाग निकले। उसने थोड़ी दूर चलकर कहा स्वामी ! चल नहीं सकती हूँ। बोधिसत्व उसे कन्धे पर लेकर सूर्योदय के समय कान्तार से निकले। सूर्योदय होने पर उसने कहा—स्वामी ! प्यास लगी है। बोधिसत्व ने कहा—भद्रे ! पानी नहीं है। लेकिन बार-बार माँगने पर बोधिसत्व ने अपनी दाहिनी जाँघ में तलवार का प्रहार कर कहा—भद्रे ! पानी नहीं है। यह मेरी दाहिनी जाँघ का लहू पी ले। उसने वैसा किया।

वे क्रम से महानदी पर आये। पानी पी, नहाकर फलमूल खाते हुए, आराम करने की एक जगह पर विश्राम किया। फिर गङ्गा के मोड़ की जगह पर आश्रम बनाकर रहने लगे।

गङ्गा के ऊपर के हिस्से में किसी राज्यापराधी चोर को हाथ-पाँव तथा नाक काट कर बोरे में बिठा गङ्गा में बहा दिया गया था। वह बहुत चिल्लाता हुआ उस जगह आ लगा। बोधिसत्व ने उसकी करुणापूर्ण रोने पीटने की आवाज सुन मेरे रहते कोई दुःख प्राप्त प्राणी नष्ट न हो' सोच गङ्गा किनारे जा, उसे उठा आश्रम पर ला, काषाय से धो लेप कर उसके जख्मों की

चिकित्सा की। उसकी भार्या घृणा से उस पर थूकती हुई फिरती थी—इस प्रकार के लुञ्जे को गंगा से लाकर उसकी सेवा करते हैं !!!

उसके जखन ठीक होने पर बोधिसत्व उसे और अपनी भार्या को आश्रम पर छोड़, जंगल से फलमूल लाकर उसका तथा भार्या का पालन करने लगे।

उनके इस प्रकार रहते हुए वह स्त्री उस लुञ्जे से आकृष्ट हो गयी। उसने उसके साथ अनाचार किया। फिर किसी उपाय से बोधिसत्व को मार डालना चाहिए, सोच बोली—"स्वामी ! मैंने तुम्हारे कन्धे पर बैठे हुए जिस समय कान्तार से निकल रही थी इस पर्वत को देखकर एक मिन्नत मानी थी—हे पर्वत-निवासी देवता ! यदि मैं और मेरा स्वामी सकुशल जीते निकल जाएँगे तो मैं तुम्हारी बलि चढ़ाऊँगी। सो वह देवता जिसकी मिन्नत मानी थी तंग करता है। उसकी बलि दें।"

बोधिसत्व उसकी माया नहीं जानते थे। उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया; और बलिकर्म तैयार कर उससे बलि-पात्र उठा पर्वत पर चढ़े।

उस स्त्री ने बोधिसत्व से कहा—"स्वामी ! देवता से भी बढ़कर तुम ही उत्तम देवता हो। इसलिए पहले तुम्हें ही वन-पुष्पों से पूज, प्रदक्षिणा कर, वन्दना कर पीछे देवता की बलि दूँगी।" उसने बोधिसत्व को प्रपात की ओर कर वन-पुष्पों से पूजा की। फिर प्रदक्षिणा कर, प्रमाण करने वाली की तरह हो, पीछे जा, पीठ में धक्का दे, प्रपात से गिरा दिया। 'शत्रु की पीठ देख ली' सोच सन्तुष्ट हो, वह पर्वत से उतर लुञ्जे के पास गयी। बोधिसत्व भी प्रपात के किनारे पर्वत से गिरते हुए, एक गूलर के वृक्ष पर पत्तों से ढके कण्टकरहित गुम्ब में जा लगे। पर्वत से नीचे उतरने में असमर्थ थे। वह गूलर खाकर शाखाओं के बीच में बैठे रहे।

एक गोह, जिसका शरीर बड़ा था, पर्वत के नीचे से उस गूलर के पेड़ पर चढ़ फल खाता था। वह उस दिन बोधिसत्व को देखकर भाग गया। अगले दिन आया और एक ओर से फल खाकर चला गया। इस प्रकार बार-बार आने से जब वह बोधिसत्व का विश्वासी हो गया तो उसने पूछा—"तू इस जगह कैसे आया ?" "इस कारण से" बताने पर उसने कहा—"तो मत डर।" उसने बोधिसत्व को अपनी पीठ पर लिटा, उतार कर जंगल से निकल, महामार्ग पर

ले जाकर कहा--"इस मार्ग से जा ।" बोधिसत्व को उत्साहित कर वह स्वयं जंगल में चला गया ।

बोधिसत्व एक गामड़े में जाकर रहने लगे । वहाँ रहते हुए, पिता के मरने का समाचार मिला । वह वाराणसी पहुँच कुलागत राज्य पर अधिकार कर, पदुम-राजा नाम से, दस राजधर्मों से विरुद्ध न जा धर्म से राज्य करने लगे । चारों नगर-द्वारों पर, नगर के बीच में तथा महल के द्वार पर छहदानशालाएँ बनवा प्रतिदिन छह हजार खर्च कर दान देते ।

वह पापी स्त्री भी उस लुञ्जे को कन्धे पर बिठा जंगल से निकल बस्तियों में भिक्षा माँग कर यागु-भात इकट्ठा कर उस लुञ्जे को पोसती थी । उससे यदि कोई पूछता कि यह तेरा क्या लगता है, तो वह उत्तर देती--"मैं इसके मामा की लड़की हूँ और यह मेरी बुआ का लड़का है । मैं इसी को दी गयी । सो मैं अपने स्वामी को--जो इस तरह दण्डित भी किया गया है--उठाये लिये फिर कर, भीख माँग कर पालती हूँ ।" मनुष्यों ने समझा--यह पतिव्रता है । उसके बाद और भी यवागु-भात देने लगे । दूसरों ने कहा--"तू इस तरह मत घूम । पदुमराज वाराणसी में राज्य करता है । सारे जम्बूद्वीप को उद्वेलित कर दान देता है । वह तुझे देखकर प्रसन्न होगा । बहुत धन देगा ।" उन्होंने उसे एक बेत की टोकरी दी और कहा कि अपने स्वामी को इसमें बिठा कर ले जा । वह अनाचारिणी उस लुञ्जे को बेत की टोकरी में बिठा, टोकरी को उठा वाराणसी पहुँच वहाँ दानशालाओं में खाती हुई घूमने लगी ।

बोधिसत्व अलंकृत हाथी के कन्धे पर बैठ, दानशाला जा, वहाँ आठ या दस को अपने हाथ से दान देकर घर जाते । वह अनाचारिणी उस लुञ्जे को टोकरी में बिठा, टोकरी उठा, राजा के रास्ते में खड़ी हुई । राजा ने देखकर पूछा--"यह क्या है ?"

"देव ! एक पतिव्रता है ।"

उसे बुलवा कर, पहचान कर, लुञ्जे को टोकरी से निकलवा कर पूछा--"यह तेरा क्या लगता है ?"

"देव ! यह मेरी बुआ का लड़का है । कुलवालों ने मुझे इसे सौंपा है । यह मेरा स्वामी है ।"

मनुष्य उनके बीच के भेद को न जानते थे। वे उस अनाचारिणी की प्रशंसा करने लगे—ओह ! पतिदेवता !

राजा ने फिर उससे पूछा—"तुझे कुलवालों ने इसे सौंपा है ? यह तेरा स्वामी है ?"

उसने राजा को न पहचानते हुए बीर बन कर कहा—"देव ! हाँ।"

तब राजा ने उससे पूछा—"क्या यह वाराणसी राजा का पुत्र है ? क्या तू पदुमकुमार की भार्या अमुक राजा की अमुक नाम की लड़की नहीं है ? मेरी जाँघ का लहू पीकर इस लुञ्जे के प्रति आसक्त हो मुझे प्रपात से गिरा दिया। वह तू अब अपने सिर पर मृत्यु ले मुझे मरा समझ यहाँ आयी है ? मैं जीता हूँ।" इतना कह, अमात्यों को बुला राजा ने कहा—"अमात्यों ; क्या मैंने तुम लोगों के पूछने पर यह नहीं कहा था कि मेरे छह छोटे भाइयों ने छह स्त्रियों को मार कर मांस खाया। लेकिन मैंने अपनी स्त्री को सकुशल गंगा किनारे लाकर एक आश्रम में रहते हुए, एक दण्ड-प्राप्त लुञ्जे को (पानी से) निकाल सेवा की। उस स्त्री ने उस आदमी के प्रति आसक्त हो मुझे पर्वत पर से गिरा दिया। मैं अपने मैत्रीचित्त के कारण नहीं मरा। जिसने मुझे पर्वत से गिराया था, वह कोई और नहीं थी; यही दुराचारिणी थी। जो दण्ड-प्राप्त लुञ्जा था, वह भी कोई दूसरा न था, यही था।"

यह कह यह गाथाएँ कहीं—

अयमेव सा अहमपि सो अनञ्ञो,
अयमेव सो हत्थच्छिन्नो अनञ्ञो
यमाह कोमारपती ममन्ति,
बज्झित्थियो नत्थि इत्थीसु सच्चं ॥
इमञ्च जम्मं मुसलेन हन्त्वा,
लुद्दं छवं परदारूपसेविं;
इमिस्सा च नं पापपतिब्बताय,
जीवन्तिया छिन्दथ, कण्णनासं ॥

[यही वह है। मैं भी वही हूँ। यह हाथ कटा भी वही है। दूसरा नहीं है

जिसे 'यह मेरा कोमारपति' कहती है। स्त्रियाँ बध्य करने योग्य हैं। उनमें सत्य नहीं होता।

[इस नीच-लोभी, मृतसदृश, परायी स्त्री का सेवन करने वाले को मूसल से मार डालो। और इस पापी पतिव्रता के जीते जी (इसके) कान नाक काट डालो।]

यमाह कोमारपती ममं, जिसे यह मेरा कोमारपति, जिसे मैं कुल द्वारा सौंपी गयी, स्वामी कहती है। **अयमेव सो न अञ्ञो, यमाहु कुमारपति**, यह भी पाठ है। यही पुस्तकों में लिखा है। उसका भी यही अर्थ है। वचन-भेद मात्र है। जो राजा ने कहा, वही यहाँ आ गया। **वज्झित्थियो**, स्त्रियाँ बध्य होती हैं, बध करने के योग्य ही होती हैं। **नत्थि इत्थीसु सच्चं**, इनका स्वभाव एक नहीं रहता। **इमञ्च जम्मं**, यह उन दोनों को दण्ड आज्ञा देने के लिए कहा।

जम्मं, नीच। **मुसलेन हन्त्वा**, मूसल से मारकर, पीटकर; हड्डियों को तोड़कर, चूर्ण विचर्ण करके। लुद्द कठोर। छवं निर्गुण होने से निर्जीव मृत-सदृश। **इमिस्सा च नं**, इसमें नं निपातमात्र है। इसके **पापपतिब्बताय** अनाचारिणी दुश्शीला के **जीवन्तियाव कण्णं नासं छिन्दथ**।

बोधिसत्व ने क्रोध को न सम्भाल सकने के कारण उनको ऐसे दण्ड की आज्ञा दे दी; लेकिन वैसा करवाया नहीं। क्रोध को कम करके उसने टोकरी को उसके सिर पर ऐसे कसकर बँधवाया कि वह उतार न सके। फिर उस लुञ्जे को उसमें फिकवा उसे अपने राज्य से निकलवा दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकासन समाप्त होने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय छह भाई कोई स्थविर थे। भार्या चिञ्चामाणविका थी। लुञ्जा देवदत्त था। गोहराज आनन्द था। पदुमराज तो मैं ही था।

१९४. मणिचोर जातक

"न सन्ति देवा पवसन्ति नून. . ." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय वध का प्रयत्न करने वाले देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इस समय शास्ता ने यह सुन कर कि देवदत्त मेरे वध के लिए प्रयत्न करते हैं, "भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी देवदत्त ने मेरे बध का प्रयत्न किया ही है, लेकिन सफल नहीं हुआ" कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वाराणसी के समीप के एक गामड़े में गृहपति कुल में पैदा हुए। उसके बड़े होने पर उसके लिए वाराणसी से एक लड़की लायी गयी। वह प्रिया थी, सुन्दर थी, दर्शनीय थी देवअप्सराओं के समान वा पुष्पित लता के समान। वह मस्त किन्नरी की तरह क्रीड़ा करने वाली थी। नाम था सुजाता। पति-व्रता थी; सदाचारिणी थी और थी कर्त्तव्यपरायणा। पति की सेवा तथा सास ससुर की सेवा वह नित्य करती थी। वह बोधिसत्व को प्रिय थी, मन के अनुकूल थी।

वे दोनों प्रसन्नतापूर्वक एक चित्त हो मेल से रहते थे।

एक दिन सुजाता ने बोधिसत्व से कहा--मैं माता-पिता को देखना चाहती हूँ। उसने कहा--भद्रे ; अच्छा पर्याप्त पाथेय तैयार करो। खाद्य-पकवान पकवा, खाद्य आदि गाड़ी पर रखवा, गाड़ी को हाँकता हुआ वह स्वयं आगे बैठा। वह पीछे बैठी। नगर के समीप पहुँच गाड़ी खोल नहा कर उन्होंने खाया। फिर बोधिसत्व ने गाड़ी जोती और स्वयं आगे बैठा। सुजाता कपड़े बदल अलंकृत हो पीछे बैठी। जिस समय गाड़ी ने नगर में प्रवेश किया, उसी समय हाथी के कन्धे पर बैठ नगर की प्रदक्षिणा करता हुआ वाराणसी नरेस

उधर आ निकला। सुजाता उतर कर गाड़ी के पीछे पैदल चल रही थी। राजा ने उसे देख, उसके सौन्दर्य पर ऐसे मुग्ध हो मानो वह उसकी आँखें खींच ले रहा हो, एक अमात्य को भेजा कि पता लगाये कि उसका स्वामी है वा नहीं ? उसने जाकर पता लगाया कि उसका स्वामी है और आकर निवेदन किया--"देव ; वह विवाहिता है। गाड़ी में बैठा हुआ आदमी उसका स्वामी है।"

राजा अपनी आसक्ति को हटाने में असमर्थ था। उसने कामातुर हो सोचा, किसी उपाय से इस आदमी को मरवा कर स्त्री को लूंगा; और एक आदमी को बुलाकर कहा--"अरे ; यह चूड़ामणि ले जाकर रास्ते चलते हुए की तरह जाते हुए इसे इस आदमी गाड़ी में फेंक कर आओ।" उसे चूड़ामणि देकर भेजा। उसने 'अच्छा' कह उसे ले जाकर गाड़ी में डाल आकर कहा--"देव ! मैंने डाल दी।" राजा ने कहा--मेरी चूड़ामणि खो गयी। लोगों ने शोर मचा दिया। राजा ने आज्ञा दी--"सब दरवाजों को बन्द कर, रास्ते रोक कर चोर का पता लगाओ। राजपुरुषों ने वैसा ही किया। नगर एक सिरे से क्षुब्ध हो गया। एक जन आदमियों को लेकर बोधिसत्व के पास जा बोला--"अरे ; गाड़ी रोको। राजा की चूड़ामणि खो गयी है। गाड़ी की तलाशी लेंगे।" उसने गाड़ी की तलाशी लेते हुए अपनी रखी हुई मणि उठा, बोधिसत्व को पकड़, 'यह मणि चोर है' कहते हुए हाथों और पाँवों से पीट, उसके हाथों को पिछली तरफ बाँध उसे ले जाकर राजा के सामने पेश किया --यह मणि-चोर है। राजा ने आज्ञा दी--इसका सिर काट डालो।

राजपुरुष उसे चार-चार बेंतों से पीटते हुए नगर से बाहर ले गये।

सुजाता भी गाड़ी छोड़ दोनों हाथ उठा 'मेरे कारण स्वामी इस दुःख को प्राप्त हुए' कह रोती पीटती उसके पीछे पीछे चली। राज पुरुषों ने बोधिसत्व का सिर काटने के लिए उसे सीधे लिटाया। उसे देख सुजाता ने अपने सदाचार का ध्यान कर "मालूम होता है इस लोक में कोई ऐसा देवता नहीं है जो पापी दुस्साहसियों को सदाचारियों पर अत्याचार करने से रोक सके, कह, रोते-पीटते पहली गाथा कही--

न सन्ति देवा पवसन्ति नून
नहनून सन्ति इधि लोकपाला

सहसा करोन्तानं असञ्ञतानं
नहनून सन्ति पटिसेधितारो ॥

[असंयमी, दुस्साहसिक दुष्कर्म करने वालों को रोकने वाले न देवता हैं (यदि हैं तो समय पर चले जाते हैं) न ही यहाँ लोकपाल हैं—उन्हें रोकने वाला कोई नहीं ।]

न सन्ति देवा इस लोक में सदाचारियों की देख भाल करने वाले तथा पापियों को रोकने वाले देवता नहीं हैं, **पवतन्ति नून,** अथवा इस प्रकार के मौकों पर वह निश्चय से प्रवास को चले जाते हैं । **इध लोकपाला,** इस लोक में लोकपाल कहलाने वाले श्रमण-ब्राह्मण भी सदाचारियों पर अनुग्रह करने वाले नह नून सन्ति । **सहसा] करोन्तानं, असञ्ञतानं,** सहसा बिना विचारे दुस्साहस, कठोर-कर्म करने वाले दुराचारियों को । **पटिसेधितारो** इस प्रकार का कर्म मत करो । ऐसा करना नहीं मिलेगा—इस प्रकार रोकने वाले नहीं ।

इस प्रकार सदाचारिणी के रोने पीटने से देवेन्द्र शक्र का आसन गर्म हुआ । शक्र ने सोचा कौन है जो मुझे मेरे आसन से गिराना चाहता है? पता लगाने से जब उसे यह कारण मालूम हुआ तो उसने सोचा—'वाराणसी नरेश अत्यन्त निर्दयता का काम कर रहा है । सदाचारिणी सुजाता को कष्ट दे रहा है । अब मुझे पहुँचना चाहिए ।' उसने देवलोक से उतर अपने प्रताप से हाथी की पीठ पर जाते हुए उस पापी राजा को उतार सीस काटने की जगह पर सीधा लिटा, बोधिसत्व को उठा सब अलंकारों से अलङ्कृत कर राजवेष पहना हाथी के कन्धे पर बिठाया । फरसा उठा कर खड़े सीस काटने वालों ने राजा का सिर काट दिया । सीस कट जाने पर ही उन्हें पता लगा कि यह राजा का सिर था ।

देवेन्द्र शक्र ने दिखायी देने वाले शरीर से बोधिसत्व के पास जा बोधिसत्व को राज्याभिषेक तथा सुजाता को अग्रमहिषीपद दिलवाया । अमात्य तथा ब्राह्मणगृहपति आदि देवेन्द्र शक्र को देखकर प्रसन्न हुए : अधार्मिक राजा मारा गया । अब हमें शक्र का दिया हुआ धार्मिक राजा प्राप्त हुआ । शक्र ने भी

आकाश में खड़े हो कहा--"यह शक्र का बनाया हुआ राजा अब से धर्मपूर्वक राज्य करेगा। यदि राजा अधार्मिक होता है तो वर्षा असमय होती है, समय पर नहीं होती है, अकालभय तथा शस्त्र-भय बना ही रहता है।" इस प्रकार उपदेश देते हुए शक्र ने दूसरी गाथा कही--

अकाले वस्सति तस्स काले तस्स न वस्सति
सग्गा च चवतिट्ठाना ननु सो तावता हतो ॥

[उसके राज्य में असमय वर्षा होती है, समय पर नहीं होती। वह स्वर्ग स्थान से गिरता है। निश्चय से वह उतने से मारा गया।]

अकाले, अधार्मिक राजा के राज्य करने के समय--अनुचित समय पर खेती के पकने के समय या कटाई तथा मर्दन करने के समय **देव वस्सति**। काले, योग्य समय पर, बोने के समय, खेती छोटी रहने के समय वा दाना पड़ने के समय **न वस्सति**। **सग्गा च चवतिट्ठाना**, स्वर्ग-स्थान से अर्थात् देवलोक से अधार्मिक राजा अप्रतिलाभ होने से देवलोक के च्युत होता है। **ननु सो तावता हतो**, निश्चय से वह अधार्मिक राजा इससे मारा जाता है। अथवा "नु" यहाँ एकांतवाची है; न केवल वह इतने से मारा गया; बल्कि वह आठ महा नरकों में तथा सोलह उस्सद नरकों में चिरकाल तक मारा जायेगा।

इस प्रकार शक्र जन-समूह को उपदेश दे अपने देवस्थान को ही चला गया। बोधिसत्व ने भी धर्म से राज्य करते हुए स्वर्ग-मार्ग को भरा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय अधार्मिक राजा देवदत्त था। शक्र अनुरुद्ध था। सुजाता राहुल-माता थी। शक्र का बनाया हुआ राजा तो मैं ही था।

⊙

१९५. पब्बतूपत्थर जातक

"पब्बतूपत्थरे रम्मे. . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल राजा के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशल राजा के एक अमात्य ने रनिवास को दूषित किया। राजा ने खोज करके उसे ठीक-ठीक जान शास्ता को निवेदन करने की इच्छा से जेतवन जा, शास्ता को प्रणाम कर पूछा--"भन्ते ! हमारे रनिवास को एक अमात्य ने दूषित किया है। उसको क्या करना चाहिए ?" शास्ता ने पूछा--"महा-राज ! वह अमात्य उपकारी है ? वह स्त्री प्रिया है ?"

"हाँ भन्ते ! बहुत उपकारी है। सारे राजकुल को सँभालता है। वह स्त्री भी मेरी प्रिया है।"

"महाराज ! अपने उपकारी सेवकों के प्रति तथा प्रिया स्त्री के प्रति बुरा व्यवहार नहीं किया जा सकता। पूर्व समय में भी राजा लोग पण्डितों की बात सुन उपेक्षावान् हो गये थे।"

उनके याचना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व अमात्य-कुल में पैदा हो बड़े होने पर उस राजा के अर्थधर्मानुशासक हुए। उस राजा के एक अमात्य ने रनिवास दूषित किया। राजा ने उसका ठीक-ठीक पता लगा सोचा--"अमात्य भी मेरा बहुत उपकारी है। यह स्त्री भी प्रिया है। मैं इन दोनों को नष्ट नहीं कर सकता। पण्डित-अमात्य से प्रश्न पूछकर यदि सहन करने योग्य होगा तो सहन कर लूँगा ! नहीं सहन करने योग्य होगा तो नहीं सहन करूँगा।" उसने बोधिसत्व को बुला, आसन दे पूछा--

"पण्डित ! प्रश्न पूछता हूँ।"

"महाराज ! पूछें, उत्तर दूंगा।"

राजा ने प्रश्न पूछते हुए यह पहली गाथा कही--

पब्बतूपत्थरे रम्मे जाता पोक्खरणी सिवा
तं सिगालो अपापासि जानं सीहेन रक्खितं ॥

[पर्वत के रम्य दामन में सुन्दर पुष्करिणी रही। यह जानते हुए भी कि इसे सिंह ने अपने लिए सुरक्षित रक्खा है, उसमें श्रृगाल ने पानी पिया।]

पब्बतूपत्थरे हिमालय पर्वत के दामन में फैले हुए आँगन में **जाता पोक्खरणी सिवा**, शीतल, मधुर, जल वाली पुष्करिणी पैदा हुई। कमल से ढकी हुई नदी भी पुष्करिणी ही। **अपापासि, अप** उपसर्ग है **अपासि** अर्थ है। **जानं सीहेन रक्खितं**, यह पुष्करिणी सिंह के परिभोग की है, सिंह के द्वारा रक्षित है; उस श्रृगाल ने यह जानते हुए ही कि यह सिंह द्वारा रक्षित है जल पिया। तू क्या समझता है ? श्रृगाल सिंह का भय न मान कर इस प्रकार की पुष्करिणी से जल पिये ?

बोधिसत्व ने यह समझ कर कि निश्चय से इसके रनिवास को किसी अमात्य ने दूषित किया होगा, दूसरी गाथा कही--

पिपन्ति वे महाराज ! सापदानि महानदिं
न तेन अनदी होति खमस्सु यदि ते पिया ॥

[महाराज ! महानदी पर सभी प्राणी जल पीते हैं। उससे नदी अनदी नहीं होती। यदि वह प्रिया है, तो क्षमा करें।]

सापदानि न केवल गीदड़ ही किन्तु चीते, कुत्ते, खरगोश, बिल्ले, हिरन आदि सभी प्राणी-प्राणी कमल से ढकी हुई होने के कारण पुष्करिणी कहलाने वाली नदी पर पानी पीते हैं। **न तेन अनदी होति**, नदी पर दो पैरों वाले, चार पैरों वाले साँप-मत्स्य आदि सभी प्यासे पानी पीते हैं। उससे वह न अनदी होती है, न जूठी। क्यों ? सब के लिए साधारण होने से जिस प्रकार नदी जिस किसी के पानी

पीने से दूषित नहीं होती उसी प्रकार स्त्री भी कामुकता के वशीभूत हो अपने पति के अतिरिक्त किसी दूसरे से सहवास करने से अनिस्त्री नहीं होती। क्यों ? सब के लिए साधारण होने से। न हि स्त्री जूठी होती है। क्यों ? जल-स्नान से शुद्ध हो सकने के कारण। **खमस्सु यदि ते पिया**, यदि वह स्त्री तुझे प्रिया है तथा वह अमात्य बहुत उपकारी है; उन दोनों को क्षमा कर। उपेक्षावान् हो।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने राजा को उपदेश दिया। राजा ने उसका उपदेश मान 'फिर ऐसा पापकर्म न करना' कह दोनों को क्षमा किया। उसके बाद से वह विरत रहे।

राजा भी दानादि पुण्य कर्म करते हुए मरने पर स्वर्ग सिधारे। कौशल नरेश भी यह धर्मदेशना सुन उन दोनों को क्षमा कर उपेक्षावान् हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

⊙

१९६. वालाहस्स जातक

"यँ न काहन्ती ओवादं...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उत्कण्ठित भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा--"क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?" "सच-मुच" कहने पर पूछा--किस कारण से उत्कण्ठित है? उसने उत्तर दिया--"एक अलङ्कृत स्त्री को देखकर कामुकता का भाव उत्पन्न हो जाने के कारण।" शास्ता ने कहा--"भिक्षु ! स्त्रियाँ अपने रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श तथा हासविलास से पुरुषों को आसक्त कर, जब उन्हें अपने वश में हुआ समझती हैं, तो उनका शील और धन नष्ट कर डालती हैं। इसी से यह यक्षिणियाँ कहलाती हैं। पहले भी यक्षिणियों ने स्त्रियों के हासविलास से एक काफले के पास जा, व्यापारियों को आकृष्ट कर, अपने वशीभूत कर, फिर दूसरे आदमियों को देख पहले के सब आदमियों को मार डाला। और दाढ़ों से रक्त बहाते हुए, उन्हें मुरमुरे की तरह खा डाला।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में ताम्रपर्णी द्वीप में सिरीसवत्थु नाम का यक्षों का नगर था। वहाँ यक्षिणियाँ रहती थीं। जिन व्यापारियों की नौकाएँ टूट जातीं, उनके आने पर वे सजसजा कर खाद्य-भोज्य लिवा, दासियों से घिरी हुई तथा गोद में बच्चों को उठाये व्यापारियों के पास जातीं। उन पर यह प्रकट करने के लिए कि वे मनुष्य-निवास में आये हैं, जहाँ-तहाँ कृषि, गोरक्षा आदि करते हुए आदमी, गौएँ, कुत्ते आदि दिखातीं। व्यापारियों के पास जाकर कहतीं--

यह यवागु पियें। भोजन करें। खाद्य खायें। व्यापारी न जानने के कारण उनका दिया खा लेते।

उनके खा-पीकर विश्राम करने के समय उनसे कुशल क्षेम पूछतीं--"आप कहाँ के रहने वाले हैं? कहाँ से आये हैं? कहाँ जायेंगे? यहाँ किस कार्य से आये?" वे कहते कि नौका टूट जाने के कारण इधर आये। तब वे कहतीं--"आर्यों! अच्छा! हमारे स्वामियों को भी नौका पर चढ़ कर गये तीन वर्ष हो गये। वे मर गये होंगे। आप लोग भी व्यापारी ही हैं। हम आपकी चरणसेविकाएँ होकर रहेंगी।"

इस प्रकार वे उन व्यापारियों को स्त्रियों के हासविलास से आसक्त कर यक्ष-नगर ले जातीं यदि पहले से पकड़े हुए आदमी (अभी जीवित) होते, तो उन्हें जादू की जंजीर से बाँध कारागृह में डाल देतीं। जब उन्हें अपने निवास-स्थान पर ऐसे आदमी जिनकी नौकाएँ टूट गयीं हों, न मिलते तो उधर कल्याणि (नदी) और इधर नाग द्वीप--इन दोनों के बीच में समुद्र तट पर घूमतीं। यही उनका स्वभाव था।

एक दिन पाँच सौ ऐसे व्यापारी जिनकी नौकाएँ टूट गयी थीं, उनके नगर के पास उतरे। वे उनके पास गयीं और उन्हें लुभाकर यक्ष-नगर ला पहले जिन आदमियों को पकड़ा था; उन्हें जादू की जंजीर में बाँध कारागृह में डाल दिया। ज्येष्ठ यक्षिणी ने ज्येष्ठ व्यापारी को शेष यक्षिणियों ने शेष व्यापारियों को; इस प्रकार उन पाँच सौ यक्षिणियों ने पाँच सौ व्यापारियों को अपना पति बनाया।

वह ज्येष्ठ यक्षिणी रात को जिस समय व्यापारी सोये रहते, उठ कर जा कारागृह में आदमियों को मार उनका मांस खाकर आती। बाकी भी उसी तरह करतीं। ज्येष्ठ यक्षिणी जिस समय मनुष्य-मांस खाकर लौटती उसका शरीर ठंडा होता। ज्येष्ठ व्यापारी ने उसका स्पर्श किया तो पता लगा कि यह यक्षिणी है। उसने सोचा यह पाँच सौ यक्षिणियाँ ही होंगी। हमें भागना चाहिए।

अगले दिन प्रातःकाल ही मुँह धोने जाकर उसने बाकी व्यापारियों को कहा--"यह मानवी नहीं है। यह यक्षिणियाँ हैं। दूसरे नौका-टूटे व्यापारियों के आने पर उन्हें स्वामी बना हमें खा डालेंगी। हम यहाँ से भागें।"

उनमें से ढाई सौ बोले—"हम इन्हें नहीं छोड़ सकते। तुम जाओ। हम नहीं भागेंगे।"

ज्येष्ठ व्यापारी अपनी बात मानने वाले ढाई सौ जनों को ले उनसे डर कर भाग गया।

उस समय बोधिसत्व बादल-अश्व की योनि में पैदा हुए थे। सारा रंग श्वेत। सिर कौवे जैसा। बाल मूंज के से। ऋद्धिमान। आकाशचारी। वह हिमालय से आकाश में चढ़ कर ताम्रपर्णी द्वीप जा वहाँ ताम्रपर्णी तालाब के कीचड़ में अपने से उगे हुए धान खाकर लौटता। इस प्रकार जाते हुए वह दया से प्रेरित हो तीन बार मानुषी-वाणी बोलता—"कोई जनपद जाने वाला है ? कोई जनपद जाने वाला है ?"

उन्होंने उसकी बात सुन, पास जा हाथ जोड़ कर कहा—"स्वामी ! हम जनपद जाएँगे।"

"तो मेरी पीठ पर चढ़ो।"

कुछ चढ़े। कुछ ने पूँछ पकड़ी। कुछ हाथ जोड़े खड़े ही रहे। बोधिसत्व अपने प्रताप से सभी ढाई सौ व्यापारियों को, जो हाथ जोड़े खड़े थे उन तक को जनपद ले गये। वहाँ उन्हें उन उनके स्थान पर पहुँचा स्वयं अपने निवास-स्थान को गये। वह यक्षिणियाँ भी औरों के आने पर उन ढाई सौ व्यापारियों को जो पीछे रह गये थे मार कर खायीं।

शास्ता ने भिक्षुओ को सम्बोधन कर कहा—"भिक्षुओ, जैसे उन यक्षिणियों के वशीभूत हुए व्यापारी विनाश को प्राप्त हुए, बादल-अश्व-राज का कहना मानने वाले अपने-अपने स्थान पर पहुँच गये, इसी प्रकार बुद्धों के उपदेश के अनुसार न चलने वाले भिक्षु, भिक्षुणियाँ तथा उपासक और उपासिकाएँ भी चारों नरकों तथा पाँच प्रकार के बन्धन, दण्ड आदि से महान् दुःख को प्राप्त होते हैं। उपदेश मानने वाले तीन कुल-सम्पत्तियाँ,[1] छः काम-स्वर्ग तथा बीस ब्रह्मलोकों को प्राप्त हो, अमृत महानिर्वाण को साक्षात् कर महान् सुख का अनुभव करते हैं।" अभिसम्बुद्ध होने पर यह गाथाएँ कहीं—

---

१. ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य।

ये न काहन्ति ओवादं नरा बुद्धेन देसितं,
व्यसनं ते गमिस्सन्ति रक्खसीहीव वाणिजा ॥१॥
ये च काहन्ति ओवादं नरा बुद्धेन देसितं,
सोत्थि पारंगमिस्सन्ति वालाहेनेव वाणिजा ॥२॥

[जो बुद्ध के उपदेश के अनुसार आचरण नहीं करते वे उसी तरह दुःख को प्राप्त होते हैं जैसे राक्षसियों द्वारा व्यापारी। जो बुद्ध के उपदेश के अनुसार चलते हैं वे उसी तरह सकुशल पार पहुँच जाते हैं जैसे बादल (के अश्व) की सहायता से व्यापारी।]

ये न काहन्ति, जो नहीं करेंगे। **व्यसनं ते गमिस्सन्ति**, वे महान् दुःख को प्राप्त होंगे। **रक्खसीहीव वाणिजा**, राक्षसियों द्वारा लुभाये गये व्यापारियों की तरह। **सोत्थि पारंगमिस्सन्ति**. बिना किसी विघ्न के निर्वाण को प्राप्त करेंगे। **वालाहेनेव वाणिजा**, बादल के घोड़े के 'आओ' कहने पर उसका कहना मानने वाले व्यापारियों की तरह। जैसे वह समुद्र पर जाकर अपने-अपने स्थान पर पहुँच गये; उसी प्रकार बुद्धों का उपदेश मानने वाले संसार को पार कर निर्वाण को प्राप्त होते हैं। अमृत महानिर्वाण से धर्मदेशना को समाप्त किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उत्कण्ठित-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। और भी बहुतों को स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत फल प्राप्त हुआ।

उस समय बादल अश्व-राज का कहना मानने वाले ढाई सौ व्यापारी बुद्ध-परिषद् थे। बादल अश्व-राज तो मैं ही था।

⊙

१९७. मित्तामित जातक

"**न नं उम्हयते दिस्वा**. . ." यह शास्ता ने श्रावस्ती में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कहा—

क. वर्तमान कथा

एक भिक्षु ने यह समझ कि मेरे ले लेने पर मेरा उपाध्याय बुरा नहीं मानो,ग विश्वास कर उसके रखे हुए एक वस्त्र-खण्ड को ले उससे जूता रखने की थैली बना ली। पीछे उपाध्याय को कहा। उपाध्याय ने पूछा—"क्यों लिया ?"

"मेरे लेने से आप क्रोधित नहीं होंगे; आपका ऐसा विश्वास करके।"

उपाध्याय ने क्रोध से उठकर पीटा—"तो मेरा विश्वास क्या है ?"

उसकी वह करनी भिक्षुओं में प्रकट हो गयी। एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बातचीत चलायी—"आष्युमानो ! अमुक तरुण-भिक्षु ने उपाध्याय का विश्वास कर वस्त्र-खण्ड ले उससे जूता रखने की थैली बनायी। उपाध्याय ने 'तेरा मेरा क्या विश्वास है' कह क्रोध से उठकर पीटा।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, यह भिक्षु न केवल अभी अपने शिष्य का अविश्वासी है, पहले भी अविश्वासी ही था।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी देश में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो अभिञ्जा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर गण के नेता हो वह हिमालय-प्रदेश में रहने लगे।

उन ऋषियों के समूह में एक तपस्वी था, जो बोधिसत्व का कहना न मान एक हाथी के बच्चे को जिसकी माँ मर गयी थी, पालता था। बड़े होने पर वह उस तपस्वी को मार जंगल में चला गया। उसका शरीर-कृत्य कर ऋषियों ने बोधिसत्व को घेर कर पूछा—"भन्ते ! मित्र या अमित्र कैसे पहचाना जा सकता है ?"

बोधिसत्व ने 'इस बात से' कहते हुए यह गाथा कही—

न नं उम्हयते दिस्वा न च नं पटिनन्दति
चक्खूनि चस्स न ददाति पटिलोमञ्च वत्तति ॥१॥
एते भवन्ति आकारा अमित्तस्मि पतिट्ठिता
येहि अमित्तं जानेय्य दिस्वा सुत्वा च पण्डितो ॥२॥

[न उसे देखकर मुस्कराता है, न प्रसन्न होता है। न उसकी ओर आँख करता है; और उलटा बर्तता है। ये अमित्र के रंगढंग हैं, उन्हें देखकर सुनकर पण्डित आदमी को अपने अमित्र को पहचानना चाहिए]

न नं उम्हयते दिस्वा, जो जिसका अमित्र होता है वह उसे देखकर न मुस्कराता है, न हँसता है; प्रसन्नाकार प्रदर्शित नहीं करता। **न च नं पटिनन्दति** उसकी बात सुनकर उसे आनन्द नहीं होता, 'अच्छा' कहा है, 'सुभाषित है' (कह) अनुमोदन नहीं करता। **चक्खूनि चस्स न ददाति,** आँख से आँख मिलाकर सामने नहीं देखता, आँख दूसरी ओर ले जाता है। **पटिलोमञ्च वत्तति,** उसका कार्य कर्म अथवा वाणी का कर्म भी उसे अच्छा नहीं लगता; विरोधी भाव ही ग्रहण करता है। **आकारा,** बातें। **येहि अमित्तं,** जिन बातों से वे बातें। **दिस्वा च सुत्वा च पण्डितो,** आदमी को चाहिए कि पहचान करे कि यह मेरा अमित्र है। इससे विरुद्ध बातों से मित्र-भाव जानना चाहिए।

इस प्रकार बोधिसत्व मित्र तथा अमित्र के लक्षण कह ब्रह्मविहारों की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय हाथी को पालने वाला तपस्वी शिष्य था हाथी उपाध्याय था। ऋषिगण बुद्ध-परिषद् थी। गण का नेता तो मैं ही था। ⊙

१९८. राध जातक[1]

पवासा आगतो तात . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उत्कण्ठित-चित्त भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने पूछा--"भिक्षु, क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?"

"भन्ते ! सचमुच।"

"किस कारण से?"

"एक अलंकृत स्त्री को देखकर कामुकता के कारण।"

"भिक्षु, स्त्री की जाति की सँभाल नहीं की जा सकती। पूर्व समय में तिरपाल रखकर हिफाजत करने वाले भी हिफाजत नहीं कर सके। तुझे स्त्री से क्या? मिलने पर भी उनकी हिफाजत नहीं की जा सकती।" इतना कह शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व तोते की योनि में पैदा हुए। उसका नाम था राध। उसके छोटे भाई का नाम था पोट्ठपाद। उन दोनों को ही, जब वह छोटे ही थे एक चिड़ीमार ने पकड़ कर वाराणसी के एक ब्राह्मण को दिया। ब्राह्मण ने उन्हें पुत्र की तरह पाला। उसकी ब्राह्मणी दुराचारिणी थी उसकी हिफाजत नहीं की जा सकती थी।

ब्राह्मण ने व्यापार करने के लिए जाते समय उन तोते-बच्चों को बुलाकर कहा--"तात ! मैं व्यापार के लिए जाता हूँ। समय असमय तुम अपनी माता

---

१. **राध जातक (१४५)।**

की करनी पर नजर रखना। दूसरे आदमी का अन्दर आना-जाना देखना" इस प्रकार वह उन तोते-बच्चों को ब्राह्मणी सौंप कर गया।

वह उसके बाहर जाने के समय से ही अनाचार करने लगी। रात को भी दिन को भी आने वालों की सीमा न रही। उसे देख पोट्ठपाद ने राध से कहा—"ब्राह्मण इस ब्राह्मणी को हमें सौंप कर गया। यह पाप-कर्म करती है। मैं इसे मना करूँ?" राध ने कहा—"मत बोल।" वह उसका कहना न मान बोला—"अम्म ! तू पापकर्म किस लिए करती है?"

उसने उसे मार डालने की इच्छा से कहा—"तात ! तू मेरा पुत्र है। अब से न करूँगी। जरा, यहाँ आ।" इस प्रकार प्यार करती हुई की तरह उसे बुलाकर, आने पर पकड़ लिया। फिर 'तू मुझे उपदेश देता है। अपनी हैसियत नहीं देखता?' कह, गरदन मरोड़ मारकर चूल्हे में फेंक दिया। ब्राह्मण ने लौट कर, विश्राम ले बोधिसत्व से कहा—"तात राध ! तुम्हारी माता अनाचार करती थी वा नहीं करती थी?" पूछते हुए यह पहली गाथा कही—

पवासा आगतो तात ! इदानि न चिरागतो,
कच्चिन्नु तात ! ते माता न अञ्ञमपसेवति ॥

[तात मैं अब प्रवास से लौट आया हूँ। मैं अभी आ रहा हूँ। तात ! क्या तेरी माता दूसरे पुरुष का सेवन करती थी ?]

मैं तात **पवासा आगतो**, वह मैं अभी आया हूँ। **न चिरागतो**, इसी से समाचार न जानने के कारण पूछता हूँ। **कच्चिन्न तात ते माता अञ्ञं** पुरुष को **न उपसेवति** ?

राध ने 'तात ! पण्डित सत्य या असत्य अकल्याणकर बात कभी नहीं कहते' प्रकट करते हुए दूसरी गाथा कही—

न खो पनेतं सुभणं गिरं सच्चूपसंहितं
सयेथ पोट्ठपादोव मम्मुरे उपकूसितो ॥

[वह सच्ची बात सुभाषित वाणी नहीं हैं ; जिसके कहने से पोट्ठपाद की तरह गर्म राख में भुने ।]

गिरं वचनं, वचन को ही जैसे अब 'गिरा' कहते हैं; वैसे ही तब 'गिर' कहते थे। तोता-बच्चा लिङ्ग का ख्याल न कर ऐसा कहता है। लेकिन इसका अर्थ यह है—तात ! पण्डित द्वारा सच्ची, यथार्थ, तथ्य-युक्त स्वाभाविक बात भी अकल्याणकर होने से; **न सुभणं।** अकल्याणकर सच्ची बात कहने से **सयेथ पोट्ठपादोव मुम्मरे उपकसितो,** जैसे पोट्ठपाद गरम राख में भुना हुआ सोता है; उस प्रकार सोये। **उपकूजितो** पाठ का भी यही अर्थ है।

इस प्रकार बोधिसत्व ब्राह्मण को धर्मोपदेश दे 'मैं भी यहाँ नहीं रह सकता' कह जंगल को गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

सत्यों (का प्रकाशन) समाप्त होने पर उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय पोट्ठपाद आनन्द था। राध तो मैं ही था।

⊙

१९९. गहपति जातक

"उभयम्मेन खमति . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उत्कण्ठित-चित्त के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा कहते हुए शास्ता ने 'स्त्री जाति की हिफाजत नहीं की जा सकती। पाप करके जिस किसी उपाय से स्वामी को ठगती ही हैं' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने काशी-राष्ट्र के गृहपति-कुल में जन्म ग्रहण कर बड़े होने पर विवाह किया। उसकी भार्या दुराचारिणी थी; गाँव के मुखिया के साथ दुराचार करती। बोधिसत्व जानकर परीक्षा करते हुए रहने लगे।

उस समय वर्षा काल में बीजों के बह जाने से अकाल हो गया था। खेती में दाना पड़ा। सारे ग्रामवासियों ने मिलकर निश्चय किया कि अब से दो महीने बाद खेत काटकर धान दे देंगे; और गाँव के मुखिया से एक बूढ़ा बैल ले उसका मांस खा गये।

एक दिन गाँव का मुखिया मौका देख, जिस समय बोधिसत्व बाहर गया था घर में घुसा। उनके सुख से लेटने के समय ही बोधिसत्व ग्राम-द्वार से प्रविष्ट हो घर की ओर हो लिया। ग्राम-द्वार की ओर देखते हुए उस स्त्री ने सोचा, 'यह कौन है?' फिर देहली पर खड़े होकर देखने से जब उसे निश्चय हुआ कि यह वही है, तो उसने मुखिया से कहा। गाँव का मुखिया डर के मारे कापने लगा।

उसने कहा—डर मत। एक उपाय है। हमने तेरा दिया गोमांस खाया

है । तू माँस का मूल्य उगाहने वाले की तरह हो । मैं कोठे पर चढ़ कोठे के द्वार पर खड़ी हो कहती हूँ कि धान नहीं है । तू घर के बीच में खड़ा होकर बार-बार उलाहना दे—'हमारे घर में बच्चे भूखे हैं । मेरे मांस का मूल्य दो ।' इतना कह वह कोठे पर चढ़ कोठे के दरवाजे पर बैठी । मुखिया घर में खड़ा हो कहने लगा—'मांस की कीमत दो ।' वह कोठे के दरवाजे पर बैठ कहती—'धान नहीं है । खेत कटने पर देंगे । जा ।'

बोधिसत्व ने घर में प्रवेश कर उनकी करतूत देख समझ लिया कि इस पापिन ने यह ढंग बनाया होगा । उसने गाँव के मुखिया को बुलाकर कहा—"हे ग्राम-भोजक ! हमने तेरे बूढ़े बैल का मांस खाते समय, 'अब से दो महीने बाद धान देंगे' कहकर मांस खाया था । अभी आधा महीना भी नहीं गुजरा । तू अभी से क्यों धान लेना चाहता है ? लेकिन तू इस उद्देश्य से नहीं आया ! दूसरे ही उद्देश्य से आया होगा ? मुझे तेरी करतूत अच्छी नहीं लगती । यह भी दुराचारिणी पापिन जानती है कि कोठे में धान नहीं है । वह अब कोठे पर चढ़ कहती है—धान नहीं है । तू भी कहता है—दे । मुझे दोनों की बात अच्छी नहीं लगती ।"

इस भाव को प्रकट करते हुए बोधिसत्व ने यह गाथाएँ कहीं—

उभयम्मे न खमति उभयम्मे न रुच्चति,
याचायं कोट्ठमोतिण्णा न दस्सं इति भासति ॥
तं तं गामपति ब्रूमि कदरे अप्पस्मि जीविते,
द्वे मासे कारं कत्वान मंसं जरग्गवं किसं;
अप्पत्तकाले चोदेसि तम्पि मय्हं न रुच्चति ॥

[दोनों मुझे पसन्द नहीं; दोनों मुझे अच्छे नहीं लगते । यह जो कोठे पर चढ़ कहती है—(धान) नहीं दिखायी देते । हे ग्रामपति ! मैं यह कहता हूँ कि जीवन इतना कठिन होने पर भी तू बूढ़े कृष बैल के मांस (के मूल्य) का दो महीने का करार करके समय के पूर्व ही उलहना देता है । यह भी मुझे अच्छा नहीं लगा ।]

तं तं गामपति ब्रूमि, भो ! ग्राम के मुखिया इस कारण से यह कहता है । **कदरे अप्पस्मि जीविते**, हमारा जीवन दुःखी है, जड़ है, रूखा है, न्यून है, अल्प है, मन्द है, परिमित है । इस प्रकार के जीवन के होने पर **द्वे मासे कारं कत्वान मंसं**

जरग्गवं किसं, हमारे मांस लेते समय बूढ़ा, कृष, दुर्बल बैल देते हुए तूने दो महीने की अवधि बाँधी थी कि दो महीने में मूल्य देना। इस प्रकार करार करके, अवधि बाँध कर **अप्पत्तकाले चोदेसि**, उस समय के आने से पूर्व ही दोष लगाता है। **तम्पि मय्हं न रुच्चति**, यह जो पापिन दुराचारिणी कोठे में धान नहीं है जानती हुई अनजान की तरह **कोट्ठमोतिण्णा** कोठे के द्वार पर खड़ी हो **न दस्सं इति भासति**, यह भी और यह जो तू असमय माँगता है; **तम्पि**, यह दोनों न मुझे पसन्द हैं, न अच्छी लगती हैं।

इस प्रकार कहते-कहते बोधिसत्व ने गाँव के मुखिये को केशों से पकड़ खैंच कर घर के बीच में गिराया। "मैं गाँव का मुखिया हूँ, समझ दूसरों की रखी, हिफाजत की हुई चीज के प्रति अपराध करता है ?" आदि बातों से अपशब्द कह, पीट कर, दुर्बल कर, गरदन से पकड़ घर से निकाल दिया। उस दुष्ट स्त्री को भी केशों से पकड़ कोठे से उतार, पीटते हुए डाँटा--"यदि फिर ऐसा करेगी, तो जानेगी ?"

उसके बाद से गाँव का मुखिया उस घर की ओर नजर भी नहीं उठा सका। वह पापिन भी फिर मन से भी दुराचार नहीं कर सकी।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों के अन्त में उत्कण्ठित-चित्त भिक्षु स्रोतापति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय ग्राम के मुखिया को ठीक करने वाला गृहपति मैं ही था।

⊙

२००. साधुसील जातक

"**सरीरदव्यं**.. " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ब्राह्मण के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस ब्राह्मण की चार लड़कियाँ थीं। वे चार प्रकार के आदमियों को चाहती थीं। उनमें से एक सुन्दर शरीर वाले को, एक आयु में बड़े को, एक (ऊँची) जाति वाले को और एक सदाचारी को। ब्राह्मण सोचने लगा! लड़कियों को (पराए) घर भेजते हुए, उनका विवाह करते हुए उन्हें किसे देना चाहिए? क्या रूपवान् को? क्या आयु में बड़े को? क्या जाति में बड़े को अथवा सदाचारी को?"

जब सोचने पर भी वह कुछ निश्चय न कर सका तो उसने विचार किया कि इस बात को सम्यक् सम्बुद्ध जानेंगे। उन्हें पूछ कर, इन चारों में जिसे देना उचित होगा उसे दूँगा। वह गन्धमाला आदि लिवा कर बिहार गया; शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। उसने आरम्भ से सब बात सुना कर पूछा—"भन्ते! इन चार जनों में से किसे देना उचित है?"

शास्ता ने कहा—"पहले भी पण्डितों ने तेरे इस प्रश्न का उत्तर दिया था। लेकिन वह पूर्व-जन्म की बात होने से तू उसे नहीं जान सकता।"

ऐसा कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में जन्म ग्रहण कर बड़े हो तक्षशिला गये। वहाँ शिल्प सीख लौट कर वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य हुए।

एक ब्राह्मण की चार लड़कियाँ थीं। वह इसी प्रकार चार जनों को चाहती थीं। ब्राह्मण ने यह न जानते हुए कि किसे दे सोचा कि आचार्य को पूछ कर

जिसे देना योग्य होगा, उसी को दूंगा। उसने आचार्य के पास जा यह प्रश्न पूछते हुए पहली गाथा कही—

सरीरदव्यं वय्यं सोजच्चं साधुसीलियं
ब्राह्मणन्तेव पुच्छाम कन्नु तेसं वणिम्हसे ॥

[शरीर के सौंदर्य वाले को, आयु बड़ी वाले को, जाति बड़ी वाले को वा सदाचारी को ? हे ब्राह्मण ! तुझे पूछते हैं कि उन्हें किसे दें ?]

सरीरदव्यं आदि उन चारों में विद्यमान् गुणों का प्रकाशन किया गया है। अभिप्राय यह है—मेरी लड़कियाँ चार प्रकार के आदमियों को चाहती हैं। उनमें से एक के पास **सरीरदव्यं** है, शरीर सम्पत्ति है, सौन्दर्य है। एक के पास **वद्व्यं** वृद्धभाव, ज्येष्ठपन है। एक के पास **सोजच्चं** अच्छी जाति वाला होना, जाति सम्पत्ति है। **सुजच्चं** भी पाठ है। एक के पास **साधुसीलियं** सुन्दर चरित्र होना सदाचार सम्पत्ति है। **ब्राह्मणन्त्वेव पुच्छाम**; उनमें से यह अमुक को देनी चाहिए, हम इसका निश्चय न कर सकने के कारण आप ब्राह्मण को ही पूछते हैं। **कन्नु तेसं वणिम्हसे**, उन चार जनों में से किसका वरण करें ? किसकी इच्छा करें। पूछता है कि वे कुमारियाँ किसे दें ?

इसे सुन आचार्य ने कहा—"रूप सम्पत्ति आदि विद्यमान् रहने पर भी दुःशील निन्दित है। इसलिए वह ठीक नहीं। हमें शीलवान् ही अच्छा लगता है।"

इस विचार को प्रकट करने के लिए दूसरी गाथा कही—

अत्थो अत्थि सरीरस्मि वद्धव्यस्स नमोकरे,
अत्थो अत्थि सुजातस्मि सीलं अस्माकरुच्चति ॥

[शरीर की भी अपनी विशेषता है, ज्येष्ठ को नमस्कार होता है, सुजात की भी विशेषता है; लेकिन हमें तो शीलवान् अच्छा लगता है।]

अत्थो अत्थि सरीरस्मि, रूपवान् शरीर में भी अर्थ, विशेषता, उन्नति होती है। नहीं होती है, नहीं कहते। **वद्धव्यस्स नमो करे**, ज्येष्ठ को हम नमस्कार ही

करते हैं । ज्येष्ठ की ही वन्दना होती है । **अत्थो अत्थि सुजातस्मि**, सुजात पुरुष की भी उन्नति होती है । जाति-सम्पत्ति भी इच्छा करने की ही चीज है । **सीलं अस्माकरुच्चति**, हमें शील ही अच्छा लगता है । शीलवान्, सदाचारी शरीर-सौन्दर्य से रहित भी पूज्य प्रशंसनीय होता है ।

ब्राह्मण ने उसकी बात सुन सदाचारी को ही लड़कियाँ दीं ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यों के अन्त में ब्राह्मण स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ ।

उस समय ब्राह्मण यही था; प्रसिद्ध आचार्य तो मैं ही था ।

⊙

दूसरा परिच्छेद

६. नतंदल्ह वर्ग

२०१. बन्धनागार जातक

"न तं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा...." यह शास्ता ने जेतवन में बिहार करते समय बन्धनागार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय बहुत से सेंध लगाने वाले, बटमार तथा मनुष्यघातक चोरों को लाकर राजा के सामने पेश किया गया। राजा ने उन्हें बेड़ी से, रस्सी से तथा जंजीर से बंधवा दिया।

दिहात के तीस भिक्षु शास्ता का दर्शन करने की इच्छा से आये। दर्शन तथा प्रणाम कर चुकने के अगले दिन भिक्षाटन करते हुए वह बन्धनागार पहुँचे। वह चोरों को देख, भिक्षाटन से लौट, सन्ध्या के समय शास्ता के पास जा निवेदन किया—भन्ते! आज हमने भिक्षाटन करते समय, बहुत से चोरों को बेड़ी आदि से बँधे हुए महान् दुःख अनुभव करते देखा। वे उन बन्धनों को काटकर भाग नहीं सकते। क्या उन बन्धनों से बढ़कर भी कोई बन्धन है?

शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह क्या बन्धन है? यह जो धन-धान्य-पुत्र तथा दारा आदि के प्रति तृष्णा रूपी बन्धन है, यह इन बन्धनों से सौ गुना, हजार गुना कड़ा बन्धन है। इस प्रकार के अत्यन्त कठिनाई से टूटने वाले महान् बन्धन को भी पुराने पण्डितों ने तोड़ कर हिमालय में प्रवेश कर प्रव्रज्या ग्रहण की।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक दरिद्र गृहस्थ के घर में पैदा हुआ। उसके बड़े होने पर पिता मर गया। वह नौकरी करके माता को पालने लगा।

उसके अनिच्छा प्रकट करने पर भी उसकी माँ ने उसे एक लड़की ला दी; और स्वयं मर गयी। उसकी भार्या की कोख में गर्भ रह गया। उसे नहीं मालूम था कि भार्या की कोख में गर्भ है। उसने कहा––"भद्रे! तू नौकरी चाकरी करके अपना पालन-पोषण कर। मैं प्रव्रजित होऊँगा।"

उसने उत्तर दिया––"मेरी कोख में गर्भ है। बच्चे को देखकर प्रव्रजित होना।"

बोधिसत्व ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और उसके बच्चे को जन्म देने पर पूछा––भद्रे! तूने कुशलपूर्वक बच्चे को जन्म दिया। अब मैं प्रव्रजित होऊँ?

उसने कहा कि जब तक बच्चा स्तन का दूध पीता है, तब तक प्रतीक्षा करें। इस बीच में वह फिर गर्भवती हो गयी। उसने सोचा इसकी रजामन्दी से जाना न हो सकेगा! इसे बिना कहे ही भाग कर प्रव्रजित होऊँगा। वह बिना कहे ही रात को उठकर भाग गया। उसे नगर-रक्षकों ने पकड़ा। बोधिसत्व ने कहा––"स्वामी! मैं 'माँ का पोषण करने वाला हूँ'। मुझे छोड़ दें।"

उनसे अपने आप को छुड़ा एक स्थान पर ठहर, मुख्य द्वार से ही निकल बोधिसत्व ने हिमालय में प्रवेश किया। वहाँ ऋषियों के प्रव्रज्या क्रम के अनुसार प्रव्रजित हो अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ध्यान-क्रीड़ा में रत हो रहने लगा।

वहाँ रहते हुए 'ऐसे दुष्करता से तोड़े जा सकने वाले पुत्र-दारा के प्रति आसक्ति के बन्धन को भी तोड़ते हैं' उल्लास-वाक्य कहते हुए उसने यह गाथाएँ कहीं––

न तं बळ्हं वन्धनमाहु धीरा,
यदायसं दारुजं बब्बजञ्च;

सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु,
पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥
एतं दळहं बन्धनमाहु धीरा,
ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं;
एतम्पि छेत्वान वजन्ति धीरा,
अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय ॥

[लोहे के, लकड़ी के या बब्बड़ (की रस्सी) के जो बन्धन हैं, धीर-जन उन्हें (असली) बन्धन नहीं मानते। यह जो मणि में, कुण्डलों में, आसक्ति है, यह जो पुत्र-दारा की अपेक्षा है; धीर-जन इन्हें दृढ़ बन्धन मानते हैं। यह नीचे गिराने वाले हैं; शिथिल हैं और कठिनाई से दूर होते हैं। धीर-जन इन्हें भी छोड़ कर, काम-भोगों के सुख को छोड़, अपेक्षा रहित हो चल देते हैं।]

धृतिमान् को ही **धीर**। धिक्कार किया पापों को इसलिए **धीर** या **धी** का मतलब है प्रज्ञा; उस प्रज्ञा से युक्त **धीर बुद्ध**, प्रत्येक-**बुद्ध**, बुद्ध-श्रावक और बोधिसत्व––यह ही धीर हैं। **यदायसं** आदि में **यं** जंजीर आदि लोहे से बना हुआ **आयसं, अन्दुबन्धन**। **बब्बज्च**, जो बब्बढ़-तृण या अन्य वलकल आदि की रस्सी से बना हुआ रस्सी-बन्धन। **तं धीरा दळहं**, मजबूत नहीं कहते। **सारस-रत्ता**, अधिक अनुरक्त होकर आसक्त; बहुत राग से अनुरक्त **मणिकुण्डलेसु**, मणि में और कुण्डलों में अथवा मणियुक्त कुण्डलों में।

एतं दळहं, जो मणिकुण्डलों में अत्यन्त अनुरक्त हैं; उन्हीं का जो राग है, **या** उनकी पुत्र-द्वारा में अपेक्षा है, तृष्णा है; इस बन्धन को ही धीर-जन दृढ़ बन्धन कहते हैं। **ओहारिनं**, निकाल कर चार नरकों में गिराते हैं; उतारते हैं; नीचे ले जाते हैं; इसलिए **ओहारिनं**। **सथिलं** जहाँ बन्धन पड़ा होता है उस जगह की चमड़ी या मांस नहीं छिलता; खून भी नहीं निकलता; 'बन्धन पड़ा है' यह भी पता नहीं लगने देते इसलिए सिथिल। **दुप्पमुञ्च**, तृष्णा-लोभ रूप से एक बार भी पैदा हुआ बन्धन उसी तरह कठिनाई से पीछा छोड़ता है जैसे एक बार किसी को पकड़ लेने पर कछुआ। **एतम्पि छेत्वान**, ऐसा दृढ़ बन्धन भी ज्ञान रूपी तलवार से काट कर धीर-जन लोहे की **जंजीर** तोड़ने वाले मस्त

हाथी की तरह, पिंजरे को तोड़ने वाले सिंह-बच्चे की तरह, वस्तु-कामना तथा वासना को कूड़ा फेंकने के स्थान को घृणा करने की तरह **अनपेक्खिनो** होकर **कामसुखं पहाय वजन्ति,** चल देते हैं। चल देकर, हिमवन्त में प्रविष्ट हो ऋषियों के प्रव्रज्या क्रम से प्रव्रजित हो ध्यान-सुख में रत रहते हैं।

इस प्रकार बोधिसत्व यह उल्लास-वाक्य कह, ध्यान-युक्त हो, ब्रह्मलोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों का प्रकाशन किया। सत्यों के अन्त में कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी तथा कोई अर्हत हुए।

उस समय माता महामाया थी। पिता शुद्धोदन महाराजा। भार्या राहुलमाता। पुत्र राहुल। पुत्र-दारा को छोड़, निकल कर प्रव्रजित होने वाला पुरुष मैं ही था।

२०२. केळिसील जातक

"**हंसा कोञ्चा मयूरा च...**" यह शास्ता ने जेतवन में विहरते समय आयुष्मान् लकुण्टक भद्दिय के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

वह आयुष्मान् बुद्ध-शासन में प्रसिद्ध थे, सर्व-विदित थे, मधुर-स्वर वाले थे, मधुर-धर्मोपदेशक थे, पटिसम्भिदा-ज्ञान प्राप्त थे, महा-क्षीणास्रव थे, लेकिन साथ ही थे अस्सी स्थविरों में कद के ठिगने, श्रामणेर की तरह बौने, खेलने के लिए बनाये खिलौने की तरह छोटे।

एक दिन जब वह तथागत को प्रणाम कर जेतवन के कोठे में गये थे, देहात के तीस भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने की इच्छा से जेतवन आये। उन्होंने विहार के दरवाजे पर स्थविर को देख 'कोई श्रामणेर है' समझ, स्थविर को चीवर के सिरे से पकड़, हाथों से पकड़, सिर से पकड़, नाक को रगड़, कान पकड़, घसीटते हुए, हाथ से गुदगुदी उठाते हुए पात्रचीवर सौंप शास्ता के पास गये। वहाँ शास्ता को प्रणाम कर बैठे। शास्ता ने मधुरवाणी से कुशल-क्षेम पूछा। तब वे बोले—'भन्ते! लकण्टुक भद्दिय नाम के आपके एक शिष्य स्थविर मधुर-भाषी धर्मोपदेशक हैं। वह इस समय कहाँ हैं?'

"भिक्षुओं, क्या उसे देखना चाहते हो?"

"भन्ते! हाँ।"

"भिक्षुओं, जिसे तुम द्वार-कोठे पर देख, चीवर के कोने आदि से पकड़ हाथ से छेड़ते हुए आये, वही यह है।"

"भन्ते! इस तरह का प्रार्थी,[1] इस तरह का उच्चाभिलाषी[2] किस कारण से इसने छोटे आकार का पैदा हुआ?"

---

१. जिसने पूर्व-बुद्धों के पास प्रार्थना की।

२. जिसने पूर्व-जन्म में ऊँची अभिलाषा से सत्कर्म किए।

"अपने पूर्व-कृत पापकर्म के कारण।" उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व देवेन्द्र शक्र हुए। उस समय ब्रह्मदत्त जीर्ण जरा-प्राप्त हाथी, घोड़े वा बैल को नहीं देख सकता था; देखते ही क्रीड़ा करने की इच्छा से उसका पीछा करता था। पुरानी गाड़ी देख कर तुड़वा देता; वृद्ध स्त्रियों को देख, उन्हें बुलवा, उनके पेट पर प्रहार दिलवा, उन्हें गिरवा, फिर उठवा डरवाता। वृद्ध आदमियों को देख बाजीगर की तरह कलाबाजियाँ खिलवाता। न दिखाई देने की अवस्था में यदि यह सुन भी लेता कि अमुक घर में वृद्ध मनुष्य है, तो उसे बुलवा कर खेलता।

मनुष्य लज्जित होकर अपने-अपने माता-पिता को विदेशों में भेजने लगे। माता की सेवा, पिता की सेवा का कर्त्तव्य टूटने लगा। राजसेवक भी क्रीड़ा-प्रिय हो गये। मर-मरकर चारों नरक भरने लगे। देव-परिषद् घटने लगी। शक्र ने नये देवपुत्रों को न देख सोचा कि क्या कारण है? जब उसे पता लगा तो शक्र ने निश्चय किया कि उसका दमन करूँगा। वह बूढ़े आदमी की शक्ल बना, पुरानी गाड़ियों पर मट्ठे की दो चाटियाँ रख, दो बूढ़े बैल जोत, एक उत्सव के दिन जब ब्रह्मदत्त अलंकृत हाथी पर चढ़ अलंकृत नगर में घूम रहा था, स्वयं चीथड़े पहने हुए उस गाड़ी को हाँक कर राजा के सामने पहुँचा।

राजा ने पुरानी गाड़ी को देख कहा--इसे हटाओ।

मनुष्यों ने पूछा--देव, गाड़ी कहाँ है। दिखाई नहीं देती।

शक्र के प्रताप से गाड़ी केवल राजा को ही दिखाई देती थी।

शक्र ने राजा के पास बार बार आ उसके ऊपर की ओर रथ हाँकते हुए राजा के सिर पर एक चाटी फोड़ दी। राजा भीग गया। उसने दूसरी फोड़ दी। उसके सिर से इधर-उधर से मट्ठा चूने लगा। राजा घबराया, हैरान हुआ, घृणा करने लगा।

जब शक्र ने देखा कि राजा घबरा रहा है तो अपने रथ को अन्तर्धान कर शक्र का असली रूप बना बज्र हाथ में ले आकाश में खड़े हो कहा--अरे पापी अधार्मिक राजा ! क्या तू बूढ़ा न होगा ? तेरे शरीर पर बुढ़ापा आक्रमण न करेगा ? क्रीड़ा-प्रिय होकर वृद्धों को कष्ट देता है। तेरे एक के कारण यह करतूत करके मरने वाले नरक भर रहे हैं। आदमियों को माता-पिता की सेवा करनी नहीं मिलती। यदि इस कर्म से बाज नहीं आयेगा तो बज्र से तेरा सिर फोड़ दूंगा। इसके बाद से ऐसा कर्म मत करना।

इस प्रकार डराकर, माता-पिता के गुण कह, बड़ों की सेवा का माहात्म्य प्रकाशित कर, उपदेश दे, शक्र अपने निवास-स्थान को चला गया।

राजा ने उसके बाद वैसा करने का विचार भी नहीं किया।

शास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा कह अभिसम्बुद्ध हुए रहने पर यह गाथाएँ कहीं--

हंसा कोञ्चा मयूरा च हत्थियो पसदा मिगा,
सब्बे सीहस्स भायन्ति नत्थि कायस्मि तुल्यता ॥
एवमेव मनस्सेसु दहरो चेपि पञ्ञवा,
सोहि तत्थ महा होति नेव बालो सरीरवा ॥

[हंस, क्रौञ्च, मोर; हाथी तथा चितकबरा-मृग सभी सिंह से डरते हैं। शरीर से बड़ा-छोटा नहीं होता। इसी प्रकार मनुष्यों में चाहे आयु का छोटा हो, लेकिन यदि वह बुद्धिमान है तो वह ही बड़ा है। बड़े शरीर वाला मूर्ख बड़ा नहीं होता।]

पसदामिगा, पसद नामक मृग, पसद मृग तथा शेष मृग भी अर्थ है। **पसद-मिगा,** भी पाठ है। पसद मृग अर्थ है। **नत्थि कायस्मि तुल्यता,** शरीर से बड़ा छोटा नहीं है; यदि हो तो बड़े शरीर वाले पसद-मृग और हाथी सिंह को मार डालें। सिंह हंसादि क्षुद्र शरीर वालों को ही मारे। छोटे ही सिंह से डरें, बड़े नहीं; ऐसा नहीं है। इसलिए सभी सिंह से डरते हैं। **सरीरवा मूर्ख बड़े शरीर**

वाला होने पर भी बड़ा नहीं होता। इसलिए **लकुण्टक भद्दिय** यद्यपि शरीर से छोटा है; इससे यह न समझो कि वह ज्ञान में भी छोटा है।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में उन भिक्षुओं में से कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी तथा कोई अर्हत हो गये।

उस समय राजा लकुण्टक भद्दिय था। उसके क्रीड़ा-प्रिय होने से दूसरे क्रीड़ा-प्रिय हो गये। शक्र मैं ही था।

⊙

२०३ खन्धवत्त जातक

"विरूप क्खेहि मे मेत्तं. . ." इसे शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

जिस समय वह अग्नि-गृह[1] के द्वार पर लकड़ियाँ चीर रहा था, पुराने वृक्ष में से एक साँप ने निकल कर उसे पाँव की उँगलियों में डसा। वह वहीं मर गया। उसके मरने की खबर सारे विहार में फैल गयी।

धर्मसभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलायी—आयुष्मानों ; अमुक भिक्षु अग्नि-गृह के दरवाजे पर लकड़ियाँ फाड़ता हुआ सर्प से डसा जाकर वहीं मर गया।

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, यदि वह भिक्षु चारों सर्प-राज कुलों के प्रति मैत्री भावना करता, उसे सर्प न डसता। पुराने तपस्वी भी, जिस समय बुद्ध उत्पन्न नहीं हुए थे उस समय चारों सर्पराज-कुलों के मैत्री भावना कर, उन सर्प-राज-कुलों से जो भय था उससे मुक्त हुए।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी राष्ट्र में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर गृहस्थी छोड़ ऋषियों

---

१. जन्ताघर, जिसमें आग जलाकर स्वेद-स्नान लेते थे।

के प्रव्रज्या क्रम से प्रव्रजित हो, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, हिमवन्त प्रदेश में एक जगह जहाँ गङ्गा का मोड़ था आश्रम बना कर, ध्यान-क्रीड़ा में रत हो, ऋषिगणों के साथ रहने लगे।

उस समय नाना प्रकार के सर्प ऋषियों को बाधक होते थे। अधिकांश ऋषि मर जाते। तपस्वियों ने बोधिसत्व से यह बात कही। बोधिसत्व ने सभी तपस्वियों को इकट्ठा कर कहा--"यदि तुम चारों सर्पराज-कुलों के प्रति मैत्रीभावना करो, तुम्हें सर्प नहीं डसेंगे। अब से चारों सर्पराज-कुलों के बारे में इस प्रकार मैत्री भावना करो।"

विरूपक्खेहि मे मेत्तं मेत्तं एरापथेहि मे,
छब्यापुत्तेहि मे मेत्तं मेत्तं कण्हागोतमकेहि च ॥

[विरूपक्खों के प्रति मैं मैत्री-भाव रखता हूँ; एरापथों के प्रति भी मेरी मैत्री है। छब्यापुत्रों के प्रतिमेरी मैत्री है और मैत्री है कण्हागोतमों के प्रति।]

विरूपक्खेहि मे मेत्तं, विरूपक्ख नागराज-कुल के प्रति मेरा मैत्री-भाव है। **एरापथ** आदि में भी इसी प्रकार। यह **एरापथ** नागराज-कुल, **छब्यापुत्त** नागराजकुल और **कण्हागोतम** नागराज-कुल ही हैं।

इस प्रकार चार नागराज-कुल दिखाकर कहा कि यदि तुम इनके प्रति मैत्रीभावना कर सको तो तुम्हें सर्प नहीं डसेंगे, कष्ट नहीं देंगे। इतना कह दूसरी गाथा कही--

अपादकेहि मे मेत्तं मेत्तं दिपादकेहि मे,
चतुप्पदेहि मे मेत्तं मेत्तं बहुप्पदेहि मे ॥

[जिनके पैर नहीं हैं उनसे मेरी मैत्री है, जिनके दो पैर हैं उनसे मेरी मैत्री है, जिनके चार पैर हैं उनसे मेरी मैत्री है और जिनके अनेक पैर हैं उनसे मेरी मैत्री है।]

पहले पद से विशेष रूप से सभी पैर-रहित सर्पों तथा मछलियों के प्रति मैत्री-भावना कही गयी। दूसरे पद से मनुष्यों तथा पक्षियों के प्रति। तीसरे से हाथी घोड़े आदि सभी चतुष्पदों के प्रति। चौथे पद से बिच्छू, गूजर, कीड़े-मकौड़े आदि के प्रति।

इस प्रकार **मैत्री-भावना** का क्रम बता अब प्रार्थना-क्रम कहते हुए यह गाथा कही—

मा मं अपादको हिंसि मा मं हिंसि दिपादको,
मा मं चतुप्पदो हिंसि मा मं हिंसि बहुप्पदो॥

[जो पैर-रहित हैं वे मेरी हिंसा न करें, जो द्विपद हैं वे मेरी हिंसा न करें, जो चतुष्पद हैं वे मेरी हिंसा न करें और जो अनेक पैर वाले हैं वे भी मेरी हिंसा न करें।]

मां मं इस प्रकार 'उन पैर-रहित आदि में कोई एक भी मेरी हिंसा न करे मुझे कष्ट न दे' प्रार्थना करते हुए **मैत्री-भावना** करो—यही अर्थ है।

अब सामान्य रूप से भावना-क्रम प्रकट करते हुए यह गाथा कही—

सब्बे सत्ता सब्बे पाणा सब्बे भूता च केवला,
सब्बे भद्रानि पस्सन्तु मा कञ्चि पापमागमा॥

[सभी सत्व, सभी प्राणी, सारे के सारे जीव; सभी का कल्याण हो। किसी को दुःख न हो।]

तृष्णा-दृष्टि के कारण संसार में, पाँच स्कन्धों में आसक्त, विशेष आसक्त होने से **सत्ता** (सक्ता)। स्वास प्रश्वास कहलाने वाले प्राण के कारण **प्राणी**। भूत (जीवित) भावित (जीने वालों) का जन्म होने से **भूता**। इस प्रकार जानना चाहिए कि वचन-मात्र की ही विशेषता है। सामान्य तौर पर इन सभी

पदों का अर्थ सभी प्राणी ही है। **केवला** सकल; यह सर्व शब्द का ही पर्याय-वाची है। **भद्रानि पस्सन्तु**, यह सभी प्राणी कल्याण को ही प्राप्त हों। **मा कञ्चि पापमागमा**, इनमें से किसी एक भी प्राणी को दुःख न हो। सभी वैर-रहित क्रोध-रहित, सुखी तथा दुःख-रहित हों।

इस प्रकार सामान्य रूप से सभी प्राणियों के प्रति मैत्री-भावना की बात कह तीनों रत्नों के गुणों की याद दिलाने के लिए कहा—

अप्पमाणो बुद्धो अप्पमाणो धम्मो अप्पमाणो संघो।

सीमित (प्रणाम-सहित) विकारों का अभाव होने से और गुण असीम (अप्रमाण) होने से बुद्ध-रत्न असीम (अप्रमाण) है; धर्म, **नौ प्रकार**[1] का लोकोत्तर धर्म; उसकी भी सीमा नहीं की जा सकती इसलिए असीम (अप्रमाण)। उस असीम (अप्रमाण) धर्म से युक्त होने के कारण संघ भी असीम (अप्रमाण)।

इस प्रकार बोधिसत्व उन तीनों रत्नों के गुणों को स्मरण करने के लिए कह तभी उन तीन रत्नों के गुणों का असीम होना दिखा सीमित प्राणियों के बारे में बोले—

पमाणनिन्ता व सिंरिसपानि अहिविच्छका,
सतपदी उण्णानाभि सरबूमूसिका।

[रेंगने वाले, सर्प, बिच्छू, गूजर, मकड़ी तथा छिपकली—यह सब सीमा वाले हैं।]

सिंरिसपा सब दीर्घाकार प्राणियों का यह नाम है। वे सरक कर चलते हैं वा सिर से चलते हैं, इसलिए **सिंरिसपा**। अहि आदि उनके स्वरूप का

---

१. चार मार्ग, चार फल तथा निर्वाण।

वर्णन किया गया है। तत्थ **उण्णानाभि** मकड़ी, उसकी नाभि से ऊन सदृश सूत निकलता है; इसलिए उण्णानाभि कहलाती है। **सरबू** छिपकली।

इस प्रकार बोधिसत्व ने 'क्योंकि इनके अन्दर जो रागादि हैं वह सीमा वाले धर्म हैं, इसलिए ये सिरिंसप आदि सीमा वाले हैं, दिखा 'तीनों असीम रत्नों के प्रताप से यह सीमा वाले रात-दिन रक्षा करें' कह तीनों रत्नों के गुणों का अनुस्मरण करने को कहा। उसके आगे जो कर्त्तव्य है वह बताने के लिए यह गाथा कही—

> **कता मे रक्खा कता मे परित्ता,**
> **पटिक्कमन्तु भूतानि सोहं नमो भगवतो;**
> **नमो सत्तन्नं सम्मासम्बुद्धानं ॥**

[मैंने अपनी हिफाजत कर ली, मैंने अपना परित्राण कर लिया। (हानि-कर) जीव दूर हों। मैं भगवान् (बुद्ध) को और सात सम्यक् सम्बुद्धों[1] को प्रणाम करता हूँ।]

कता में रक्खा, रत्नत्रय का गुणानुस्मरण कर मैंने अपनी रक्षा, हिफाजत कर ली। **कता मे परित्ता** मैंने अपना परित्राण भी कर लिया। **पटिक्कमन्तु भूतानि,** मेरा अहित चिन्तन करने वाले प्राणी चले जायें, दूर हों। **सोहं नमो भगवतो,** सो मैं इस प्रकार अपनी रक्षा कर पूर्व के परिनिर्वाण को प्राप्त हुए बुद्ध **भगवतो, को** नमस्कार करता हूँ। **नमो सत्तन्नं सम्मा सम्बुद्धानं** विशेष रूप से अतीत के क्रम से परिनिर्वाण को प्राप्त हुए सात बुद्धों को नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार नमस्कार करते हुए भी सात बुद्धों का अनुस्मरण करो, (करके) बोधिसत्व ने ऋषिगण को यह परित्राण-धर्मदेशना रच कर दी।

आरम्भ में दो गाथाओं द्वारा चारों सर्पराज-कुलों में मैत्री-भावना प्रकट

---

१. **देखो महापदान सुत्त (दीर्घनिकाय)।**

की होने से, विशेष रूप से तथा सामान्य रूप से दोनों मैत्री-भावनाएँ प्रकट की होने से, यह परित्राण-धर्मदेशना ला यहाँ दी गयी है। और कारण खोजना चाहिए।

उस समय से ऋषियों का समूह बोधिसत्व के उपदेशानुसार चल मैत्री-भावना करने लगा। बुद्ध के गुणों का स्मरण करने लगा। इस प्रकार उनके बुद्ध-गुणों का स्मरण करने ही पर सब साँप चले गये। बोधिसत्व भी ब्रह्म-विहारों की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ऋषि-गण बुद्ध-परिषद् थी। गण का शास्ता तो मैं ही था।

⊙

२०४. वीरक जातक

"अपि वीरक पस्सेसि...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बुद्ध का रंग-ढंग बनाने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त की परिषद् लेकर स्थविरों के लौट आने पर शास्ता ने पूछा—सारिपुत्तो ! तुम्हें देखकर देवदत्त ने क्या किया ?

"भन्ते ! सुगत का रंग-ढंग बनाया।"

"सारिपुत्तो ! न केवल अभी देवदत्त मेरी नकल करके विनाश को प्राप्त हुआ। पहले भी प्राप्त हुआ है।"

स्थविरों के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में जल-कौवे की योनि में पैदा हो एक तालाब के पास रहते थे। उनका नाम था वीरक।

उस समय काशी देश में अकाल पड़ा। मनुष्य कौओं को भोजन देने या यक्ष-नाग वलिकर्म करने में असमर्थ हो गये। अकाल-पीड़ित प्रदेश से अधिकांश कौवे जंगल चले गये। वाराणसी वासी सविट्ठक नाम का एक कौआ अपनी कौवी को ले वीरक के निवास स्थान पर जा, उस तालाब के पास एक ओर रहने लगा।

एक दिन उसने उस तालाब में शिकार खोजते हुए वीरक को तालाब में उतर, मछलियाँ खा, बाहर निकल, शरीर को सुखाते देख सोचा—इस कौवे के आश्रय से मुझे बहुत मछलियाँ मिल सकती हैं। इसकी सेवा करूँ।

वह कौवे के पास गया । कौवे ने पूछा––

"सौम्य ! क्यों" ?

"स्वामी ! तुम्हारी सेवा में रहना चाहता हूँ ।"

उसके 'अच्छा' कह स्वीकार करने पर उस समय से सेवा करने लगा। तब से वीरक भी अपने गुजारे लायक खा मछलियाँ निकाल कर सविट्ठक को देता । वह भी अपने गुजारे लायक खा बाकी कौवी को देता ।

आगे चलकर उसको अभिमान हो गया । वह सोचने लगा–– यह जल कौआ भी काला है । मैं भी काला हूँ । मेरे और इसके आँख, चोंच तथा पैरों में भी कोई भेद नहीं है । अब से इसकी पकड़ी हुई मछलियों से मुझे सरोकार नहीं । मैं स्वयं पकड़ूँगा । बोला––"सौम्य ! अब से मैं स्वयं तालाब में उतर कर मछलियाँ पकड़ूँगा ।" वीरक ने मना किया––"तू पानी में उत्तर मछलियाँ पकड़ने वाले कुल में पैदा नहीं हुआ । तू अभिमान करता है ।" वह वीरक की बात न मान तालाब में उतरा । पानी में प्रवेश कर ऊपर आते समय काई को छेद कर बाहर नहीं निकल सका । काई में ही फँस गया । केवल चोंच का अगला भाग दिखायी दिया । वह साँस घुट कर पानी के अन्दर ही मर गया ।

उसकी भार्या ने जब उसे आता न देखा तो वह उसका समाचार जानने के लिए वीरक के पास गयी । उसने "स्वामी ! सविट्ठक दिखायी नहीं देता। इस समय वह कहाँ है ?' पूछते हुए पहली गाथा कही––

अपि वीरक पस्सेसि सकुणं मञ्जुभाणकं,
मयूरगीवसंकासं पतिं मय्हं सविट्ठकं ।।

[वीरक ! क्या मधुरभाषी, मोर पक्षी की सी गर्दनवाले मेरे पति सविट्ठक को देखते हो ?]

अपि वीरक पस्सेसि स्वामी ! वीरक भी दिखायी देता है ? **मञ्जुभाणकं,** सुन्दर-भाषी; वह राग के कारण अपने पति को मधुरभाषी समझती है । इसलिए ऐसा कहा । **मयूरगीवसंकासं,** मोर की गर्दन के समान वर्ण वाला ।

यह सुन वीरक ने 'हाँ, मैं जानता हूँ कि तेरा स्वामी कहाँ गया है' कह दूसरी गाथा कही—

उदकथलचरस्स पक्खिनो निच्चं आमकमच्छभोजिनो,
तस्सानुकरं सविट्ठको सेवाले पळिगुण्ठितो मतो ॥

[सविट्ठक जल और स्थल पर चलने वाले, नित्य कच्ची मछली खाने वाले, पक्षी की नकल करने जाकर काई में फँस कर मर गया।]

———

उदकथलचरस्स, जो जल और स्थल में चलने में समर्थ है। **पक्खिनो**, अपने सम्बन्ध में कहता है। **तस्सानुकरं** उसकी नकल करता हुआ। **पळिगुण्ठितो मतो**, पानी में घुस काई को छेद कर बाहर न निकल सकने के कारण, काई में उलझ कर पानी के अन्दर ही मर गया। देख, उसकी चोंच दिखायी देती है।

———

इसे सुन कौवी रो-पीट कर वाराणसी ही चली गयी।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। तब सविट्ठक देवदत्त था। वीरक मैं ही था।

⊙

२०५. गङ्गेय जातक

"सोभति मच्छो गंगेय्यो...." यह शास्ता ने जेतवन में बिहार करते समय दो तरुण भिक्षुओं के बारे में कही ।

क. अतीत कथा

वे दो श्रावस्ती-वासी कुलपुत्र बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो अशुभ-भावना में न लग रूप के प्रशंसक हो, रूप को ही प्यार करते हुए घूमते थे । एक दिन उन दोनों में रूप को लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ । एक ने कहा—मैं शोभा देता हूँ । दूसरे ने कहा--तू नहीं शोभा देता; मैं शोभा देता हूँ । कुछ ही दूर पर एक वृद्ध स्थविर को बैठे देख उन्होंने सोचा--यह जानेंगे । हम में से कौन शोभनीय है, कौन नहीं ? उन्होंने पास जाकर पूछा हम से कौन सुन्दर है ? स्थविर ने उत्तर दिया--तुम दोनों से मैं ही सुन्दर हूँ ।

तरुण भिक्षुओं ने कहा, यह बूढ़ा जो हम पूछते हैं वह न बता, जो नहीं पूछते हैं वही कहता है । वे उसकी निन्दा कर चले गये ।

उनकी वह करतूत भिक्षु-संघ में प्रकट हो गयी । एक दिन धर्मसभा में बातचीत चली—आयुष्मानों, वृद्ध स्थविर ने उन रूप-प्रिय तरुण भिक्षुओं को लज्जित कर दिया । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओं, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? "यह बातचीत" कहने पर "भिक्षुओं, यह दो तरुण केवल अभी रूप-प्रशंसक नहीं हैं; यह पहले भी रूप को ही प्यार करते हुए विचरते थे" कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गङ्गा के किनारे वृक्ष-देवता थे । उस समय गङ्गा-यमुना के सङ्गम पर गङ्गेय और यामुनेय नाम की दो मछलियाँ थीं । वे आपस में विवाद करने लगीं--मैं

शोभा देती हूँ, तू नहीं शोभती। इस प्रकार रूप के बारे में विवाद करते हुए उन्होंने थोड़ी दूर पर गंगा के किनारे पड़े एक कछुए को देखकर सोचा–यह जानेगा कि हम में कौन सुन्दर है? कौन असुन्दर ? उसके पास जाकर उन्होंने पूछा––सौम्य ! गङ्गेय सुन्दर है ? अथवा यामुनेय ?

कछुए ने कहा—गङ्गेय भी सुन्दर है, यामुनेय भी सुन्दर है; लेकिन मैं तुम दोनों से अधिक सुन्दर हूँ।

इस बात को प्रकट करते हुए उसने पहली गाथा कही––

सोभति मच्छो गंगेय्यो अथो सोभति यामुनो,
चतुप्पदायं पुरिसो निग्रोधपरिमण्डलो;
ईसकायतगीवो च सब्बेव अतिरोचति ॥

[गङ्गेय मछली शोभा देती है, यामुनेय भी शोभा देती है; लेकिन यह चार पैरों वाला, बड़-वृक्ष की तरह गोलाकार, गाड़ी की बल्ली की तरह लम्बी गर्दन वाला (पुरुष) सब से अधिक सुन्दर।]

———

चतुप्पदायं, यह चतुष्पाद **पुरिसो** अपने बारे में कहता है। **निग्रोध परिमण्डलो**, अच्छी तरह उत्पन्न न्यग्रोध वृक्ष की तरह गोलाकार। **ईसकायतगीवो** रथ की छड़ की तरह लम्बी बल्ली वाला। **सब्बेव अतिरोचति** इस प्रकार के आकार वाला कछुआ सबसे बढ़कर सुन्दर है, तुम दोनों से बढ़कर शोभा देता है।

———

मछलियों ने उसकी बात सुन 'अरे पापी कछुए ! हमारी पूछी बात का उत्तर न दे, दूसरी ही कहता है' कह दूसरी गाथा कही––

यं पुच्छितो न तं अक्खा अञ्ञं अक्खासि पुच्छितो,
असप्प संसको पोसो नायं अस्माक रुच्चति ॥

[जो पूछा है वह नहीं कहता; पूछने पर दूसरी बात कहता है। यह अपनी ही प्रशंसा करने वाला पुरुष हमें अच्छा नहीं लगता।]

अत्तप्पसंसको, अपनी प्रशंसा करने वाला, अपनी बड़ाई करने वाला पुरुष। **नायं अस्माक रुच्चति** यह पापी कछुआ हमें अच्छा नहीं लगता, रुचिकर नहीं है। वे कछुए के ऊपर पानी फेंक अपने निवास स्थान को गयीं।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय दो मछलियाँ तरुण भिक्षु थे। कच्छप बूढ़ा था। इस बात को प्रत्यक्ष करने वाला गंगा-तट पर पैदा हुआ वृक्ष-देवता मैं ही था।

२०६. कुरुङ्गमिग जातक

"इङ्घं वद्धमयं पासं . ." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय यह सुनकर कि देवदत्त बध के लिए प्रयत्न करता है शास्ता ने कहा, 'भिक्षुओं, न केवल अभी देवदत्त मेरे वध के लिए प्रयत्नशील है, उसने पहले भी कोशिश की है।' इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कुरुङ्ग-मृग की योनि में पैदा हो जंगल में एक तालाब के पास एक झाड़ी में रहता था। उसी तालाब के नजदीक वृक्ष पर एक कठफोड़ा[1] और तालाब में कछुआ रहता था। वे तीनों परस्पर प्रेम से रहते थे।

एक शिकारी जंगल में घूमते हुए पानी पीने के स्थान पर बोधिसत्व के पैरों का चिन्ह देख लोहे की जंजीर सदृश फँदे वा जाल लगा कर गया।

बोधिसत्व पानी पीने आकर (रात्रि के) पहले पहर में ही फँस गये; तब फँस जाने की आवाज की। उसकी आवाज सुन वृक्ष-शाखा पर से कठफोड़ा और पानी में से कछुआ आया। उन्होंने सलाह की——क्या किया जाये? कठफोड़े ने कछुवे को सम्बोधन कर कहा——मित्र! तेरे दाँत हैं। तू जाल को काट। मैं जाकर ऐसा करूँगा जिसमें वह आने न पाये। इस प्रकार हम दोनों के प्रयत्न से हमारे मित्र की जान बचेगी।

इस बात को प्रकट करते हुए यह गाथा कही——

---

१ कठफोड़ा = शतपत्र।

इङ्घं वद्धमयं पासं छिन्द दन्तेहि कच्छप,
अहं तथा करिस्सामि यथा नेहृति लुद्दको ॥

[देख कछुए ! तू दाँतों से चमड़े के जाल काट। मैं वैसा करूँगा जिससे शिकारी आने न पावे।]

कछुए ने चमड़े की डोरी खानी शुरू की। कठफोड़वा शिकारी के घर गया। शिकारी प्रातःकाल ही शक्ति लेकर निकला। पक्षी ने यह जान कि वह घर से निकल रहा है आवाज कर, परों को फड़फड़ा कर आगे के द्वार से निकलते हुए उसके मुँह पर चोट की। शिकारी ने सोचा--मनहूस पक्षी ने मुझ पर प्रहार किया।

वह रुका, थोड़ी देर लेट, फिर शक्ति लेकर उठा। 'पहले यह आगे के द्वार से निकला, अब पीछे के द्वार से निकलेगा' सोच पक्षी जाकर घर के पीछे की ओर बैठा। शिकारी ने भी यह सोचा--आगे के द्वार से निकलते समय मैंने मनहूस पक्षी देखा। अब पिछले द्वार से निकलूंगा। वह पीछे के द्वार से निकला। पक्षी ने फिर जाकर आवाज लगा मुँह पर चोट की। शिकारी ने कहा--फिर मुझ पर मनहूस पक्षी ने चोट की। यह मुझे निकलने नहीं देता। वह रुका, अरुणोदय तक लेटा रहा; फिर अरुणोदय होने पर शक्ति लेकर निकला।

पक्षी ने जल्दी से जाकर बोधिसत्व को सूचना दी कि शिकारी आ रहा है। उस समय तक कछुए ने एक को छोड़ शेष सभी डोरियाँ काट डाली थीं। उसके दांत गिरने वाले हो गये थे; मुँह लहू से लाल हो गया था। बोधिसत्व शिकारी को शक्ति लिए बिजली की तेजी से आता देख बन्धन तोड़ वन में जा घुसा। पक्षी वृक्ष-शाखा पर जा बैठा। कछुआ दुर्बलता के कारण वहीं पड़ा रहा। शिकारी ने कछुए को एक थैले में डाल किसी ठूंठ पर रख दिया।

बोधिसत्व ने रुक कर देखा तो पता लगा कि कछुआ पकड़ा गया। उसने सोचा--मित्र की जान बचाऊँगा। तब उसने अपने आपको शिकारी को ऐसे दिखाया जैसे बहुत दुर्बल हो गया हो। शिकारी ने सोचा--यह (और) दुर्बल होगा; इसे मारूँगा। उसने शक्ति ले बोधिसत्व का पीछा किया। बोधिसत्व न बहुत दूर, न बहुत नजदीक चलते हुए उसे ले जंगल में गये। जब जाना कि दूर

निकल आये तब मुड़ कर दूसरे रास्ते से हवा की तेजी से जा, सींग से थैली उठा जमीन पर गिरा, फाड़ कर कछुए को बाहर निकाला। कठफोड़ा भी वृक्ष पर से नीचे उतरा। बोधिसत्व ने दोनों को उपदेश देते हुए कहा—तुम्हारी सहायता से मेरे प्राण बचे। मैंने भी तुम्हारे प्रति मित्र का कर्तव्य पालन किया। अब कहीं शिकारी आकर तुम्हें पकड़ न ले; इसलिए मित्र कठफोड़, तू अपने पुत्रों को ले दूसरी जगह चला जा; और मित्र कछुए तू पानी में जा।

उन्होंने वैसा ही किया। शास्ता ने बुद्ध होने पर दूसरी गाथा कही—

कच्छपो पाविसी वारिं कुरुङ्गो पाविसी वनं
सतपत्तो दुमग्गम्हा दूरे पुत्ते अपानयि ॥

[कछुआ पानी में जा घुसा। कुरुङ्ग वन में चला गया। कठफोड़ा वृक्ष-शाखा पर से अपने पुत्रों को दूर ले गया।]

अपानयि, अपनयि अर्थात् लेकर चला गया।

शिकारी वहाँ आ किसी को न देख फटी थैली ले दु:खी चित्त से अपने घर गया। वे भी तीनों मित्र जीवन भर विश्वास बना रखकर यथाकर्म गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, जातक का मेल बैठाया।

उस समय शिकारी देवदत्त था। कठफोड़ा सारिपुत्र। कछुआ मोग्गल्लान। कुरुङ्ग-मृग तो मैं ही था।

⊙

२०७. अस्सक जातक

"अयमस्सकराजेन...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व भार्या के लोभन के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा——क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?

"हाँ सचमुच।"

"किसने उत्कण्ठित किया?"

"पूर्व-भार्या ने।"

शास्ता ने कहा——भिक्षु, उस स्त्री का तेरे प्रति स्नेह नहीं है। पहले भी तू उसके कारण महान् दुःख भोग चुका है।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में काशी राष्ट्र के पोतली[1] नाम के नगर में अस्सक नामक राजा राज्य करता था। उसकी उब्बरी नाम की पटरानी थी। वह प्रिया थी, मनोज्ञ थी, सुन्दर थी, दर्शनीय थी और थी मानुषिक और दिव्य-वर्ण के बीच के वर्ण की। वह मर गयी। उसकी मृत्यु से राजा शोकाभिभूत हुआ। उसे दुःख हुआ और वह दौर्मनस्य को प्राप्त हुआ। उसने रानी का शरीर द्रोणी में, तेल की कढ़ाई में रखवा उसे अपनी चारपाई के नीचे रखवाया। फिर स्वयं बिना कुछ खाये-पीये रोता-पीटता हुआ चारपाई पर पड़ा रहा।

माता-पिता, अन्य रिश्तेदार, मित्र अमात्य तथा ब्राह्मण गृहपति आदि

---

१. 'पोतन' भी पाठ है।

"महाराज ! संसार अनित्य है..." कहते हुए उसे होश में न ला सके। उसके रोते-पीटते ही सात दिन बीत गये।

उस समय पाँच अभिञ्ञा तथा आठ समापत्तियों के लाभी, तपस्वी होकर हिमवन्त प्रदेश में विचरते हुए बोधिसत्व ने प्रकाश-फैला दिव्य-चक्षु से जम्बु-द्वीप को देखते हुए उस राजा को उस प्रकार रोते देखा। 'मुझे इसकी सहायता करनी चाहिए' सोच ऋद्धिबल से आकाश में उड़ राजा के बाग में उतर मंगल शिला-तट पर सोने की प्रतिमा की तरह बैठे।

पोतली नगर वासी एक ब्राह्मण-माणवक उद्यान में जा, बोधिसत्व को देख प्रणाम करके बैठा।

बोधिसत्व ने उससे बातचीत कर पूछा--माणवक ! क्या राजा धार्मिक है ?

"भन्ते ! हाँ राजा धार्मिक है। लेकिन उसकी भार्या मर गयी है। वह उसके शरीर को द्रोणी में रखवा रोता-पीटता लेटा है। आज उसे सातवाँ दिन हो गया। तुम राजा को इस प्रकार के दुःख से क्यों मुक्त नहीं करते ? क्या यह ठीक है कि तुम्हारे जैसे शीलवान् के रहते राजा इस प्रकार का दुःख अनुभव करे ?"

"माणवक ! मैं राजा को नहीं जानता। लेकिन यदि वह आकर मुझे पूछे तो मैं उसे उसकी भार्या का जन्म ग्रहण करने का स्थान बताकर, राजा के सामने ही उससे बातचीत करवाऊँ।"

"भन्ते ! तो मैं जब तक राजा को लेकर आऊँ तब तक आप यहीं बैठें।"

माणवक ने बोधिसत्व से वचन ले राजा के पास जा वह बात सुनाकर कहा--उस दिव्य-चक्षुधारी के पास चलना चाहिए।

राजा यह सोच कि उब्बरी को देख सकूँगा सन्तुष्ट हो रथ पर चढ़ वहाँ गया। बोधिसत्व को प्रणाम कर उनसे पूछा--क्या तुम सचमुच देवी के जन्म ग्रहण करने की जगह जानते हो ?

"महाराज ! हाँ।"

"वह कहाँ पैदा हुई है ?"

"महाराज ! उसने रूप में मत्त होने के कारण, प्रमादवश कोई अच्छा

काम नहीं किया। इसलिए वह इसी उद्यान में गोबर के कीड़े की योनि में पैदा हुई।"

"मैं विश्वास नहीं करता।"

"तो तुझे दिखा कर उससे कहलवाता हूँ।

"अच्छा, कहलवाएँ।"

बोधिसत्व ने अपने प्रताप से ऐसा किया कि दो गोबर-पिण्ड लुढ़कते हुए राजा के सामने आये। बोधिसत्व ने उसे दिखाते हुए कहा—"महाराज! यह तेरी उब्बरी देवी तुझे छोड़ गोबर के कीड़े के पीछे-पीछे आती है। उसे देखें।"

"भन्ते! मैं विश्वास नहीं करता कि उब्बरी गोबर के कीड़े की योनि में जन्म ग्रहण करेगी।"

"महाराज! उससे कहलवाता हूँ।"

"भन्ते! कहलवायें।"

बोधिसत्व ने अपने प्रताप से उसे बुलवाते हुए पूछा—उब्बरी। उसने मानुषी वाणी में कहा—हाँ भन्ते! क्या?

"पूर्व-जन्म में तेरा क्या नाम था?"

"भन्ते! मैं अस्सक राजा की उब्बरी नाम की पटरानी थी"

इस समय तुझे अस्सक राजा प्रिय है वा गोबर का कीड़ा।"

"भन्ते। वह मेरा पूर्व-जन्म था; उस समय मैं उसके साथ इस बाग में रूप, शब्द, गन्ध, रस तथा स्पर्श का आनन्द लेती हुई विचरती थी। लेकिन अब जब से मेरा नया जन्म हुआ है, वह मेरा क्या लगता है? मैं अब अस्सक राजा को मारकर उसकी गर्दन के खून से अपने स्वामी गोबर के कीड़े के पैरों को धो सकती हूँ"

यह कह परिषद के बीच में आदमियों की भाषा में उसने ये गाथाएँ कहीं—

अयमस्सकराजेन देसो विचरितो मया,
अनुकामयानुकामेन पियेन पतिना सह ॥
नवेन सुखदुक्खेन पोराणं अपिथीयति,
तस्मा अस्सकरञ्ञाव कीटो पियतो मयं ॥

[परस्पर एक दूसरे की कामना करते हुए अपने प्रिय पति इस अस्सक राजा के साथ मैंने इस प्रदेश में विचरण किया। नये सुख-दुःख से पुराना सुख-दुःख ढक जाता है। इसलिए अस्सक राजा की अपेक्षा यह कीड़ा ही मेरा अधिक प्रिय है।]

अयमस्सकराजेन देसो विचरितो मया इस रमणीक उद्यान-प्रदेश में पहले मैंने अस्सक राजा के साथ विचरण किया। **अनुकामयानुकामेन; अनु** निपात मात्र है। मैं उसकी कामना करती, वह मेरी कामना करता। इस प्रकार परस्पर कामना करते हुए के साथ। **पियेन** उस जन्म में प्रिय।

नवेन सुखदुक्खेन पोराणं अपिथीयति, भन्ते ! नये सुख से पुराना सुख नये दुःख से पुराना दुःख ढक जाता है। यही लोक-स्वभाव है—प्रकट करती है। **तस्मा अस्सकञ्ञाव कीटो पियतरो मम;** क्योंकि नवीन से पुराना ढक जाता है। इसलिए अस्सक राजा की अपेक्षा कीड़ा मुझे सौ गुणा प्रिय है।

इसे सुन अस्सक राजा को पश्चात्ताप हुआ। उसने वहाँ खड़े ही खड़े लाश निकलवा सिर से स्नान कर बोधिसत्व को प्रणाम किया। फिर नगर में प्रवेश कर दूसरी पटरानी बना धर्म से राज्य करने लगा।

बोधिसत्व भी राजा को उपदेश दे शोक-रहित कर हिमवन्त चले गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में उत्कण्ठित (भिक्षु) स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय उब्बरी पूर्व-भार्या थी। अस्सक राजा उत्कण्ठित भिक्षु था। माणवक सारिपुत्र। तपस्वी तो मैं ही था।

२०८. संसुमार जातक

"अलमेतेहि अम्बेहि . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय देवदत्त के वध करने के प्रयत्न के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने यह सुन कि देवदत्त वध के लिए प्रयत्न करता है, कहा--भिक्षुओं, न केवल अभी देवदत्त मेरे वध करने का प्रयत्न करता है, उसने पहले भी किया है; लेकिन त्रास मात्र भी पैदा नहीं कर सका।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में बन्दर की योनि में पैदा हुए। वह हाथी सदृश बल वाले, शक्ति-सम्पन्न, महान् शरीर धारी, अति सुन्दर थे। गंगा के मोड़ पर जंगल में रहते थे।

उस समय गंगा में एक मगरमच्छ रहता था। उसकी भार्या ने बोधिसत्व को देखा। उसके मन में उसका मांस खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। उसने मगरमच्छ से कहा--स्वामी! इस कपिराज का कलेजा खाना चाहती हूँ।

"भद्रे! हम जल-चर, वह स्थल-चर; क्या हम उसे पकड़ सकेंगे?"

"जिस किसी भी तरह हो पकड़, यदि नहीं मिलेगा, मर जाऊँगी।"

"तो डर मत। एक उपाय है। मैं तुझे उसका कलेजा खिलाऊँगा।"

उसे आश्वासन दे मगरमच्छ, जिस समय बोधिसत्व गंगा का पानी पी गंगा-तट पर बैठा था, बोधिसत्व के पास गया और बोला—वानरराज! यहाँ इन अस्वादिष्ट फलों को खाते हुए तू अभ्यस्त स्थान में ही चरता है? गंगा-पार आम, कटहल के मधुर फलों की सीमा नहीं। क्या तुम्हें गंगा-पार जाकर फल-मूल नहीं खाने चाहिए?

"मगरराज ! गंगा में पानी बहुत है। वह विस्तृत है। मैं उधर कैसे जाऊँ ?"

"यदि चलें तो मैं तुझे अपनी पीठ पर चढ़ा कर ले जाऊँगा।"

उसने उसका विश्वास कर 'अच्छा' कह स्वीकार किया। 'तो आ मेरी पीठ पर चढ़' कहने पर चढ़ गया। मगरमच्छ थोड़ी दूर जा उसे डुबाने लगा। बोधिसत्व ने पूछा—दोस्त ! यह क्या ? मुझे पानी में डुबा रहा है।

"मैं तुझे धर्म-भाव से नहीं ले जा रहा हूँ। मेरी भार्या के मन में तेरे कलेजे के लिए दोहद उत्पन्न हुआ है। मैं उसे तेरा कलेजा खिलाना चाहता हूँ।"

"दोस्त ! तूने कह दिया सो अच्छा किया। यदि हमारे पेट में कलेजा हो तो एक शाखा से दूसरी शाखा पर घूमते हुए चूर्ण-विचूर्ण हो जाए।"

"तो तुम कहाँ रखते हो ?"

बोधिसत्व ने पास ही पके फलों से लदा हुआ एक गूलर का पेड़ दिखाकर कहा--देख, हमारे कलेजे इस गूलर के पेड़ पर लटकते हैं।

"यदि मुझे कलेजा दे, तो मैं तुझे नहीं मारूँगा।"

"तो आ मुझे वहाँ ले चल। मैं तुझे वृक्ष पर लटका हुआ दूँगा।"

वह उसे लेकर वहाँ गया। बोधिसत्व ने उसकी पीठ पर से छलाँग मार गूलर की शाखा पर बैठ कहा—सौम्य ! मूर्ख मगरमच्छ ! तूने यह मान लिया कि इन प्राणियों का कलेजा वृक्ष की शाखाओं पर होता है। तू मूर्ख है। मैंने तुझे ठगा है। तेरे फल-मूल तेरे ही पास रहें। तेरा शरीर ही बड़ा है। अकल नहीं है।

यह कह, इसी बात को प्रकट करते हुए गाथाएँ कहीं--

अलमेतेहि अम्बेहि जम्बूहि पनसेहि च,
यानि पारं समुद्दस्स वरं मय्हं उदुम्बरो ॥
महती वत ते बोन्दि न च पञ्ञा तदूपिका,
संसुमार वञ्चितो मेसि गच्छ दानि यथासुखं ॥

[यह जो तू समुद्र-पार आम, जामुन और कटहल बताता है, मुझे यह नहीं चाहिए। मुझे गूलर ही अच्छा है। तेरा शरीर बड़ा है; लेकिन तेरी प्रज्ञा उसके समान नहीं। मगरमच्छ ! तू मेरे द्वारा ठगा गया है। अब तू सुख पूर्वक जा।]

अलमेतेहि, जो तूने द्वीप में देखे, वह मुझे नहीं चाहिए। **वरं मय्हं उदुम्बरो** मुझे यह उदुम्बर वृक्ष ही अच्छा है। **बोन्दि** शरीर। **तद्रूपिका**, तेरी प्रज्ञा तेरे शरीर के अनुकूल नहीं है। **गच्छदानि यथासुखं** अब सुखपूर्वक जा; तेरे (लिए) कलेजा नहीं है।

मगरमच्छ (जुए में) हजार हार जाने की तरह दुःखी, दौर्मनस्य को प्राप्त हो, चिन्ता करता हुआ अपने निवास-स्थान को चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मगर-मच्छ देवदत्त था। मगरमच्छी चिञ्चामाणविका। कपिराज तो मैं ही था।

⊙

२०९. कक्कर जातक

"दिट्ठा मया वने रुक्खा..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय धर्मसेनापति सारिपुत्र के शिष्य तरुण भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह अपने शरीर की रक्षा करने में होशियार था। शरीर के लिए सुखकर न होगा, इस डर से किसी अति-शीत वा अति-उष्ण चीज का उपयोग न करता था। सर्दी-गर्मी से शरीर को कष्ट होगा, इस डर से बाहर नहीं निकलता था। बहुत पका या जला भात नहीं खाता था। उसकी वह शरीर रक्षा की होशियारी संघ में प्रकट हो गयी। धर्मसभा से भिक्षुओं ने बातचीत चलायी--आयुष्मानों! अमुक तरुण शरीर-रक्षा के काम में होशियार है।

शास्ता ने आकर पूछा--भिक्षुओं, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? "यह बातचीत" कहने पर "भिक्षुओं! यह तरुण अपने शरीर-रक्षा के काम में न केवल अभी होशियार है, पहले भी होशियार था।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व जंगल में वृक्ष-देवता हुए।

एक चिड़ीमार पालतू बटेर, बालों का फंदा तथा लाठी ले जंगल में बटेरों को फँसाता हुआ, भाग कर जंगल में चले गये एक बटेर को फाँसने लगा। वह बाल के फंदे में होशियार होने के कारण फंदे में नहीं आता था। वह उठ-उठ कर छिप जाता।

शिकारी अपने आपको शाखा-पत्तों से ढक बार-बार लकड़ी और फंदा लगाता। बटेर ने उसे लज्जित करने के लिए मानुषी भाषा बोलते हुए पहली गाथा कही--

दिट्ठा मया वने रुक्खा अस्सकण्णविभीटका,
न तानि एवं सक्कन्ति यथा त्वं रुक्ख सक्कसि ॥

[मैंने इस वन के अनेक अस्सकण्ण (अश्वकर्ण) और विभीटका (बिभीतक) वृक्ष देखे; लेकिन तू वृक्ष जिस तरह से इधर-उधर चलता है; वह नहीं चलते ।]

मित्र शिकारी **मया** इस **वने** पैदा हुए बहुत से अस्सकण्ण तथा विभीटक देखे । **तानि** वृक्ष **यथा त्वं सक्कसि**, तू संक्रमण करता है, इधर-उधर विचरता है **एवं न सक्कन्ति**, नहीं संक्रमण करते हैं, नहीं विचरते हैं ।

ऐसा कह वह बटेर भाग कर दूसरी जगह चला गया । उसके भाग जाने के समय चिड़ीमार ने दूसरी गाथा कही--

पुराणक्करो अयं भेत्वा पञ्जरमागतो,
कुसलो वाळपासानं अपक्कमति भासति ॥

[यह पुराना बटेर पिंजरा तोड़ कर चला आया । बाल के फंदे में होशियार परिहास कर के चल देता है ।]

कुशलो वाळपासानं, बाल के फंदे में होशियार अपने को न बाँधने देकर **अपक्कमति** और **भासति**, बोलकर भाग जाता है । ऐसा कह चिड़ीमार जंगल में घूम जो मिला लेकर घर गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय शिकारी देवदत्त था । बटेर अपनी शरीर-रक्षा करने में होशियार तरुण भिक्षु । उस बात को प्रत्यक्ष देखने वाला वृक्ष-देवता तो मैं ही था ।

⊙

२१०. कन्दगळक जातक

"**अम्भो कोनामयं रुक्खो...**" यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय सुगत का रंग-ढंग बनाने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

तब शास्ता ने यह सुन कि देवदत्त ने सुगत का रंग-ढंग बनाया कहा—"भिक्षुओं! न केवल अभी देवदत्त मेरी नकल करके विनाश को प्राप्त हुआ, पहले भी प्राप्त हुआ है।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व हिमवन्त प्रदेश में कठफोर पक्षी होकर उत्पन्न हो खदिरवन में ही रहने लगे। उसका नाम खदिरवनी ही हो गया। उसका एक कन्दगळक नाम का मित्र था। वह पाळिभद्दक वन में रहता था। एक दिन वह खदिरवनी के पास गया। खदिरवनी ने 'मेरा मित्र आया है' सोच कन्दगळक को ले खदिरवन में प्रवेश कर खदिर के तने को चोंच से ठोंगे मार कीड़े निकाल कर दिये। कन्दगळक जो-जो पाता मीठे पुए की तरह तोड़-तोड़कर खाता। उसे खाते समय ही अभिमान हो गया। यह भी कठफोर योनि में पैदा हुआ है, मैं भी। मुझे इसके दिये शिकार से क्या प्रयोजन, मैं स्वयं ही शिकार करूँगा। उसने खदिरवनी से कहा—"मित्र! तू कष्ट मत उठा। मैं स्वयं ही खदिरवन में शिकार करूँगा।"

उसने उसे कहा—"मित्र! तू सेमर पाळिभद्दक आदि वन में निस्सार लकड़ी में शिकार करने वाले कुल में पैदा हुआ है। खदिर की लकड़ी सारवान् होती है, कठोर होती है। तू यह इच्छा मत कर।"

कन्दगळक बोला—क्या मैं कठफोर की योनि में पैदा नहीं हुआ? उसने

उसका कहना न मान जल्दी से जा खदिर वृक्ष पर चोंच से ठोंगें मारीं। उसी समय उसकी चोंच टूट गयी। आँखें बाहर निकली-सी हो गयीं। सीस फट गया। वह तने पर खड़ा न रह सकने के कारण जमीन पर गिरा और पहली गाथा कही--

अम्भो को नामयं रुक्खो सीनपत्तो सकण्टको
यत्थ एकप्पहारेन उत्तमङ्गं विसाटितं ॥

[भो ! इस पतले पत्तों वाले काँटेदार वृक्ष का क्या नाम है, जिस पर एक ही चोट करने से मेरा सिर फट गया।]

अम्भो को नामयं रुक्खो, भो खदिरवनी ! इस वृक्ष का क्या नाम है ? को नाम सो यह भी पाठ है। **सीनपत्तो** सूक्ष्म पत्तों वाला। **यत्थ एकप्पहारेन,** जिस वृक्ष पर एक ही चोट लगाने से **उत्तमगं विसाटितं** सिर फूट गया, न केवल सिर ही फूटा चोंच भी टूट गयी। वह वेदना से पीड़ित हो खदिर-वृक्ष को न जान सका कि यह खदिर-वृक्ष है, और इस गाथा से विलाप किया--

---

इसे सुन खदिरवनी ने दूसरी गाथा कही—

अचारुतायं[1] वितुदं वनानि कट्ठङ्गरुक्खेसु असारकेसु,
अथासदा खदिरं जातसारं यत्थब्भिदा गरुळो उत्तमङ्गं ॥

[अभी तक सार-रहित काठ वृक्षों वाले वनों को ठोंग मारी। अब यह सारवान् खदिर-वृक्ष को प्राप्त हुआ; जहाँ पक्षी ने सिर तुड़वाया।]

अचारुतायं, उसने आचरण किया। **वितुदं वनानि** सार रहित सेमर पाळि-रद्दक के वन आदि को ठोंग मारते हुए बींधते हुए। **कट्ठंगरुक्खेसु असारकेसु** बन की सामान्य लकड़ी सार रहित पाळि भद्दक सेमर आदि में। **अथासदा खदिरं**

---

१. **अचारितायं भी पाठ है।**

जातसारं छोटेपन से सारवान् खदिर-वृक्ष को प्राप्त हुआ। **यत्थब्भिदा** जिस खदिर वृक्ष से लग कर तोड़ लिया फाड़ लिया **गरुळो** पक्षी। सभी पक्षियों के लिए आदर का शब्द है।

खदिरवनी ने उसे यह सुना कर कहा--कन्दगळक ! जहाँ तूने सिर तुड़ाया यह खदिर नाम का सारवान् वृक्ष है। वह वहीं मर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना सुना जातक का मेल बैठाया।

उस समय कन्दगळक देवदत्त था। खदिरवनी तो मैं ही था।

⊙

दूसरा परिच्छेद

७. बीरणत्थम्भक वर्ग

२११. सोमदत्त जातक

"**अकासि योग्गं....**" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय लालुदायी स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

दो तीन जनों के बीच में वह एक शब्द भी न बोल सकता। अधिक लज्जाशील होने के कारण कुछ कहने जाकर कुछ दूसरा ही कह देता। धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षु उसके बारे में चर्चा कर रहे थे। शास्ता ने आकर पूछा--"भिक्षुओं, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो।" "अमुक बातचीत" "भिक्षुओं, लालुदायी केवल अभी अधिक लज्जाशील नहीं है पहले भी लज्जाशील ही रहा है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशीदेश में एक ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में विद्या सीख घर लौटे। यह देख कि माता-पिता बहुत दरिद्र हैं, उसने सोचा कि दुर्गति को प्राप्त माता-पिता की अवस्था सुधारूँगा। माता-पिता की आज्ञा ले वह वाराणसी जा राजा की सेवा में रहने लगा। वह राजा को प्रिय हुआ उसके मन को अच्छा लगने वाला हुआ।

उसका बाप दो बैलों से खेती कर पेट पालता था। एक बैल मर गया।

उसने बोधिसत्व से कहा––तात ! एक बैल मर गया। खेती नहीं होती। राजा से एक बैल माँग। "तात ? राजा की सेवा में रहते थोड़े ही दिन हुए हैं। अभी बैल माँगना ठीक नहीं। आप ही माँगें।"

"तात ! तू मेरे अधिक लज्जाशील होने को नहीं जानता ? मैं दो तीन जनों के सामने बोल नहीं सकता। यदि मैं राजा के पास बैल माँगने जाऊँगा ; तो यह भी देकर आऊँगा।"

"तात ! जो होना है सो हो। मैं राजा से नहीं माँग सकता। लेकिन मैं तुम्हें बोलने का अभ्यास करा दूँगा।"

"तो अच्छा, मुझे अभ्यास करा।"

बोधिसत्व उसे ऐसे श्मशान में ले गये, जहाँ बीरण-घास के झुंड थे। वहाँ घास के पूले बाँधकर 'यह राजा है', 'यह उपराजा हैं', 'यह सेनापति है' नाम रख क्रम से पिता को दिखा कर कहा––"तात ! तू राजा के पास जा 'महाराज की जय हो' कह, इस तरह यह गाथा कह बैल माँगना। गाथा सिखायी–

द्वे मे गोणा महाराज येहि खेत्तं कसामसे,
तेसु एको मतो देव दुतियं देहि खत्तिय ॥

[महाराज ! मेरे दो बैल थे, जिनसे खेती होती थी। देव ! उसमें से एक मर गया। राजन ! दूसरा दें।]

––––––

ब्राह्मण ने एक वर्ष में गाथा का अभ्यास कर बोधिसत्व को कहा––तात ! सोमदत्त ! मुझे गाथा (कहने) का अभ्यास हो गया। अब मैं इसे जिस किसी के सामने कह सकता हूँ। मुझे राजा के पास ले चल।

उसने कहा 'तात अच्छा' और योग्य भेंट लिवा पिता को राजा के पास ले गया। ब्राह्मण ने 'महाराज की जय हो' कह भेंट दी। राजा ने पूछा––

'सोमदत्त ! यह ब्राह्मण तेरा क्या लगता है ?'

"महाराज ! मेरा पिता है।"

"किस मतलब से आया है ?"

उस समय ब्राह्मण ने बैल माँगने के लिये गाथा कहते हुए कहा--

द्वे मे गोणा महाराज मेहि खेत्तं कसामसे,
तेसु एको मतो देव दुतियं गण्ह खत्तिय ॥

[महाराज! मेरे दो बैल थे जिनसे खेती होती थी । देव ! उनमें से एक मर गया । राजन् ! दूसरा लें।)

राजा ब्राह्मण से विमुख हो गया । उसके कहने का भाव जान मुस्कराया और बोला--सोमदत्त ! तुम्हारे घर में मालूम होता है बहुत बैल हैं।

महाराज ! आप देंगे तो हो जाएँगे ।"

राजा ने बोधिसत्व पर प्रसन्न हो ब्राह्मण को सोलह अलङ्कृत बैल और उसको रहने का गाँव ब्रह्मदान दे, बहुत से धन के साथ विदा किया।

ब्राह्मण सर्व श्वेत सैन्धव घोड़े जुते रथ पर चढ़ कर बहुत से अनुयायियों के साथ गाँव आया । बोधिसत्व ने रथ में बैठ, पिता के साथ आते हुए कहा--तात ! मैंने साल-साल तुम्हें अभ्यास कराया; लेकिन अन्त में तुमने अपना बैल राजा को दिया ।

इतना कह यह गाथा कही--

अकासि योग्गं धुवमप्पमत्तो
संवच्छरं बीरणत्थम्भकस्मि
व्याकासि सञ्ञं परिसं विगय्ह
न निय्यमो तायसि अप्पपञ्ञं ॥

(आलस्य रहित हो नित्य साल भर तक बीरण-घास के झुंडों वाले श्मशाम में अभ्यास किया ; लेकिन परिषद् में जाकर भूल गया । अल्प-प्रज्ञा आदमी का अभ्यास भी त्राण नहीं करता ।)

अकासि योग्गं धुवमप्पमत्तो संवच्छरं बीरणत्थम्भकस्मि, तू नित्य प्रमादरहित हो बीरण के झुंड वाले श्मशान में वर्ष भर अभ्यास करता रहा। **व्याकासि सञ्ञं परिसं विगय्ह,** परिषद् में आकर उस सञ्जा को विकृत कर दिया; मतलब

बदल दिया। **न निय्यमो तायति अप्पपञ्ञं,** अल्प प्रज्ञा वाले आदमी का नियम अभ्यास त्राण नहीं करता; रक्षा नहीं करता।

उसकी बात सुन ब्राह्मण ने दूसरी गाथा कही।

द्वयं याचनको तात सोमदत्त निगच्छति
अलाभं धनलाभञ्च एवंधम्मा हि याचना ॥

[तात सोमदत्त ! माँगने वाले की दो ही हालतें होती हैं—धन मिलता है या नहीं मिलता। माँगने का यह स्वभाव ही है।]

एवंधम्मा हि याचना; माँगने का यही स्वभाव है।

शास्ता ने "भिक्षुओं-लालुदायी केवल अभी अधिक लज्जाशील नहीं है, पहले भी अधिक लज्जाशील ही था" कह यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय सोमदत्त का पिता लालुदायी था। सोमदत्त मैं ही था।

२१२. उच्छिट्ठभत्त जातक

"अञ्ञो उपरिमो वण्णो...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व भार्या की आसक्ति के बारे में कही--

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने पूछा--भिक्षु, क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ?

"सचमुच।"

"तुझे किसने आकर्षित किया ?"

"पूर्व भार्या ने।"

"भिक्षु ! यह स्त्री तेरा अपकार करनेवाली है। पहले भी इसने तुझे अपने जार का जूठा खिलाया है।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व ने एक ऐसे दरिद्र नट के कुल में जन्म ग्रहण किया जो भीख माँगकर जीविका चलाता था। बड़े होने पर वह दरिद्र अवस्था को प्राप्त हो भीख माँग कर जीविका चलाने लगे।

उस समय काशी देश के एक गाँव में एक ब्राह्मण की ब्राह्मणी दुश्शीला थी, पापिनी थी, व्यभिचार करती थी। एक दिन किसी काम से जब ब्राह्मण बाहर गया तो उसका जार मौका देख घर में घुस आया। उसने उसके साथ अनाचार कर चुकने पर कहा--"कुछ अच्छा खा कर ही जाओगे ?" उसने भात तैयार कर दाल (=सूप) व्यञ्जन से युक्त भात परोस कर दिया कि तू खा। स्वयं ब्राह्मण के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई द्वार पर खड़ी हुई।

उस समय बोधिसत्व ब्राह्मणी के जार के खाने की जगह पर भीख की प्रतीक्षा में खड़े थे। तभी ब्राह्मण घर की तरफ आया। ब्राह्मणी ने उसे आते देख जल्दी से घर में जाकर जार को कहा—'उठ, ब्राह्मण आ रहा है' और उसे कोठे में उतार दिया। ब्राह्मण के घर में दाखिल हो बैठने के समय पीढ़ा तथा हाथ धोने को पानी दे जार के जूठे छोड़े ठंडे भात के ऊपर गरम भात परोस दिया। उसने जब भात में हाथ डाला तो ऊपर का भात गरम और नीचे का ठंडा पाया। वह सोचने लगा कि यह दूसरे का खाकर बचा हुआ जूठा भात होगा। उसने ब्राह्मणी से पूछते हुए पहली गाथा कही—

अञ्ञो उपरिमो वण्णो अञ्ञ वण्णोव हेट्ठिमो,
ब्राह्मणि त्वेव पुच्छामि किं हेट्ठा किं च उप्परि ॥

[ऊपर (के भात) का रंग-ढंग दूसरा है; नीचे (के भात) का दूसरा। ब्राह्मणी ! तुझे ही पूछता हूँ कि यह क्या ऊपर है और क्या नीचे ?]

वण्णो आकार। यह ऊपर वाले के गरम होने की और नीचे वाले के ठंड होने की बात पूछते हुए कहा। **किं हेट्ठा किञ्च उप्परि** परोसा हुआ भात ऊपर ठंडा और नीचे गरम होना चाहिए। यह वैसा नहीं है। इसलिए तुझे पूछता हूँ किस कारण से ऊपर का भात गरम और नीचे का ठंडा है ?

ब्राह्मणी अपनी करतूत के प्रकट हो जाने के भय से ब्राह्मण के बार-बार कहने पर भी चुप ही रही। उस समय बोधिसत्व को यह सूझा कि कोठे में बिठाया हुआ आदमी जार होगा और यह घर का स्वामी। ब्राह्मणी अपनी करतूत के प्रकट होने के भय से कुछ नहीं बोलती। हन्त ! मैं इसकी करतूत प्रकट कर जार के कोठे में बिठाए होने की बात कह दूँ।

उसने ब्राह्मण के घर से निकलने से जार के घर में प्रवेश करने, अनाचार करने, श्रेष्ठ भात खाने, ब्राह्मणी का दरवाजे पर खड़े हो रास्ता देखने और जार को कोठे में उतारने तक का सब हाल कह दूसरी गाथा कही—

अहं नटोस्मि भद्दन्ते भिक्खकोस्मि इधागतो,
अयं हि कोट्ठमोतिण्णो अयं सो यं गवेससि ॥

[स्वामी ! मैं नट हूँ । भीख माँगने के लिए यहाँ आया हूँ । यह है कोठे में उतरा हुआ और यह ही है जिसे तू खोजता है ।]

अहं नटोस्मि भद्दन्ते, स्वामी ! मैं नट जाति का हूँ । **भिक्खकोस्मि इधागतो,** मैं भिखमंगा यहाँ भीख माँगता हुआ आया हूँ । **अयं हि कोट्ठमोतिण्णो** यह इसका जार इस भात को खाता हुआ तेरे भय से कोठे में उतरा है । **अयं सो यं गवेससि,** जिसे तू खोज रहा है कि यह किसका जूठा भात होगा, वह यही है । 'इसे बालों से पकड़, कोठे से निकाल ऐसा कर जिसमें इसे होश रहे और फिर यह ऐसा पाप-कर्म न करे' कह चला गया ।

ब्राह्मण उन दोनों को डरा, पीट कर ऐसी शिक्षा दे जिसमें वे फिर ऐसा पाप-कर्म न करें कर्मानुसार गया ।

शास्ता ने यह यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यों के अन्त में उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ ।

उस समय ब्राह्मणी पूर्व-भार्या थी । ब्राह्मण उत्कण्ठित । नट-पुत्र मैं ही था ।

२१३. भरु जातक

"**इसीनमन्तरं कत्वा...**" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल राजाओं के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

भगवान् के भिक्षुसंघ का लाभ तथा सत्कार बहुत था। जैसे कहा है—"उस समय भगवान् का सत्कार होता था, गौरव होता था, मान होता था, पूजा होती थी, आदर होता था और उन्हें चीवर, पिण्डपात (भिक्षा), शयनासन, रोगी की दवाई आदि चीजें मिलती थीं; भिक्षुसंघ का भी सत्कार होता था, गौरव होता था, मान होता था, पूजा होती थी, आदर होता था और उसे चीवर, पिण्डपात, शयनासन, रोगी की दवाई आदि चीजें मिलती थीं। लेकिन दूसरे तैर्थिक परिव्राजकों का न सत्कार होता था, न गौरव होता था, न मान होता था, न पूजा होती थी, न आदर होता था और न उन्हें चीवर, पिण्डपात, शयनासन, रोगी की दवाई आदि चीजें ही मिलती थीं।" इस प्रकार जब उनका लाभ सत्कार जाता रहा तो वे दिन रात छिपकर इकट्ठे हो विचार करते कि जब से श्रमण गौतम को पैदा हो गया है तभी से हमारा लाभ सत्कार जाता रहा; श्रमण गौतम को ही श्रेष्ठ लाभ तथा यश मिलता है। क्या कारण है कि इसे यह सब मिलता है ?

कुछ ने कहा——श्रमण गौतम सकल जम्बूद्वीप में उत्तम स्थान श्रेष्ठ-भूमि पर रहता है। इसी से उसे लाभ सत्कार की प्राप्ति होती है। बाकी बोले——यही कारण है। हम भी जेतवन में तैर्थिक आश्रम बनवाएँ। इससे हमको भी लाभ होगा।

उन सब ने 'यह ठीक है' निश्चय कर सोचा——यदि हम राजा को बिना सूचित किये आश्रम बनवाएँगे तो भिक्षु रोक देंगे। कुछ पाकर पक्षपात न

करने वाला कोई नहीं है। इसलिए राजा को रिश्वत दे आश्रम के लिए जगह लेंगे।

यह सलाह कर, उपस्थापकों से माँग, राजा को लाख दे कहा—महा-राज ! हम जेतवन में तैर्थिक-आश्रम बनाएँगे। यदि भिक्षु तुम्हें कहें कि हम बनाने नहीं देंगे तो उनकी बात स्वीकार न करना।

राजा ने रिश्वत के लोभ से, 'अच्छा' कह स्वीकार किया। तैर्थिकों ने राजा को मिला बढ़इयों को बुलवा काम शुरू किया। बड़ा शोर हुआ। शास्ता ने पूछा—आनन्द ! यह हल्ला करने वाले, शोर मचाने वाले कौन हैं ?

"भन्ते ! अन्य तैर्थिक जेतवन में तैर्थिक-आश्रम बनवा रहे हैं। वहीं यह शोर हो रहा है।"

"आनन्द ! यह स्थान तैर्थिकों के योग्य नहीं है। तैर्थिक शोर प्रिय होते हैं। उनके साथ रहना नहीं हो सकता।"

शास्ता ने भिक्षु-संघ को एकत्र कर कहा—"भिक्षुओं, जाओ राजा को कह कर तैर्थिक-आश्रम का बनवाना रुकवाओ।"

भिक्षु जाकर राजा के प्रवेश द्वार पर खड़े हुए। राजा ने यह सुना कि भिक्षु आये हैं तो यह समझकर कि तैर्थिकों के आश्रम के ही बारे में आये होंगे रिश्वत लिए रहने के कारण कहलवा दिया कि राजा घर में नही हैं। भिक्षुओं ने जाकर शास्ता से कहा। शास्ता ने 'रिश्वत के कारण ऐसा करता है' सोच दोनों प्रधान शिष्यों को भेजा। राजा ने उनका भी आना सुन वैसे ही कहलवा दिया। उन्होंने भी आकर शास्ता से कहा।

'सारिपुत्र ! अब राजा को घर में बैठना न मिलेगा, बाहर निकलना ही होगा' कह शास्ता अगले दिन पूर्वाह्न समय पात्र चीवर ले पाँच सौ भिक्षुओं के साथ राजा के प्रवेश द्वार पर पहुँचे। राजा ने सुना तो वह महल से उतर पात्र ले शास्ता को (अन्दर) लिवा भिक्षुसंघ को, जिसमें मुख्य बुद्ध थे, यवागु-खाद्य दे, शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने राजा को एक तरह का धर्मोपदेश कहते हुए कहा—महाराज ! पुराने राजाओं ने रिश्वत ले शीलवानों में परस्पर झगड़ा कराया। वे अपने देश के स्वामी नहीं रहे और महान् विनाश को प्राप्त हुए।

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कहा—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में भरु राष्ट्र में भरु राजा राज्य करता था। उस समय बोधि-सत्व पाँच अभिञ्ञा तथा आठ समापत्ति प्राप्त थे। वे गण-शास्ता तपस्वी हो, हिमालय प्रदेश में चिरकाल तक रह नमक-खटाई खाने के लिए पाँच सौ तपस्वियों को साथ ले हिमवन्त से उतरे। क्रमशः भरु नगर पहुँच, वहाँ भिक्षा माँग, नगर से निकल, उत्तर-द्वार पर टहनी-टहनी वाले वट वृक्ष के नीचे बैठ, भोजन कर वहीं रहने लगे। इस प्रकार जब उस ऋषि-समूह को वहाँ रहते आधा महीना हुआ, एक दूसरा गण-शास्ता पाँच सौ तपस्वियों सहित आ, नगर में भिक्षा माँग, नगर से निकल, दक्षिण-द्वार पर उसी वट वृक्ष के नीचे बैठ, भोजन कर वहीं रहने लगा। वे दोनों ऋषि-समूह वहाँ यथारुचि रह कर हिमालय चले गये। उनके चले जाने पर दक्षिण-द्वार का वट वृक्ष सूख गया। अगली बार आने पर दक्षिण-द्वार के वट-वृक्ष के नीचे रहने वाले पहले पहुँच जब यह देखा कि उनका वट-वृक्ष सूख गया है, तो वे भिक्षा माँग, नगर से निकल, उत्तर-द्वार पर वट-वृक्ष के नीचे जा, भोजन कर वहीं रहने लगे। दूसरे ऋषि पीछे आकर, नगर में भिक्षा माँग, अपने वृक्ष के नीचे पहुँच भोजन कर वहाँ रहने लगे।

उन दोनों में 'यह तुम्हारा वृक्ष है' 'यह हमारा वृक्ष है' करके झगड़ा हो गया। झगड़ा बढ़ गया। एक पक्ष ने कहा कि हम यहाँ रहते थे, इसलिए इस स्थान पर तुम्हारा अधिकार नहीं। दूसरे ने कहा कि इस बार हम यहाँ पहले आये, इसलिए तुम्हारा अधिकार नहीं। इस प्रकार वे दोनों 'हम स्वामी' 'हम स्वामी' करके वृक्ष के नीचे की जगह के लिए झगड़ा करते हुए राज-कुल गये। राजा ने पहले रहे ऋशि-समूह को ही स्वामी बनाया। दूसरों ने कहा अब हम यह नहीं कहलायेंगे कि इनसे हार गये। उन्होंने दिव्य-चक्षु से चक्र-वर्ती राजा के योग्य एक रथ का चौखटा देख, ला, राजा को रिश्वत दे कहा—महाराज! हमें भी (उस स्थान का) स्वामी बनाएँ।

राजा ने रिश्वत ले दोनों समूह रहें (कह) दोनों को स्वामी बनाया। दूसरे ऋषियों ने उस रथ के चौखटे के रत्नों के पहिए लाकर रिश्वत दे कहा——महाराज! हमें ही स्वामी करें।

राजा ने वैसा ही किया।

ऋषियों ने सोचा कि हम काम भोगों को छोड़ प्रव्रजित हुए फिर वृक्ष के नीचे की जगह के लिए झगड़ते हुए रिश्वत देने लगे। हमने यह अनुचित किया। इसी प्रकार पश्चाताप कर वे जल्दी से भाग कर हिमालय ही चले गये।

सकल भरु राष्ट्रवासी देवताओं ने एकत्र होकर कहा——राजा ने शीलवानों में झगड़ा पैदा करके अच्छा नहीं किया। उन्होंने क्रोधित हो तीन सौ योजन के भरु राष्ट्र को समुद्र में तूफान लाकर नष्ट कर दिया। इस प्रकार एक भरु राजा के कारण सारा राष्ट्र विनाश को प्राप्त हुआ (कह) शास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा ला अभिसम्बुद्ध होने पर यह गाथायें कहीं——

इसीनमन्तरं कत्वा भरुराजाति मे सुतं,
उच्छिन्नो सहरट्ठेन स राजा विभवं गतो ॥
तस्मा हि छन्दागमनं नप्पसंसन्ति पण्डिता,
अदुट्ठचित्तो भासेय्य गिरं सच्चूसंहितं ॥

[ऐसा मैंने सुना कि ऋषियों में भेद करके भरु राजा अपने राष्ट्र सहित विनाश को प्राप्त हुआ। इसलिए पण्डित लोग पक्षपात की प्रशंसा नहीं करते। द्वेषरहित चित्त से सच्ची बात कह देनी चाहिए।]

अन्तरं कत्वा, पक्षपात के कारण भेद करके **भरु राजा** भरु राष्ट्र का राजा। **इति में सुतं** ऐसा मैंने पहले सुना। **तस्मा हि छन्दागमनं**, क्योंकि पक्षपात करके भरु राजा राष्ट्र सहित नष्ट हुआ। इसलिए पण्डित पक्षपात प्रशंसा नहीं करते **अदुट्ठचित्तो,** विकारों से मलिन चित्त न हो। **भासेय्य गिरं सच्चे पसंहितं** यथार्थ, अर्थयुक्त, सकारण वाणी ही बोले।

———

जिन्होंने भरु राजा के रिश्वत लेते समय 'यह उचित नहीं है' कह निन्दा करते हुए सच्ची बात कही, वे जहाँ खड़े थे वहाँ नारियल के द्वीप में आज भी हजारों दीपक (जलते) दिखायी देते हैं।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला 'महाराज, पक्षपात नहीं करना चाहिए, प्रव्रजितों में झगड़ा नहीं करना चाहिए' कह जातक का मेल बैठाया।

मैं उस समय में ज्येष्ठ ऋषि था।

राजा ने तथागत के भोजन करके चले जाने पर आदमियों को भेज कर तैर्थिकों का आश्रम विध्वंस करा दिया। तैर्थिक अप्रतिष्ठित हो गये। ●

२१४-पुण्यनदी जातक

पुण्णं नदिं . . .''यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय प्रज्ञा पारमिता के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक दिन धर्मसभा में भिक्षुओं ने तथागत की प्रज्ञा के बारे में बातचीत चलायी आयुष्मानों ! सम्यक् सम्बद्ध महाप्रज्ञा हैं, विस्तृतप्रज्ञा हैं, प्रसन्नप्रज्ञा हैं, क्षिप्रप्रज्ञा हैं; तीक्ष्ण-प्रज्ञा उनकी प्रज्ञा बींधने वाली है, वे उपाय कुशल है । शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओं ! यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर भिक्षुओं, तथागत केवल अभी प्रज्ञावान् तथा उपाय-कुशल नहीं हैं, पहले भी थे' कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व पुरोहित कुल में पैदा हुए । बड़े होने पर तक्षशिला जा सब शिल्प सीख पिता के मरने पर पुरोहित का पद पा राजा के अर्थधर्मानुशासक हुए ।

आगे चलकर राजा ने चुगली करने वालों की बात का विश्वास कर क्रोधित हो बोधिसत्व को 'मेरे पास मत रह' कह निकाल दिया । बोधिसत्व के गुणों की याद आयी । उसने सोचा कि किसी को भेज कर मेरे लिए आचार्य को बुलाना ठीक नहीं । एक गाथा रच, पत्र लिख, कौवे का मांस पकवा, सफेद वस्त्र में लपेट, राजकीय मोहर लगाकर भेजूंगा । यदि पण्डित होगा, पत्र पढ़कर कौवे के मांस का भाव समझ कर चला आयेगा । नहीं तो, नहीं आयेगा । उसने यह गाथा पत्र में लिखी—

पुण्णं नदिं येन च पेय्यमाहु
जातं यवं येवं च गुय्हमाहु ॥

दूरं गतं येन च अव्हयन्ति,
सो त्यागतो हन्द च भुञ्ज ब्राह्मण ।।

[जिसके पीने योग्य होने से नदी पूर्ण समझी जाती है, जिसको छिपा सकने योग्य होने से जौ उत्पन्न हुए समझे जाते हैं; जिसके बोलने से दूर गये आने वाले समझे जाते हैं; वह तेरे लिए आया है ब्राह्मण ! इसे खा ।]

पुण्णं नदिं येन च पेय्यमाहु, 'काकपेय्य नदी' कहते हुए पूर्णनदी को ही पेय्य कहते हैं । आपूर्ण नदी काकपेय्य नदी नहीं कहलाती; जब नदी किनारे खड़े हो गरदन पसार कर कौआ भी पी सकता है, तभी उसे काकपेय्य कहते हैं । **जातं यवं येन च गुय्हमाहु**, जौ शोर्षक मात्र है । यहाँ सभी पैदा हुई, उत्पन्न हुई, तरुण खेती से मतलब है । वह जब अन्दर दाखिल हुए कौवे को छिपा सकती है तभी गोपन करने वाली होने से गुय्ह कहलाती है । किसे छिपाती है ? कौवे को । इस प्रकार कौवे को छिपाने से काक-गुय्ह । कहने वाले (लोग) गुह्य-वचन का कारण कौवा होता है इसलिए काक-गुप्ह कहते हैं । इसलिए कहा है-- **येन चगुह्यमाहु, दूरं गतं येन च अव्ह्यन्ति** दूर गया हुआ प्रवासी प्रिय-जन होने पर; जिसके आकार बैठने पर (लोग) कहते हैं कि यदि अमुक नाम का व्यक्ति आने वाला है । तो कौवे बोल अथवा जिसके बोलने पर लोग समझते हैं क्योंकि कौवा बोलता है, इसलिए अमुक नाम का व्यक्ति आएगा; इस तरह कहने वाले जिसके कारण कहते हैं, विचार करते हैं, **सो त्यागतो** वह तेरे लिए लाया गया है । **हन्द च भुञ्ज ब्राह्मण**, ब्राह्मण ग्रहण कर, खा । मतलब इससे कौवे के मांस को खा ।

इस प्रकार राजा ने इसे पत्र में लिख बोधिसत्व के पास भेजा । उसने पत्र बाँच 'राजा मुझे देखना चाहता है' कह दूसरी गाथा लिखी—

यतो मं सरती राजा वायसम्पि पहेतवे,
हंसा कोञ्चा मयूरा च असतियेव पापिया ।।

(जब राजा कौवे का मांस पाकर भी मुझे भेजना याद रखता है, को हंस क्रौञ्च और मयूर की तो बात ही क्या ? याद न आना ही बुरा है ।)

यतो मं सरति राजा वायसम्पि पहेतवे, जब राजा कौवे का मांस पाकर भी मुझे उसे भेजना याद रखता है। **हंसा कोञ्चामयूरा च**, जब इसके लिए हंस आदि लाये जाएँगे, यह हंस मांस आदि पायेगा, तब मुझे क्यों न याद करेगा? अट्टकथा में **हंस कोञ्चयूरानं** पाठ है। वह सुन्दरतर है। अर्थ यही है कि इन हंस आदि का मांस पाकर मुझे क्यों न याद करेगा? **आंसतियेव पापिया** यह या वह मिलने पर याद आना ही अच्छा है। दुनिया में याद न आना ही बुरा है; याद न करना ही हीन है खराब है। वह हमारे राजा नहीं हैं। राजा मुझे याद करता है। मेरे आने की प्रतीक्षा करता है। इसलिए जाऊँगा।

गाड़ी कुड़वा, जाकर राजा को देखा राजा ने सन्तुष्ट हो पुरोहित का ही पद दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। पुरोहित मैं ही था।

२१५. कच्छप जातक

"**अवधी वत अत्तानं....**" यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय **कोकालिक** के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा **महातक्कारि**[1] **जातक** में आयेगी। उस समय शास्ता ने कहा—भिक्षुओं, **कोकालिक** केवल अभी अपनी वाणी से नहीं मारा गया, पहले भी मारा गया। यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व अमात्य-कुल में पैदा हो, बड़े होने पर उसके अर्थधर्मानुशासक हुए। वह राजा बहुत बोलने वाला था। वह बोलता तो दूसरों को बोलने का मौका न मिलता। बोधिसत्व उसकी वाचालता हटाने का कोई उपाय सोचते हुए घूमते थे।

उस समय हिमालय-प्रदेश के किसी तालाब में एक कछुआ रहता था। दो हंस बच्चों ने शिकार के लिए घूमते हुए उससे दोस्ती कर ली। उसके प्रति दृढ़ विश्वासी हो एक दिन हंस-बच्चों ने कछुवे से कहा—दोस्त कछुवे! हमारे हिमवन्त में चित्रकूट पर्वत के नीचे कञ्चन गुफा में रहने का रमणीक स्थान है। हमारे साथ चलेगा?

"मैं कैसे चलूंगा?"

"हम तुझे लेकर चलेंगे; यदि तू अपने मुँह पर काबू रख सकेगा, किसी को कुछ न कहेगा।"

स्वामी! काबू रखूंगा। मुझे लेकर चलें।"

---

[1] **महातक्कारि जातक (४८१)**

उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। एक लकड़ी को कछुवे के मुँह में दे, उसके दोनों सिरों को अपने मुंह में ले, वे आकाश में उड़े। उसे इस प्रकार हंसों द्वारा लिए जाते देख गाँव के लड़कों ने कहा—दो हंस कछुवे को डंडे पर लिए जाते हैं।

हंसों की गति तेज होने के कारण वे वाराणसी नगर के राजमहल के ऊपर आ पहुँचे थे। कछुवे ने "दुष्ट छोकरों ! यदि मेरे मित्र मुझे ले जाते हैं तो इसमें तुम्हारा क्या ?" कहने की इच्छा से उस लड़की को जहां से पकड़ा था छोड़ दिया। वह खुले आँगन में गिर दो टुकड़े हो गया। एक शोर हुआ—कछुआ खुले आँगन में गिर दो टुकड़े हो गया।

अमात्यों से घिरे हुए राजा ने बोधिसत्व को साथ ले उस जगह पहुँच, कछुवे को देख पूछा—पण्डित ! यह कैसे गिरा ?

बोधिसत्व ने सोचा—मैं बड़ी देर से राजा को उपदेश देने की इच्छा से किसी उपाय की खोज में घूमता हूँ। इस कछुवे की हँसों के साथ दोस्ती हुई होगी। वे 'इसे हिमवन्त ले चलें' सोच लकड़ी मुंह में दे आकाश में उड़े होंगे। इसने किसी की बात सुन जबान पर काबू न होने से कुछ कहने की इच्छा से डण्डा छोड़ दिया होगा। इस प्रकार आकाश से गिर कर मरा होगा। वह बोला—"हाँ ! महाराज ! जो वाचाल होते हैं; जिनके वचन की सीमा नहीं होती वे इस प्रकार दुःख को प्राप्त होते हैं।" इतना कह यह गाथाएँ कहीं—

अवधी वत अत्तानं कच्छपो व्यहारं गिरं,
सुग्गहीतस्मि कट्ठस्मि वाचाय सकिया वधि ॥
एतम्पि दिस्वा नरविरिय सेट्ठ !
वाचं पमुञ्चे कुसलं नातिवेलं;
पस्ससि बहुभाणेन कच्छपं व्यसनं गतं ॥

(कछुवे ने वाणी का प्रयोग करके अपने को मार डाला। अच्छी तरह लकड़ी को पकड़े हुए अपनी वाणी के कारण (उसे छोड़ कर) अपने को मारा। नरवीर्य श्रेष्ठ इसे भी देखकर (आदमी को) कुशल-वाणी ही बोलनी चाहिए और वह भी समय (की सीमा) लाँघ कर नहीं। देखते ही हो, अधिक बोलने से कछुवा मर गया।)

अवधी वत घात किया। **व्याहरं** व्यवहारं करते हुए। **सुग्गहीतस्मि कट्ठस्मि** मुख से अच्छी तरह लकड़ी को पकड़े हुए। **वाचाय सकिया वधि** वाचाल होने से अनुचित समय पर बोल कर पकड़ी हुई जगह को छोड़ अपनी उस वाणी के कारण अपने को मार डाला। इस प्रकार यह मरा। किसी दूसरे कारण से नहीं।

एतम्पि दिस्वा यह बात भी देखकर **नरविरिय सेट्ठ** नरों में श्रेष्ठ-वीर्य ! उत्तमवीर राजवर ! **वाचं पमुञ्चे कुसलं नातिवेलं** सत्यादि से युक्त कुशल वाणी ही पण्डित आदमी बोले; वह भी हितकर समयानुकूल। समय (की सीमा) लाँघ कर असीम वाणी न बोले; **पस्ससि** प्रत्यक्ष देखता है **बहुभाणेन** अधिक बोलने से **कच्छपं व्यसनं गतं**, यह कछुवा मर गया।

राजा ने 'मेरे लिए कह रहा है' सोच पूछा—पण्डित ! मेरे बारे में कह रहा है ?

बोधिसत्व—महाराज ! चाहे आप हों, चाहे कोई और हो; जो कोई सीमा लाँघ कर बोलता है वह इसी प्रकार दुःख भोगता है। यह स्पष्ट करके कहा।

उस समय से राजा संयम कर मितभाषी हो गया। शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय कछुआ कोकालिक था। दो हंस-बच्चे दो महास्थविर। राजा आनन्द। अमात्य पण्डित तो मैं ही था।

२१६. मच्छ जातक

"न मायमग्गि तपति. . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व-भार्या के आकर्षण के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे पूछा--भिक्षु ! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ? "भन्ते, सचमुच" कहने पर शास्ता ने पूछा—"किसने उत्कण्ठित किया ?" जवाब दिया--पूर्व-भार्या ने। शास्ता ने "भिक्षु ! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है। पहले भी तू इसके कारण काँटे से बींधा जाकर; अङ्गारों पर पकाया जाकर खाया जाने वाला था। पण्डित की सहायता से जान बची" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके पुरोहित हुए। एक दिन मछुए जाल में फँसे मच्छ को निकाल कर, गर्म-बालू पर डाल, 'उसे अङ्गारों में पका कर खाएँगे' सोच शूल तराशने लगे। मच्छ ने मछली के बारे में रोते हुए यह गाथा कही—

न मायमग्गि तपति न सूलो साधु तच्छितो,
यञ्च मञ्ञति मच्छी अञ्ञं सो रतिया गतो ॥
सो मं दहति रागग्गि चित्तं वूपतपेति मं,
जालिनो मुञ्चथयिरा मं न कामे हञ्ञते क्वचि ॥

---

१. देखो मच्छ जातक (१.४.३४)

[न मुझे, अग्नि तपाती है, न अच्छी तरह से छीला हुआ शूल ही। यह जो मुझे मछली समझेगी कि रति के कारण वह दूसरी मछली के पास चला गया इसी का मुझे शोक है। मुझे वह रागाग्नि जला रही है। मेरे चित्त को तपाती है। हे मछुओं, मुझे छोड़ दो। कामी कहीं नहीं मारा जाता है।]

न मायमग्गि तपति, न मुझे यह आग जलाती है, न तपाती है; अर्थ है शोक नहीं है। न **सूलो** यह शूल भी **साधुतच्छितो** न मुझे ताप देता है, न शोक उत्पन्न करता है। **यञ्चं मं मञ्ञति**, जो मुझे मछली ऐसा कहेगी कि वह पंच कामगुणों से प्रेरित हो दूसरी मछली के पास चला गया; यही मुझे तपाता है; यही शोक उत्पन्न करता है।

सो मं दहति, जो यह रागाग्नि है वह मुझे जलाती है। **चित्तं वूपतपेति मं**, रागयुक्त मेरा चित्त ही मुझे तपाता है, कष्ट देता है, पीड़ा देता है। **जलिनो** कैवर्त्तों (मछुओं) को सम्बोधन करता है। वह जाल के अर्थी होने से **जालिनो** कहलाते हैं। **मुञ्चथरिया मं**, स्वामी मुझे छोड़ दें, यही याचना करता है **न कामे हञ्ञते क्वचि**, काम में प्रतिष्ठित, काम में बहता हुआ प्राणी कहीं नहीं मारा जाता; तुम्हारे जैसों को मारना उसे योग्य नहीं। अथवा **कामे** हेतु के अर्थ में सप्तमी का प्रयोग है। काम-हेतु से मछली के पीछे-पीछे चलने वाला कहीं भी तुम्हारे जैसों से नहीं मारा जाता।

उसी समय बोधिसत्व ने नदी किनारे जा, उस मच्छ का रोना सुन मछुओं के पास पहुँच, उस मच्छ को छुड़ाया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय मछली पूर्व-भार्या थी। उत्कण्ठित भिक्षु मच्छ था। पुरोहित मैं ही था।

२१७. सेग्गु जातक

"सब्बो लोको. . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक तरकारी बेचने वाले उपासक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा पहले परिच्छेद में आ ही चुकी है।[1] इस कथा में शास्ता ने पूछा--उपासक ! क्यों देर करके आया है?

"भन्ते ! मेरी लड़की सदैव हँसमुख रहती थी। मैंने उसकी परीक्षा कर उसे एक तरुण को दिया। सो यह करने से आपके दर्शन के लिए आने का समय नहीं मिला।"

"उपासक ! वह अब ही सदाचारिणी नहीं है। पहले भी सदाचारिणी थी। तूने न केवल अभी उसकी परीक्षा नहीं की है, पहले भी की ही थी।

इतना कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वृक्ष देवता हुए। उस समय उसी तरकारी बेचने वाले उपासक ने लड़की को 'परीक्षा करने के लिए' उसे जंगल में ले जा काम-भोग चाहने वाले की तरह उसे हाथ से पकड़ा। वह रोने लगी। उसे यह पहली गाथा कही—

सब्बो लोको अत्तमनो अहोसि,
अकोविदा गामधम्मस्स सेग्गु ॥
कोमारि को नाम तवज्ज धम्मो,
यं त्वं गहिता पवने परोदसि ॥

---

१. पण्णिक जातक (१०२)

[सारा लोक (इससे) आनन्दित (होता) है। सेग्गु तू इस ग्राम्य-धर्म से अपरिचित है। कुमारी ! यह तेरा क्या धर्म है कि तू बन में पकड़ने पर रोती है।]

सब्बो लोको अत्तमनो अहोसि, अम्म ! सारे प्राणी इस काम-भोग के सेवन से सन्तुष्ट (होते) हैं। **अकोविदा गामधम्मस्स सेग्गु,** सेग्गु उसका नाम है। सो अम्म सेग्गु ! तू इस ग्राम्य-धर्म में, इस चाण्डाल-कर्म में दक्ष नहीं है। **कोमारि को नाम तवज्ज धम्मो,** अम्म कुमारी ! यह आज तेरा क्या स्वभाव है। **यं त्वं गहिता पवने परोदसि,** जो तू मेरे द्वारा इस वन में कामभोग के लिए पकड़ी जाने पर रोती है। स्वीकार नहीं करती। यह तेरा क्या स्वभाव है ? क्या तू कुमारी ही है ?--पूछता है।

इसे सुन कुमारी ने कहा--हाँ तात ! मैं कुमारी ही हूँ। मैं मैथुन-धर्म को नहीं जानती हूं। ऐसा कह, रोती हुई वह दूसरी गाथा बोली--

यो दुक्खफट्ठाय भवेय्य ताणं,
सो मे पिता दूभि वने करोति ॥
सा कस्स कन्दामि वनस्स मज्झे,
यो तायिता सो सहसा करोति ॥

अर्थ उपरोक्त प्रकार[1] से ही है।

तब वह तरकारी बेचने वाला उस लड़की की परीक्षा कर, घर ले जा तरुण को दे, यथा-कर्म सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर तरकारी बेचने वाला स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय लड़की (अब की) लड़की ही थी। पिता पिता ही हुआ। उस बात को प्रत्यक्ष करने वाला वृक्ष-देवता मैं ही था।

---

१. पण्णिक जातक (१०२)

२१८. कूटवाणिज जातक

"सठस्स साठेय्यमिदं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक कूट व्यापारी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कूट व्यापारी और पण्डित व्यापारी दो श्रावस्ती निवासी व्यापारियों ने साझा व्यापार करना आरम्भ करके, सामान की पाँच सौ गाड़ियाँ भरीं। वे पूर्व से पश्चिम घूमते हुए व्यापार कर बहुत मुनाफा कमा श्रावस्ती लौटे। पण्डित व्यापारी को कहा—दोस्त! समान बाँट लें।

कूट व्यापारी ने सोचा—यह बहुत दिनों तक आराम से सोना तथा अच्छा भोजन न मिलने के कारण थका हुआ अपने घर जाकर नाना प्रकार के अच्छे अच्छे भोजन खाएगा; बदहजमी से मरेगा। तब यह सारा सामान मेरा ही हो जाएगा। इसलिए वह 'आज नक्षत्र अच्छा नहीं; कल देखेंगे', 'आज दिन अच्छा नहीं, कल देखेंगे' करता हुआ समय बिताने लगा।

पण्डित व्यापारी ने उसे मजबूर कर समान बँटवाया। फिर गन्धमाला ले शास्ता के पास जा, पूजा-वन्दना कर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा—कब आया?

"भन्ते! मुझे आए आधा महीना हुआ।"

"तो इस प्रकार देर करके क्यों बुद्ध की सेवा में आया है?

उसने वह हाल कहा। शास्ता ने 'उपासक! यह केवल अभी ठग व्यापारी नहीं है, पहले भी ठग व्यापारी ही था' कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व अमात्य कुल में पैदा हो, बड़े होने पर उस राजा के **विनिश्चय-अमात्य**[1] हुए।

उसी समय एक ग्राम-वासी तथा एक नगर-वासी दो बनियों की आपस में मित्रता थी। ग्रामवासी ने नगरवासी के पास पाँच सौ फाल रक्खे। उसने उन फालों को बेच, कीमत ले, जिस जगह पर फाल रक्खे थे वहाँ चूहों की मेंगने फैला दीं। समय बीतने पर ग्रामवासी ने आकर कहा--मेरे फाल दे। कुटिल बनिए ने चूहे की मेंगनें दिखाकर कहा कि तेरे फालों को चूहे खा गए।

दूसरे ने 'अच्छा खा गए सो खा गए, चूहों के खा लेने पर क्या किया जा सकता है' कह नहाने के लिए जाते समय उसके पुत्र को साथ ले जा एक मित्र के घर में बिठा कर कहा—इसे कहीं न जाने दें। फिर स्वयं नहा कर कुटिल बनिए के घर गया।

उसने पूछा--मेरा पुत्र कहाँ है?

"मैं तेरे पुत्र को किनारे बैठा कर पानी में डुबकी लगा रहा था। एक चिड़िया आयी और तेरे पुत्र को पंजों में ले आकाश में उड़ गयी। मैंने हाथ पीटे, चिल्लाया, कोशिक की—लेकिन तब भी उसे न छुड़ा सका।"

"तू झूठ बोलता है। चिड़िया बच्चों को लेकर नहीं जा सकती।"

"मित्र, हो, असम्भव होने पर भी मैं क्या करूँ? तेरे पुत्र को चिड़िया ही ले गयी है।"

उसने डरते हुए कहा—'अरे मनुष्यघातक, दुष्ट चोर! अभी अदालत में जाकर निकलवाता हूँ।' यह कह वह चला।' जो तुझे अच्छा लगे कर' कहते हुए वह भी उसके साथ अदालत गया। कुटिल व्यापारी ने बोधिसत्व से कहा--"स्वामी! यह मेरे पुत्र को लेकर नहाने गया। अब 'मेरा पुत्र कहाँ है?' पूछने पर कहता है कि उसे चिड़िया ले गयी। इस मुकदमे का फैसला करें।"

बोधिसत्व ने दूसरे से पूछा—

"क्या यह सच है?

---

१. मुकदमों का फैसला करने वाला अमात्य।

"स्वामी ! मैं उसे लेकर गया। चिड़िया के उसे ले जाने की बात सच ही है।"

"क्या इस दुनिया में चिड़ियाँ बच्चों को ले जाती हैं ?

स्वामी ! मैं भी आप से पूछना चाहता हूँ कि चिड़ियाँ बच्चों को लेकर आकाश में नहीं उड़ सकती, तो क्या चूहे लोहे के फाल खा सकते हैं ?

इसका क्या मतलब है ?"

',स्वामी ! मैंने इसके घर में पाँच सौ फाल रक्खे। यह कहता है कि तेरे फालों को चूहे खा गये और 'यह तेरे फालों को खाने वाले चूहों की मेंगनी है' दिखाता है। स्वामी ! यदि चूहे फालें खाते हैं, तो चिड़ियाँ भी बच्चे ले जाती हैं। यदि नहीं खाते हैं, तो बाज तक भी नहीं ले जा सकते हैं। यह कहता है कि तेरे फालों को चूहे खा गये। उन्होंने खाए, वा नहीं खाए—इसकी परीक्षा करें मेरे मुकदमे का फैसला करें।"

बोधिसत्व ने सोचा—इसने शठ के प्रति शठता का व्यवहार करके जीतने की बात सोची होगी। उसने कहा—तूने ठीक सोचा है। और यह गाथा कही—

सठस्स साठेय्यमिदं सुचिन्ततं,
पच्चोड्डितं पतिकूटस्स कूटं।
फालञ्चे आदेय्युं मूसिका,
कस्मा कुमारं कुळला नो हरेय्युं॥
कूटस्स हि सन्ति कूटकूटा,
भवति चापि निकतिनो निकत्या।
देहि पुत्तनट्ठ फालनट्ठस्स फालं,
मा ते पुत्तमहासि फालनट्ठो॥

[शठ के प्रति शठता, यह अच्छा सोचा है। कुटिल के प्रति कुटिलता का जाल फैलाया है। यदि चूहे फाल खा जाएँगे, तो चिड़िया बच्चे को क्यों नहीं ले जाएँगी ?

कुटिल के प्रति कुटिलता का व्यवहार करने वाले ठग हैं। ठग को

भी ठगने वाले होते हैं । हे पुत्र-नष्ट ! जिसकी फाल खोई गयी है उसकी फाल दे । तेरे पुत्र को, जिसकी फाल नष्ट हुई है, वह न ले जाए ।]

सठस्स, शठता से, धोखे से कोई ढंग निकाल कर दूसरे का माल खाना चाहिए, ऐसा समझाने वाले शठ के प्रति । **साठेमिदं सुचिन्ततं**, जो यह शठता का व्यवहार सोचा है सो तूने ठीक सोचा है । **पच्चोड्डितं पतिकूटस्स कूटं**, कुटिल आदमी के प्रति तूने कुटिलता का जाल ठीक फैलाया, उसकी चाल का जवाब दे, जाल फैलाने-सा ही किया--यही अर्थ है । **फालञ्चे आदेय्यु मूसिका,** यदि चूहे फाल खाएँ । **कस्मा कुलारं कुळला नो हरेय्यु,** जब चूहे फाल खा जाते हैं तो चिड़ियाँ क्यों बच्चों को नहीं ले जाएँगी !

कूटस्सहि सन्ति कूटकूटा, तू समझता है कि मैं ही चूहों को फाल खिला देने वाला कुटिल पुरुष हूँ, तेरे कुटिल पुरुष के साथ कुटिलता करने वाले इस लोक में बहुत कुटिल हैं । कुटिल के (भी) कुटिल यह कुटिल के प्रति कुटिलता करने वालों का नाम है । यही कहा गया है कि कुटिल के प्रति कुटिलता करने वाले हैं । **भवतिचापि निकतिनो निकित्या**, ठगने वाला भी दूसरा आदमी होता है । **देहि पुत्तनट्ठ फालनस्स फालं**, भो पुत्र-नष्ट-पुरुष ! जिसकी फाल नष्ट हुई है उसकी फाल दे । **मा ते पुत्तमाहासि फालनट्ठों**, यदि इसकी फाल नहीं देगा, तो यह तेरे पुत्र को ले जाएगा । जिससे यह न ले जाए इसलिए इसकी फाल दे ।

"स्वामी ! मैं इसकी फाल देता हूँ, यदि यह मेरा पुत्र दे ।"

"स्वामी ! मैं देता हूं, यदि यह मेरे फाल दे ।"

इस प्रकार जिसका पुत्र खोया गया था उसने पुत्र पाया । जिसकी फाल खोई गयी थी उसने फाल पायी । दोनों कर्मानुसार गये ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना सुना जातक का मेल बैठाया । उस समय का कुटिल व्यापारी ही कुटिल व्यापारी था । पण्डित व्यापारी ही पण्डित व्यापारी था ।

मुकदमा फैसला करने वाला आमात्य मैं ही था ।

२१९. गरहित जातक

"हिरञ्ञम्मे सुवण्णम्म..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही जिसका मन बुद्ध-शासन में नहीं था, जो उत्कण्ठित था।

क. वर्तमान कथा

इस (भिक्षु) का ध्यान किसी भी बात में एकाग्र नहीं होता था। इस अन्यमनस्क हो, जीवन बिताते हुए को शास्ता के पास लाए। शास्ता ने पूछा—क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?

"हाँ! सचमुच।"

"किस कारण से?"

"कामासक्ति के कारण।"

"भिक्षु कामासक्ति की पूर्व समय में पशुओं ने भी निन्दा की है। तू इस प्रकार के शासन में प्रव्रजित हो, जिन कामभोगों की पशुओं तक ने निन्दा की है?"

उनके कारण क्यों उत्कण्ठित हुआ है?"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय में वानर की योनि में पैदा हुए।

एक वनचर ने उसे पकड़ लाकर राजा को दिया। वह चिरकाल तक राजभवन में रहने के कारण सभ्यता सीख गया। राजा ने उसके सभ्य-व्यवहार से प्रसन्न हो वनचर को बुलाकर आज्ञा दी—इस वानर को जहाँ से पकड़ा है, वहीं छोड़ आओ। उसने वैसा ही किया।

वानरों ने जब सुना कि बोधिसत्व आया है, तो उसे देखने के लिए महान् शिलातल पर इकट्ठे हुए। उन्होंने बोधिसत्व से कुशल-समाचार की बात कर पूछा—"मित्र, इतने दिन तक कहाँ रहे ?"

"वाराणसी में, राजभवन में।"

"कैसे छूटे ?"

"राजा ने मुझे खेल करने वाला बन्दर बना, मेरे करतबों से प्रसन्न हो, मुझे छोड़ दिया।"

"आप मनुष्य लोकों का बरताव जानते हैं। हमें भी कहें। हम सुनना चाहते हैं।"

"मनुष्यों की करनी मुझसे मत पूछो।"

"कहें। हम सुनना चाहते हैं।"

बोधिसत्व ने, "मनुष्य चाहे क्षत्रिय हों, चाहे ब्राह्मण हों, सभी मेरा-मेरा करते हैं। वस्तुएँ अस्तित्व में आकर विनष्ट हो जाती हैं, इस अनित्यता को वे नहीं जानते। अब उन अन्धे मूर्खों की बात सुनो" कह यह गाथाएँ कहीं—

हिरञ्ञम्मे सुवण्णम्मे ऐसा रत्तिन्दिवा कथा,
दुम्मेधानं मनस्सानं अरियधम्मं अपस्सतं ॥
द्वे द्वे गहपतयो गेहे एको तत्थ अमस्सुको,
लम्बत्थनो वेणिकतो अथो अंकितकण्णको;
कीतो धनेन बहुना सो तं वितुदते जनं ॥

[आर्यधर्म को न जानने वाले मूर्ख मनुष्य दिन रात यही बातचीत करते रहते हैं—मेरा हिरण्य, मेरा सोना।

घर में दो-दो जने रहते हैं। एक को मूछ नहीं होती। उसके लम्बे स्तन होते हैं, वेणी होती है और कानों में छेद होते हैं। उसे बहुत धन से खरीदा होता है। वह सब जनों को कष्ट देता है।

हिरञ्ञम्मे सुवण्णम्मे, यह शीर्षक मात्र है। इन दो पदों से दसों तरह के रत्न अगली-पिछली फसल, सब द्विपद तथा चतुष्पदों का ग्रहण कर 'यह मेरा यह मेरा' कहा गया है। **एसा रत्तिन्दिवा कथा**, मनुष्य-लोग रात दिन यही बात—

चीत करते रहते हैं। वे पाञ्च स्कन्ध अनित्य हैं, उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाते हैं आदि नहीं जानते हैं। इस प्रकार रोते हुए भटकते हैं **दुम्मेधानं** अज्ञानियों की **अरियधम्मं अपस्सतं,** बुद्धादि आर्यों के धर्म को न देखते हुए लोगों की अथवा नौ प्रकार के निर्दोष लोकोत्तर आर्य-धर्म[1] को न देखते हुए लोगों की यही बातचीत होती है; अन्य अनित्यता वा दुःख की बातचीत उनकी नहीं होती।

गहपतयो घर के मालिक। **एकोतरथ** उन दो घर के मालिकों में से एक अर्थात् स्त्री। **वेणिकतो** कृतवेणि; नाना प्रकार से जिसने अपने बालों को क्रम से गठिया रक्खा है। **अथो अंकितकण्णको,** वह बिंधे हुए कानों वाला, वा छिदे हुए कानों वाला। लम्बे कानों के बारे में कहा। **कीतो धनेन बहुना,** यह मूछ-विरहित, लम्बे-स्तन वाला, वेणिधारी, छिदे कान वाला माता-पिता को बहुत धन देकर खरीदा गया; सजा कर, गहने पहना कर, गाड़ी में बिठा, बड़ी शान-शौकत से घर में लाया गया। **सो तं वितुदते जनं,** वह गृहस्वामी (स्वामिनी) जिस समय से आता है उस समय से दासों, मजदूरों आदि को 'अरे दुष्ट दास! यह नहीं करता है, अरी दुष्ट दासी! यह नहीं करती है' आदि वचन-रूपी मुखशक्ति से बींधता है। स्वामी की तरह से व्यवहार करता है। इस प्रकार मनुष्य-लोक में बहुत अनुचित है——मनुष्य-लोक की निन्दा की।

यह सुन सभी बन्दरों ने दोनों हाथों से अपने कान जोर से बन्द कर लिए—मत कहें। मत कहें। न सुनने योग्य बात हमने सुनी। इस स्थान पर हमने अनुचित बात सुनी। इसलिए उस स्थान की भी निन्दा कर अन्यत्र चले गये। उस पाषाण-शिला का नाम निन्दित-पाषाण शिला हो गया।

शास्ता ने यह धर्म देशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के प्रकाशन के अन्त में वह भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय के वानर-गण बुद्ध-परिषद् थी। वानरेन्द्र तो मैं ही था।

---

१. चार लोकोत्तर मार्ग + चार लोकोत्तरफल + निर्वाण।

२२०. धम्मद्ध जातक

"सुखं जीवितरूपोसि...." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय वध का प्रत्यक्ष करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने 'भिक्षुओं, न केवल अभी देवदत्त ने मेरे वध के लिए प्रयत्न किया है, पहले भी किया है; लेकिन त्रासमात्र भी पैदा नहीं कर सका' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में पायासराणी नाम का राजा राज्य करता था। काळक नाम का उसका सेनापति था। उस समय बोधिसत्व उसी के पुरोहित थे। नाम था धर्मध्वज। राजा के सिर को अलंकृत करने वाले नाई का नाम था छत्तपाणी।

राजा धर्म-पूर्वक राज्य करता था; लेकिन उसका सेनापति मुकदमों का फैसला करता हुआ रिश्वत खाता था। चुगल-खोर रिश्वत लेकर स्वामी को अस्वामी कर देता था।

एक दिन मुकदमे में हारे हुए आदमी ने बाहें पकड़ कर रोते हुए, अदालत से निकल राज-सेवा में जाते हुए बोधिसत्व को देखा। उसने उसके पाँव में गिरकर कहा--स्वामी! तुम्हारे सदृश राजा के अर्थधर्मानुशासक के होते हुए काळक सेनापति रिश्वत लेकर अस्वामी को स्वामी बना देता है; और अपने मुकदमे हारने की बात कही।

बोधिसत्व ने मन में करुणा का भाव ला कर कहा--अरे, आ तेरे मुकदमे का फैसला करूंगा। वह उसे लेकर मुकदमे की जगह गए। जन-समूह इकट्ठा हो गया। बोधिसत्व ने उस मुकदमे के फैसले को उलटते हुए फिर स्वामी को

ही स्वामी बना दिया। जन-समूह ने 'वाह-वाह' की। बड़ा शोर हुआ। राजा ने सुनकर पूछा--यह क्या आवाज है?

"देव! धर्मध्वज पण्डित ने एक ऐसे मुकदमे का जिसका ठीक फैसला नहीं हुआ था, ठीक फैसला किया है। उसी में यह 'वाह-वाह' हो रही है।"

राजा ने सन्तुष्ट हो बोधिसत्व को बुलाकर पूछा--"आचार्य! तुमने मुकदमे का फैसला किया!"

"हाँ महाराज! काळक ने जिस मुकदमे का ठीक फैसला नहीं किया उसका फैसला किया।"

"अब से तुम ही मुकदमे का फैसला किया करो। मेरे कानों को सुख मिलेगा। जनता की उन्नति होगी।"

उसके इच्छा न करने पर भी राजा ने "प्राणियों पर दया करने के लिए न्याय की गद्दी पर बैठें" प्रार्थना कर राजी किया। तब से बोधिसत्व न्याय की गद्दी पर बैठने लगे। स्वामी को ही स्वामी बनाते।

उसके बाद से जब काळक को रिश्वत न मिलने के कारण लाभ की हानि हुई तो उसने "महाराज! धर्मध्वज पण्डित आपका राज्य चाहता है" कह राजा और बोधिसत्व में भेद पैदा करने की कोशिश की।

राजा ने अविश्वास करते हुए मना किया--ऐसा मत कहो। वह बोला--यदि मेरा विश्वास नहीं करते तो उसके आने के समय झरोखे से देखें। तब देखेंगे कि इसने सारे नगर को अपने हाथ में कर लिया है। राजा ने उसके पास मुकदमे के लिए आये लोगों को उसी के आदमी समझ विश्वास कर पूछा--

"सेनापति! क्या करें?"

"देव! इसे मार डालना चाहिए।"

"कोई बड़ा दोष न दिखायी देने पर कैसे मारें?"

"एक उपाय है।"

"कौन सा उपाय?"

"इसे कोई असम्भव कार्य करने के लिए कह कर उसके न कर सकने पर, उस दोष का दोषी बना मारेंगे।"

"कौन सा असम्भव कार्य ?"

"महाराज, जरखेज भूमि में लगाने पर, देखभाल करने पर उद्यान दो चार साल में फल देता है। आप उसे बुलाकर कहें कि कल हम उद्यान में खेंलेगे। हमारे लिए उद्यान बनाओ। वह न बना सकेगा। तब उसे इस अपराध के कारण मार देंगे।"

राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर कहा--"पण्डित ! पुराने उद्यान में हम बहुत खेले। अब नये उद्यान में क्रीड़ा करने की इच्छा है ! कल क्रीड़ा करेंगे हमारे लिए उद्यान बनाएँ। यदि न बना सकोगे तो तुम्हारी जान नहीं बचेगी।

बोधिसत्व समझ गये कि काळक को रिश्वत न मिलने से उसने राजा को फोड़ लिया होगा। वह "महाराज ! कर सका तो देखूंगा" कह घर जा प्रणीताहार ग्रहण कर चारपाई पर लेट सोचने लगे। शक्रभवन गर्म हो गया। शक्र ने ध्यान लगा कर देखा। बोधिसत्व की पीड़ा को जान उसने जल्दी से आ, सोने के कमरे में प्रवेश कर आकाश में खड़े हो पूछा—"पण्डित क्या चिन्ता कर रहे हो ?"

"तू कौन है ?"

"मैं शक्र हूँ।"

"राजा ने मुझे उद्यान बनाने को कहा है। उसकी चिन्ता कर रहा हूं।"

"पण्डित चिन्ता न कर। मैं तेरे लिए नन्दवन चित्रलतावन सदृश उद्यान बना दूंगा। किस जगह पर बनाऊँ ?"

"अमुक स्थान पर बना।"

शक्र बनाकर देवपुर चला गया। अगले दिन बोधिसत्व ने उद्यान को प्रत्यक्ष देख जाकर राजा को कहा--

"महाराज, मैंने उद्यान समाप्त कर दिया है। खेलें।"

राजा ने जाकर देखा अठारह हाथ की, मनोशिलावर्ण की दीवार से घिरा; द्वार-अट्टालिका सहित, फूल फल के भार से लदा हुआ, नाना प्रकार के वृक्षों से सजा हुआ उद्यान है। उसने काळक से पूछा--पण्डित ने हमारा कहना किया अब क्या करें ?

"महाराज, जो एक रात में उद्यान बना सकता है वह राज्य ले सकता है या नहीं ?"

"अब क्या करें ?"

"उससे दूसरा असम्भव कार्य कराएँ।"

"कौन सा काम ?"

"सात रत्नों वाली पुष्करिणी बनवाएँ।"

राजा ने 'अच्छा' कह बोधिसत्व को बुलाकर कहा--

"आचार्य ! तुमने उद्यान तो बना दिया अब इसके योग्य सात रत्नों वाली पुष्करिणी बनाएँ। यदि नहीं बना सकोगे तो तुम्हारी जान जाएगी।"

बोधिसत्व ने कहा--"महाराज' अच्छा। बना सकेंगे तो बनाएँगे।"

शक्र ने सुन्दर, सौ तीर्थों वाली, हजार जगह से मुड़ी, पाँच प्रकार के कमलों से ढकी, नन्दन-पुष्करिणी[1] सदृश बना दी। बोधिसत्व ने उसे भी प्रत्यक्ष देख राजा से जाकर कहा--देव, पुष्करिणी बना दी।

राजा ने उसे देख काळक से पूछा--अब क्या करें ? 'देव, उद्यान के योग्य घर बनाने को कहें।' राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर कहा--"आचार्य, इस उद्यान और पुष्करिणी के अनुकूल एक ऐसा घर बनाएँगे जो सारा का सारा हाथी दाँत का हो। यदि नहीं बनाएँगे तो तुम्हारी जान न रहेगी।"

शक्र ने उसका घर भी बना दिया। अगले दिन बोधिसत्व ने उसे भी प्रत्यक्ष देख राजा को कहा। राजा ने उसे भी देख काळक से पूछा--अब क्या करें ? 'महाराज घर के योग्य मणि बनाने को कहें।' राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर कहा—"पण्डित, इस हाथी दाँत के घर के अनुकूल मणि बनाओ। मणि के प्रकाश में घूमेंगे। यदि नहीं बना सकोगे, तो तुम्हारी जान जाएगी।"

शक्र ने उसकी मणि भी बना दी। अगले दिन बोधिसत्व ने उसे भी प्रत्यक्ष देख राजा को कहा। राजा ने देखकर पूछा--अब क्या करें ? "महाराज ! मालूम होता है कि ऐसा देवता है जो धम्मध्वज ब्राह्मण को जो-जो वह चाहता है, देता है। अब जिसे देवता भी न बना सके, ऐसी आज्ञा दें। चारों

---

१. सिंहल में नन्दा 'पोकखरलि' पाठ है।

अङ्गों[1] से युक्त मनुष्य को देवता भी नहीं बना सकता इसलिए उसे कहें कि मुझे चारों अङ्गों से युक्त उद्यान पाल बनाकर दे।"

राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर कहा--"आचार्य, तूने हमारे लिए उद्यान पुष्करिणी, हाथी-दाँत का प्रासाद, उसमें प्रकाश करने के लिए मणि-रत्न बनाया।

अब मेरे उद्यान की रक्षा करने वाला चारो-अंगों से युक्त उद्यानपाल बनाएँ। यदि नहीं बनाएँगे तो तुम्हारी जान न रहेगी।"

बोधिसत्व 'होवे, मिलने पर देखूंगा' कह, घर जा प्रणीत भोजन खा, सोकर जब प्रात:काल उठा तो शय्या पर बैठ कर सोचने लगा--देवराज शक्र ने जो स्वयं बना सकता था,बनाया। वह चारों अंगों से युक्त उद्यानपाल नहीं बना सकता। ऐसा होने पर दूसरों के हाथ से मरने की अपेक्षा जंगल में अनाथ की तरह मरना ही अच्छा है।

वह बिना किसी से कहे; प्रासाद से उतर, मुख्य द्वार से ही नगर से निकल, जंगल में प्रवेश कर एक वृक्ष के नीचे बैठ सत्पुरुषों के धर्म का ध्यान करने लगा। शक्र को जब यह पता लगा तो उसने एक बनचर की शक्ल बना बोधिसत्व के पास जा पूछा 'ब्राह्मण ! तू सुकुमार है। तूने पहले दु:ख नहीं देखा-सा है। तू इस अरण्य में दाखिल हो बैठा क्या कर रहा है ?" यह पूछते हुए पहली गाथा कही--

सुखं जीवितरूपोसि रट्ठा विवनमागतो,
सो एकको अरञ्ञस्मि रुक्खमले कपणो विय झायसि ॥

[तू सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले-सा है। जनाकीर्ण स्थान से निर्जन स्थान में आया है तू जंगल में वृक्ष के नीचे अकेला बैठ कृपण की तरह (क्या) सोचता है ?]

सुखं जीवितरूपोसि, तू सुख से जीने वाले, सुख से रहने वाले, सुख से पालन हुए की तरह है। **रट्ठा** जनाकीर्ण स्थान हैं **विवनमागतो**, जनरहित स्थान जंगल में दाखिल हुआ। **रुक्खमूले**, वृक्ष के पास। **कपणो विय झायसि**, कृपण की तरह

---

१. चार गुणों।

अकेला बैठा हुआ ध्यान करता है, विशेष ध्यान करता है। तू यह क्या सोच रहा है ?—यही पूछा।

इसे सुन बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

सुखं जीवितरूपोस्मि रट्ठा विवनमागतो,
सो एकको अरञ्ञस्मि रुक्खमूले;
कपणो विय झायामि सतं धम्मं अनु सरं॥

[सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाला हूँ। जनाकीर्ण स्थान से निर्जन स्थान में आया हूँ। अरण्य में वृक्ष के नीचे अकेला ही कृपण की तरह श्रेष्ठ पुरुषों के धर्म को स्मरण करता हुआ ध्यान लगा रहा हूँ।]

सतं धम्मं अनुस्सरं, मित्र, यह सत्य ही है कि मैं सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाला जनाकीर्ण स्थान से निर्जन स्थान में आया हूं। मैं इस जंगल में वृक्ष के नीचे अकेला ही बैठकर कृपण की तरह ध्यान करता हूँ। जो तू पूछता है कि क्या सोच रहा हूं। वह कहता है मैं श्रेष्ठ (पुरुषों के) धर्म को स्मरण करता हुआ यहाँ बैठा हूँ। सतं धम्मं बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध श्रावकों का, श्रेष्ठ सत्पुरुषों का, पण्डितों का धर्म—लाभ, हानि, अपकीर्ति, कान्ति, निन्दा, सुख, दुख यह आठ प्रकार का लोक-धर्म है। इनसे आघात पाने पर सत्पुरुष काँपते नहीं हैं; चंचल नहीं होते हैं। यह न काँपना सत्पुरुषों का धर्म है। इस सत्पुरुषों को स्मरण धर्म को करता हुआ बैठा हूं—यही प्रकट करता है।

शक्र ने पूछा—ब्राह्मण ! ऐसा है तो इस जगह क्यों बैठा है।

"राजा चारों-अंगों से युक्त उद्यान पाल मँगवाता है। वैसा नहीं मिल सकता है। सो मैं यह सोचकर कि किसी के हाथ से मरने से क्या लाभ, जंगल में प्रविष्ट हो अनाथ की तरह मरूँगा; (इसलिए) यहाँ आकर बैठा हूं।"

"ब्राह्मण ! मैं देवराज शक्र हूँ। मैंने तेरे लिए उद्यान आदि बनाए। चारों अंगों से युक्त उद्यानपाल नहीं बना सकता। तुम्हारे राजा के बालों को सजाने

क्षत्तपाणी नाम का नाई है चारों अंगों से युक्त उद्यानपाल की आवश्यकता होने पर, उसे उद्यानपाल बनाने के लिए कहना ।"

शक्र बोधिसत्व को यह उपदेश दे, 'डर मत' कह अश्वासन दे, अपने देवनगर को गया।

बोधिसत्व प्रातःकाल का भोजन कर राजद्वार गया। वहीं छत्तपाणी को देख हाथ से पकड़ पूछा—मित्र, क्या तू चारों अंगों से युक्त है ?

तुझे किसने कहा है कि मैं चारों अंगों से युक्त हूँ ?

"देवराज शक्र ने।"

"किस कारण से कहा ?"

"इस कारण से" कह सब कहा। वह बोला—"हाँ, मैं चारों अंगों से युक्त हूँ।"

बोधिसत्व उसे हाथ से पकड़े ही पकड़े राजा के पास ले जाकर बोले—"महाराज, यह छत्तपाणी चारों अंगों से युक्त है। उद्यानपाल को आवश्यकता होने पर इसे उद्यानपाल बनावें।"

राजा ने उसे पूछा—क्या तू चारों अंगों से युक्त है ? "हाँ महाराज।" "किन चारों अंगों से युक्त है ?" उत्तर दिया—

अनुसुय्यको अहं देव अमज्जपायको अहं,
निस्नेहको अहं देव अक्कोधनं अधिट्ठितो ॥

[महाराज ! मुझमें ईर्ष्या नहीं है। मैंने कभी शराब नहीं पी है। देव ! मुझमें दूसरे के प्रति न स्नेह है, न क्रोध है। मैं इन चारों अंगों से युक्त हूँ।]

राजा ने पूछा—छत्तपाणी ! तू अपने आपको ईर्ष्या-रहित कहता है ?

—हाँ देव ! मैं ईर्ष्या रहित हूँ।

"किस बात को देखकर ईर्ष्या-रहित हुआ ?"

'देव ! सुनें' कह अपने ईर्ष्या-रहित होने का कारण बताते हुए यह गाथा कही—

इत्थिया कारणा राज बन्धापेसिं पुरोहितं,
सो मं अत्थे निवेसेसि तस्माहं अनुसुय्यको ॥

[राजन ! स्त्री के कारण मैंने पुरोहित को बँधवाया। उसने मुझे सदर्थमें लगाया। इसलिए मैं ईर्ष्या-रहित हूँ।]

इसका अर्थ है कि देव ! मैं पहले इसी वाराणसी नगर में तुम्हारे जैसा ही राजा था। मैंने स्त्री के लिए पुरोहित को बँधवाया।

"अबद्धा तत्थ बज्झन्ति यत्थ बाला पभासरे
बद्धापि तत्थ मुच्चन्ति यत्थ धीरा पभासरे ॥

इस जातक[1] में आये अनुसार ही एक समय इसे जब यह छत्तपाणी राजा था, चौंसठ नौकरों के साथ अनाचार कर बोधिसत्व के द्वार अपनी, इच्छा-पूर्ति न होने के कारण बोधिसत्व को नष्ट करने की इच्छा से देवी ने इसे फोड़ा। इसने बोधिसत्व को बँधवा दिया। तब बाँधकर लाये गये बोधिसत्व ने देवी का यथार्थ दोष कह स्वयं मुक्त हो राजा के बँधवाए हुए सभी नौकरों को मुक्त करवा, राजा को उपदेश दिया कि इनका और देवी का अपराध क्षमा करें। सब पूर्वोक्त प्रकार से विस्तार से कहनी चाहिए। इसी के बारे में कहा है—

इत्थिया कारणा राज बन्धापेसिं पुरोहितं,
सो मं अत्थे निवेसेसि तस्माहं अनुसुय्यको ॥

तब मैं सोचने लगा—मैं सोलह हजार स्त्रियाँ छोड़ इस अकेली से कामासक्त हो, इसे भी सन्तुष्ट न कर सका। इस प्रकार बड़ी कठिनाई से सन्तुष्ट की जा सकने वाली स्त्रियों पर क्रोध करना वैसा ही है जैसे कोई कपड़ों के पहनने पर उनके मैले होने से क्रोध करे कि यह मैले क्यों होते हैं; अथवा जैसे कोई खाये भोजन के गूह बनने पर क्रोध करे कि यह ऐसा क्यों होता है ? तब मैंने दृढ़ संकल्प किया कि अब से जब तक अर्हत्व प्राप्त न हो जाए तब तक कामभोग के प्रति मेरी ईर्ष्या न हो। उस समय से ईर्ष्या-रहित हो गया। इस सम्बन्ध से ही तस्माहं अनुसुय्यको कहा।

---

१. बन्धनमोक्ख जातक (१२०)

तब राजा ने पूछा—मित्र छत्तपाणि ! किस बात को देखकर तू अमद्यप हो गया ? उसने वह बात कहते हुए यह गाथा कही—

मत्तो अहं महाराज पुत्तमंसानि खादयिं,
तस्स सोकेनहं फुट्ठो मज्जपानं विवज्जयिं ॥

[महाराज ! मैंने मद्य पी बेहोश हो अपने पुत्र के मांस को खाया । उस शोक से शोकाभिभूत हो मैंने मद्यपान छोड़ दिया ।]

महाराज ! पूर्वकाल में मैं तुम्हारी ही तरह वाराणसी का राजा था । शराब के बिना न रह सकता था । बिना मांस का भोजन न खा सकता था । नगर में उपोसथ के दिनों में पशु-हत्या बन्द रहती । रसोइये ने पक्ष की त्रयोदशी को ही मांस लेकर रख दिया । सँभालकर न रखा होने से उसे कुत्ते खा गये । रसोइये ने उपोसथ के दिन माँस न पा; राजा के लिए नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बना प्रासाद पर चढ़ राजा के पास भोजन न ले जा सकने के कारण देवी के पास जाकर पूछा—देवी ! आज मुझे मांस नहीं मिला । बिना मांस का भोजन राजा के पास नहीं ले जा सकता । क्या करूँ ?

"तात ! मेरा पुत्र राजा को अत्यन्त प्रिय है । पुत्र को देख कर राजा उसे चूमता हुआ, लाड़-प्यार करता हुआ अपना अस्तित्व भी भूल जाता है । मैं पुत्र को सजाकर राजा की गोदी में बिठा दूँगी । उसके पुत्र के साथ खेलते समय तू भोजन लाना ।"

ऐसा कह उसने अपने पुत्र सुन्दर बालक को सजाकर राजा की गोद में बैठाया । राजा के पुत्र के साथ खेलते समय रसोइया भोजन लाया । शराब के नशे में बेहोश राजा ने पका हुआ मांस न पा पूछा—मांस कहाँ है ? 'देव ! आज दिन पशु हत्या बन्द रहने से मांस नहीं मिला ।' राजा ने 'मुझे मांस नहीं मिलेगा' कह गोद में बैठे प्रिय पुत्र की गर्दन मरोड़, जान से मार रसोइये के सामने फेंका और आज्ञा दी—जल्दी से पका कर ला । रसोइये ने वैसा किया । राजा ने पुत्र-मांस के साथ भोजन किया । राजा के भय से न कोई रो पीट सका न कुछ कह ही सका ।

राजा ने भोजन खा, शय्या पर सो, प्रातःकाल उठ नशे के उतरने पर कहा--"मेरे पुत्र लाओ।" उस समय देवी रोती हुई चरणों पर गिर पड़ी। राजा ने पूछा—'भद्रे ! क्या हुआ?' बोली—'देव ! कल आपने पुत्र को मार-कर पुत्रमांस के साथ भोजन खाया।' राजा ने पुत्रशोक से अभिभूत हो रो पीटकर 'मझे यह दुःख सुरापन के कारण हुआ' समझ सुरापान में दोष देख बालू से मुंह पोंछते हुए प्रतिज्ञा की—"अब से मैं अर्हत्व प्राप्त होने तक ऐसी विनाशकारिणी सुरा को कभी नहीं पीऊँगा।" तब से मद्य नहीं पी। इसलिए **मत्तो अहं महाराज**, यह गाथा कही।

तब राजा ने पूछा—मित्र ! क्या देखकर तू स्नेह-हीन हो गया? उस बात को कहते हुए यह गाथा कही।

कितवासो नामहं राजा पुत्तो पच्चेकबोधिमे,
पत्तं भिन्दित्वा चवितो निस्नेहो तस्स कारणा ॥

[मै कितवास नाम का राजा था। मेरा पुत्र पच्चेकबुद्ध के पात्र को फोड़ कर मर गया। उस कारण से मैं स्नेह रहित हो गया।]

महाराज ! पहले मैं वाराणसी में कितवास नाम का राजा था। मुझे पुत्र हुआ। लक्षण जानने वालों ने उसे देखकर कहा कि इसकी मृत्यु पानी न मिलने से होगी। उसका नाम दुष्ट कुमार रखा गया। बालिग होने पर उप-राजा बना।

राजा दुष्ट कुमार को सदैव अपने आगे पीछे रखता। पानी न पाकर मरण के भय से, उसके लिए चारों दरवाजों पर और नगर के भीतर जहाँ पुष्करणियाँ बनवा दीं। चौरस्तो आदि पर मण्डप बनवा पानी की चाटियाँ रखवाई।

उसने एक दिन सजधज कर अकेले ही उद्यान जाते हुए रास्ते में प्रत्येक बुद्ध को देखा। जनता भी प्रत्येकबुद्ध को देखकर उन्हीं को प्रणाम करती, प्रशंसा करती। उन्हीं को हाथ जोड़ती। राजकुमार सोचने लगा—मेरे जैसे के साथ चलते हुए लोग इस सिर-मुण्डे को प्रणाम करते हैं, प्रशंसा करते हैं, हाथ जोड़ते हैं। उसने क्रोधित हो, हाथी से उत्तर प्रत्येकबुद्ध के पास जाकर पूछा--

"श्रमण ! तुझे भोजन मिला ?"

"राजकुमार ! हाँ मिला ।"

उसने प्रत्येकबुद्ध के हाथ से पात्र ले, उसे जमीन पर पटक, भोजन सहित पाँव से मर्दन कर, पाँव की ठोकर से चूर-चूर कर दिया । प्रत्येक बुद्ध उसके मुंह की ओर देखने लगे--अब यह प्राणी नष्ट हुआ। कुमार बोला--श्रमण ! मैं कितवास राजा का पुत्र हूं । मेरा नाम है दुष्टकुमार । तू मुझ पर क्रोधित हो आँखें फाड़ कर देखने से मेरा क्या करेगा ? प्रत्येक-बुद्ध का भोजन नष्ट हो गया । वे आकाश में उड़कर उत्तर हिमालय में नन्दमूल पब्भार पर ही चले गये । राजकुमार के पापकर्म ने भी उसी क्षण फल दिया । उसके शरीर में दाह पैदा हुआ । वह 'जल रहा हूँ' कहता हुआ वहीं गिर पड़ा । उतना पानी भी समाप्त हो गया । सारी चाटियाँ सूख गयीं उसका प्राणान्त होकर वह अवीची नरक में पैदा हुआ ।

राजा ने वह सामाचार सुन पुत्रशोक से अभिभूत हो सोचा--मेरा यह शोक प्रिय-वस्तु से उत्पन्न हुआ । यदि मैं स्नेह न करता तो शोक न होता । उसने निश्चय किया कि अब से किसी भी चीज में--चाहे वह जानदार हो चाहे बेजान हो--स्नेह पैदा न हो । उस समय से लेकर उसे स्नेह नहीं है । उसी सम्बन्ध से **कितवासी नामहं** गाथा कही ।

पुत्तो पच्चेकबोधिमे पत्तंभिन्दित्वा चवितो का अर्थ है मेरा पुत्र प्रत्येक-बुद्ध का पात्र तोड़कर मर गया । **निश्नेहो तस्स कारणा,** उस समय उत्पन्न स्नेह के कारण स्नेह-रहित हो गया ।

तब राजा ने उसे पूछा--मित्र ! किस बात को देखकर तू क्रोध-रहित हो गया ? उसने वह बात बताते हुए यह गाथा कही--

अरको हुत्वा मेत्तचित्तं सत्त वस्सानि भावयिं,
सत्त कप्पे ब्रह्मलोके तस्मा अक्कोधनो अहं '।

[महाराज ! मैं अरक नामक तपस्वी हो. सात वर्ष तक मैत्री चित्त की भावना कर, सात संवर्त-विवर्त कल्पों तक ब्रह्मलोक में रहा । इसलिए मैं दीर्घ-काल तक मैत्रीभावना का अभ्यास करने से क्रोध-रहित हो गया ।]

इस प्रकार छत्तपाणि के अपने चारों अंग कहने पर राजा ने परिषद् को इशारा किया। उसी क्षण अमात्यों तथा ब्राह्मण गृहपति आदि ने उठकर 'अरे! रिश्वतखोर! दुष्ट चोर! तू रिश्वत न पाकर पण्डित की निन्दा कर उसे मारना चाहता था' कह काळक के हाथ पाँव पकड़, राजमहल से उतार, जो जो हाथ में आया पत्थर, मुग्दर आदि से सिर फोड़ मार डाला। फिर पाँव से घसीट कर कूड़े की जगह पर फेंक दिया।

उसके बाद से राजा धर्मपूर्वक राज्य करता हुआ कर्मानुसार (परलोक) गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय काळक सेनापत्ति देवदत्त था। छत्तपाणि नाई सारिपुत्र। धर्मध्वज तो मैं ही था।

●

दूसरा परिच्छेद

८. कासाव वर्ग

२२१. कासाव जातक

"अनिक्कसावो कासावं . . ." यह धर्मदेशना ला शास्ता ने जेतवन में रहते समय देवदत्त के बारे में कही । घटना राजगृह में घटी ।

क. वर्तमान कथा

एक समय धर्मसेनापति (सारिपुत्र) पाँच सौ भिक्षुओं के साथ वेलुवन में रहते थे । देवदत्त भी अपने जैसी दुराचारी-परिषद् से घिरा हुआ गयाशीर्ष पर रहता था ।

उस समय राजगृह निवासी चन्दा इकट्ठा करके दान की तैयारी करते थे । व्यापार के लिए आये बनिए ने एक मूल्यवान् सुगन्धित काषाय वस्त्र देकर कहा कि इस वस्त्र का दान कर मुझे भी (दान में) हिस्सेदार बनावें । नागरिकों ने महादान दिया । सब चन्दा करके इकट्ठे किये गये कार्षापणों से हो पूरा हो गया । वह वस्त्र बच गया । लोग इकट्ठे होकर सोचने लगे कि यह वस्त्र किसे दें ? क्या सारिपुत्र स्थविर को ? अथवा देवदत्त को ? कुछ ने कहा सारिपुत्र स्थविर को । दूसरों ने कहा--सारिपुत्र स्थविर कुछ दिन रह कर यथारुचि चल देगा । देवदत्त स्थविर सदैव हमारे नगर के पास ही रहता है । मंगल-अमंगल में यही हमारा सहायक होता है । देवदत्त को दें । राय लेने पर 'देवदत्त को दें' कहने वालों की संख्या अधिक निकली । उन्होंने देवदत्त को दे दिया । देवदत्त ने उसकी डसें कटवा, ओवट्टक वस्त्र सिलवा, रँगवा कर सुनहरी रेशम सदृश बना पहना ।

उस समय तीस भिक्षुओं ने राजगृह से श्रावस्ती पहुँच, शास्ता को प्रणाम कर कुशल समाचार पूछे जाने पर वह समाचार कह निवेदन किया कि भन्ते

इस प्रकार देवदत्त ने अपने अयोग्य चीवर (= अर्हत-ध्वजा) को धारण किया। शास्ता ने 'भिक्षुओं' न केवल अभी देवदत्त ने अपने अयोग्य चीवर को धारण किया, पहले भी धारण किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में हाथी के कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर वह अस्सी हजार मस्त हाथियों के नायक बन जंगल में रहने लगे।

एक गरीब आदमी ने वाराणसी में दन्तकार गली में हाथी-दाँत का काम करने वालों को चूड़ी आदि बनाते देख कर पूछा—हाथी-दाँत मिलें तो लोगे? उन्होंने कहा—लेंगे। वह शस्त्र ले, काषाय वस्त्र पहन, प्रत्येक-बुद्ध का वेश बना, टोप पहन, हाथियों की गली में जा, आयुध से हाथियों को मार, दाँत ला, वाराणसी में बेच, जीविका चलाता था। आगे चलकर उसने बोधिसत्व के दल के सबसे अन्तिम हाथी को मारना आरम्भ किया। रोज हाथियों को कम होते देख हाथियों ने बोधिसत्व से कहा—किस कारण से हाथी कम हो रहे हैं?

बोधिसत्त्व ने देखभाल करते हुए सोचा—एक आदमी प्रत्येक-बुद्ध का वेश पहनकर हाथियों की कतार के सिरे पर रहता है। कहीं वही तो नहीं मारता है। उसका पता लगाऊँगा। एक दिन हाथियों को आगेकर स्वयं पीछे-पीछे चला। वह आदमी बोधिसत्त्व को देखते ही शस्त्र लेकर कूदा। बोधिसत्त्व ने रुक कर खड़े हो, उसे जमीन पर गिरा, कुचल कर मार डालने के लिए सूण्ड उठाई। (लेकिन) उसके पहने काषाय वस्त्रों को देख सोचा—इस अर्हतध्वजा का मुझे आदर करना चाहिए। उसने सूण्ड लपेट कर "भो पुरुष! यह अर्हतध्वजा तेरे योग्य नहीं है। तू इसे क्यों धारण करता है?" कहते हुए ये गाथाएँ कहीं—

> अनिक्कवासो कासावं यो वत्थं परिदहेस्सति,
> अपेतो दमसच्चेन न सो कासावमरहति ॥
> यो च वन्तकसावस्स सीलेसु सुसमाहितो,
> उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमरहति[1] ॥

१. धम्म पद (१/९,१०)

[जो अपने मन को स्वच्छ किये बिना काषाय-वस्त्र को धारण करता है, सत्य और संयम से रहित वह व्यक्ति काषाय-वस्त्र का अधिकारी नहीं ।]

[जिसने अपने मन के मैल को दूर कर दिया है, जो सदाचारी है, सत्य और संयम से युक्त वह व्यक्ति ही काषाय-वस्त्र का अधिकारी है ।]

अनिक्कसावो, कसाव (=मैल) कहते हैं राग को, द्वेष को, मूढ़ता को, म्रक्ष (=दूसरे के गुणों को माखना) को, प्लास (दूसरे गुणी के साथ अपनी तुलना करना) को, ईर्ष्या को, मात्सर्य को माया को, शठता को, अकड़ को, स्पर्धा को, मान को, अतिमान को, मद को, प्रमाद को—सभी अकुशल-धर्मों को, सभी दुश्चरित्रों को, संसार के सभी डेढ़ हजार बन्धन-क्लेशों को। वे जिस आदमी के प्रहीण नहीं हुए; जिसके (चित्त-) संतान से नहीं निकले, नहीं उखड़े, वह आदमी **अनिक्क-सावो** । **कासावं** काषाय रस (रंग) पी हुई अर्हत्-ध्वजा । **यो वत्थं परिदहेस्सति**, जो ऐसा होकर इस प्रकार का वस्त्र धारण करेगा, **अपेतो दमसच्चेन**, इन्द्रिय-दमन नामक संयम से तथा निर्वाण नामक परमार्थसत्य से दूर । अथवा **अपादान** (-विभक्ति) के अर्थ में **कर्ण**; मतलब हुआ इस संयम-सत्य से दूर । सत्य का मतलब यहाँ वाणी का सत्य और चार (आर्य-) सत्य भी है । **न सो कासावमरहति**, वह आदमी का कासाव-रहित न होने से काषाय रंग की अर्हत-ध्वजा का अधिकारी नहीं । वह इसके योग्य नहीं । **यो च वन्तक-सावस्स**, जो आदमी उक्त प्रकार के कासाव से मुक्त होने के कारण कासावरहित है । **सीलेसु सुसमाहितो**, मार्ग-शील तथा फल-शील में सम्यक् स्थित, लाकर स्थापित कर दिये की तरह उनमें प्रतिष्ठित; उन शीलों से युक्त के लिए यह प्रयोग है। **उपेतो**, सम्पन्न, युक्त । **दमसच्चेन**, उक्त प्रकार के दमन से तथा सत्य से । **स वे कासावम रहति**, वह इस प्रकार का आदमी ही इस काषायवर्ण की अर्हत्ध्वजा का अधिकारी है ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने उस आदमी को यह बात कह, 'इसके बाद उधर न आना, यदि आया तो तेरी जान नहीं बचेगी' डराकर भगा दिया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय हाथी मारने वाला आदमी देवदत्त था । दलपति मैं ही था। ●

२२२. चुल्लनन्दिय जातक

"इदं तदाचरियवचो..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

एक दिन धर्मसभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई--आयुष्मानों! देवदत्त कठोर है, पुरुष है, दुस्साहसी है, उसने सम्यक्-सम्बुद्ध को मारने वाले नियुक्त किये, उन पर दुश्शीलता का आरोप लगाया, नालागिरि (हाथी) का प्रयोग किया; तथागत के प्रति उसकी शान्ति, मैत्री, दया कुछ भी नहीं।

शास्ता ने आकर पूछा--भिक्षुओं, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? "अमुक बातचीत।" "भिक्षुओं, न केवल अभी देवदत्त कठोर, पुरुष तथा दयाहीन है, वह पहले भी कठोर; पुरुष तथा दयाहीन ही रहा है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में नन्दिय नामक वानर हुए। उसके छोटे भाई का नाम था चुल्लनन्दिय। वे दोनों अस्सी हजार वानरों के नेता हो हिमालय प्रदेश में अन्धी माता की सेवा करते हुए रहते थे। वे माता को झाड़ी में सुला, स्वयं जंगल में जा, वहाँ से मीठे-मीठे फल ले, माता के पास भेजते। लाने वाले उसे न देते। वह भूख से पीड़ित हो हड्डी-चर्म मात्र रह गयी।

बोधिसत्व ने कहा--"माँ, हम तुम्हें मधुर फल भेजते हैं। तुम किसलिए कुम्हला रही हो?"

"तात! मुझे नहीं मिलते।"

बोधिसत्व ने सोचा—यदि मैं दल की नेतागिरी करता रहा तो माता मर जाएगी। मैं दल को छोड़ माता की ही सेवा करूँगा।

उसने चुल्लनन्दिय को बुलाकर कहा--तात! तू दल की नेता गिरी कर।

मैं माता की सेवा करूँगा। उसने अपने भाई से कहा--मुझे दल की नेतागिरी से काम नहीं। मैं भी माता की ही सेवा करूँगा। वे दोनों एकमत हो दल को त्याग, माता को ले, हिमवन्त को छोड़, सीमान्त में न्यग्रोध-वृक्ष के नीचे रहते हुए माता की सेवा करने लगे।

एक वाराणसी-वासी ब्राह्मण-विद्यार्थी ने तक्षशिला में सर्वप्रसिद्ध आचार्य के पास सब विद्यायें ग्रहण कर पूछा---अब मैं जाऊँ? आचार्य विद्या के प्रताप से दुस्साहसी है, ऐसे लोगों का सब समय एक-सा ही नहीं होता। महाविनाश, महा-दुख को प्राप्त होते हैं। तू कठोर मत हो। ऐसा काम मत कर जिससे पीछे पछताना पड़े' उपदेश दे विदा किया।

उसने आचार्य को प्रणाम कर, वाराणसी पहुँच, घर बसा, सोचा कि मैं किसी दूसरे शिल्प से जीविका न चला सकूँगा। इसलिए मैं धनुष के सिरे से जीवित रहूँगा। मैं शिकारी का काम कर जीविका चलाऊँगा। वह वाराणसी से निकल सीमान्त के गाँव में रहते हुए धनुष-तरकस बाँध, जंगल में जा, नाना प्रकार के पशुओं को मार मांस बेचकर जीविका चलाने लगा।

एक दिन उसे जंगल में कुछ नहीं मिला। घर लौटते हुए उसने खुले मैदान के एक सिरे पर एक वट-वृक्ष देखा। शायद यहाँ कुछ मिले सोच वह वट-वृक्ष की ओर गया।

उसी समय दोनों भाई माँ को फल खिला, उसे आगे करके वृक्ष के नीचे बैठे थे। जब उन्होंने उस शिकारी को आते देखा, तो सोचा कि हमारी माँ को देखकर भी क्या करेगा? वे स्वयं शाखाओं के बीच में छिप गये। उस निर्दयी आदमी ने वृक्ष के नीचे पहुँच, उनकी उस बुढ़ापे से दुर्बल अन्धी माँ को देख कर सोचा--"खाली हाथ जाने से मुझे क्या लाभ? इस बन्दरी को मार कर जाऊँगा।"

उसने उसे मारने के लिए धनुष हाथ में लिया। बोधिसत्व ने यह देख चुल्लनन्दिय को कहा--"तात! यह आदमी मेरी माँ को बींधना चाहता है। मैं इसे अपना जीवन दान दूँगा। तू मेरे मरने पर माता की सेवा करना।" फिर शाखाओं की ओट से निकल 'हे पुरुष! मेरी माँ को मत मार। यह अन्धी है। फिर बुढ़ापे से दुर्बल है। मैं इसे जीवन दान देता हूँ। तू इसे न मार कर मुझे मार' कह उससे प्रतिज्ञा करा जाकर तीर के पास बैठा।

उस निर्दयी ने बोधिसत्व को बींध, गिराकर फिर उसकी माँ को भी मारने को धनुष उठाया। इसे देख चुल्लनन्दिय ने सोचा—यह मेरी माँ को मारना चाहता है। एक दिन भी यदि मेरी माँ जी सके, तो 'प्राण बचे' ही कहा जाएगा। मैं इसे अपना जीवनदान दूँगा। उसने शाखाओं की ओट से निकल कर कहा—"भो पुरुष ! मेरी माँ को मत मार। मैं इसे जीवन-दान देता हूँ। तू मुझे मार। हम दोनों भाइयों को ले जाकर हमारी माँ को जीवन-दान दे।" उससे प्रतिज्ञा ले, वह तीर के पास जा बैठा। शिकारी उसे मार 'यह घर पर बच्चों के लिए होगी' सोच, उनकी माता को भी मार; तीनों जनों को लेकर घर की ओर गया।

इस पापी के घर पर बिजली गिर पड़ी। उसकी भार्या और दो लड़के घर के साथ ही जल गये। पृष्ठ-बाँस और थम्बा मात्र बचे।

गाँव के दरवाजे पर ही एक आदमी ने उसे देख यह समाचार कहा। वह स्त्री-बच्चों के शोक से इतना अभिभूत हुआ कि उसी जगह पर मांस की बहँगी और धनुष छोड़, वस्त्र उतार, नंगा हो, बाँहें पकड़ रोता हुआ घरगया। वह खम्भा टूट कर सिर पर गिर पड़ा। सिर फट गया। पृथ्वी ने विवर दे दिया। अवीचि नरक से अग्नि ज्वाला निकली। जब वह पृथ्वी से विवर निगला जा रहा था, उसने आचार्य के उपदेश को याद कर 'इसी बात को देख पाराशर्य ब्राह्मण ने मुझे उपदेश दिया था' रोते हुए इन दो गाथाओं को कहा—

इदं तदाचरियवचो पारासरियो यदब्रवी,
मासु त्वं अकरा पापं यं त्वं पच्छा कतं तपे ॥
यानि करोति पुरिसो तानि अत्तनि पस्सति,
कल्याणकारी कल्याणं पापकारी च पापकं,
यादिसं वपते बीजं तादिसं हरते फलं ॥

इसका अर्थ—जो पारासरिय (पाराशर्य) ब्राह्मण ने कहा कि तू पापकर्म मत कर, पीछे तुझे ही कष्ट देगा—यह उस आचार्य का वचन है। आदमी शरीर, वाणी अथवा मन से जो भी कर्म करता है उनका फल पाता हुआ उन्हीं कर्मों को अपने में देखता है। शुभकर्म करने वाला शुभफल पाता है, पापकर्म करने वाला बुरा अनिष्टकर फल पाता है। दुनिया में भी जैसा बीज बोता है,

वैसा ही फल पाता है। बीज के अनुसार बीज के अनुकूल ही फल ले जाता है, ग्रहण करता है, भोगता है।

इस प्रकार रोता हुआ वह पृथ्वी में दाखिल हो अवीची महानरक में पैदा हुआ।

शास्ता ने, "भिक्षुओं; न केवल अभी देवदत्त कठोर, परुष तथा दयाहीन है, वह पहले भी कठोर, परुष तथा दयाहीन ही रहा है" कह यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय शिकारी देवदत्त था। चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य सारिपुत्र। चुल्लनन्दिय आनन्द। माता महाप्रजापति गौतमी। महानन्दिय तो मैं ही था।

२२३. पुटभत्त जातक

"नमे नमन्तस्स. . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक कुटुम्बी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती नगर निवासी एक गृहस्थ जनपद निवासी एक गृहस्थ के साथ लेनदेन करता था। वह अपनी भार्या लेकर अपने करजदार के पास गया। उसने 'दे नहीं सकता हूँ' कह, कुछ न दिया। वह क्रुद्ध हो बिना कुछ खाये ही चल दिया।

रास्ते में उसे भूख से पीड़ित देख, रास्ता चलने वाले आदमियों ने भात की पोटली दी—भार्या को भी देकर खाओ। उसने वह ले उसे न देने की इच्छा से कहा—भद्रे, यह चोरों के ठहरने का स्थान है। तू आगे-आगे जा। फिर सब भात खा चुकने पर उसे खाली पोटली दिखा कहा—'भद्रे, उन्होंने भातरहित खाली पोटली ही दी।' यह जान कि वह अकेला ही खा गया, उसे दुःख हुआ।

वे दोनों जेतवन में विहार के पिछली तरफ से जाते हुए पानी पीने के लिए जेतवन में प्रविष्ट हुए। शास्ता भी उनके आने की प्रतीक्षा करते हुए गन्धकुटी की छाया में वैसे ही बैठे जैसे रास्ता घेर कर कोई शिकारी बैठा हो। वे दोनों शास्ता को देख, पास जा, प्रणाम कर बैठे।

शास्ता ने उनका कुशल समाचार पूछ स्त्री से प्रश्न किया—"भद्रे! क्या यह तेरा स्वामी तेरा हितैषी है, क्या तेरे प्रति स्नेह रखता है?"

"भन्ते, मेरा तो इसके प्रति स्नेह है, किन्तु यह मेरे प्रति स्नेह-रहित है। और दिनों की बात रहने दें आज ही इसे रास्ते में भात की पोटली मिली। यह बिना मुझे दिये ही स्वयं खा गया।"

"उपासिके, तू नित्य इसकी हितैषिणी तथा इसके प्रति स्नेह रखती रही है। यह स्नेह-रहित ही रहा है। लेकिन जब इसे पण्डितों की जबानी तेरे गुण मालूम होते रहे हैं, तो यह तुझे सारा ऐश्वर्य दे देता रहा है।"

उसके प्रार्थना करने पर (भगवान् ने) पूर्व जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व आमात्य कुल में पैदा हो बड़े होने पर उसके अर्थधर्मानुशासक हुए।

राजा ने अपने पुत्र पर षड्यन्त्र का सन्देह कर उसे निकाल दिया। वह अपनी भार्या सहित नगर से निकल काशी के एक गामड़े में रहने लगा।

आगे चलकर जब उसने पिता के मरने का समाचार सुना तो कुलागत राज्य को लेने के लिए वापिस बनारस आया। रास्ते में उसे भार्या को भी देकर खाने के लिए भात की पोटली मिली। उसने भार्या को न दे अकेले ही खाया। भार्या कठोर-हृदय जान बड़ी दुखी हुई।

वह वाराणसी का राजा हो उसे पटरानी बना 'इतना ही इसके लिए पर्याप्त है' समझ उसका और कोई सत्कार सम्मान न करता। कैसे दिन कटते हैं? तक न पूछता। बोधिसत्व ने सोचा--यह देवी राजा का बहुत उपकार करने वाली है, उसके प्रति स्नेह रखती है; लेकिन राजा इसे कुछ नहीं मानता। इसका सत्कार-सम्मान करवाऊँगा।

बोधिसत्व ने पास जा आदर पूर्वक एक ओर खड़े हो 'तात क्या है ?' पूछने पर बातचीत चलाने के लिए कहा--देवी! हम तुम्हारी सेवा करते हैं। क्या बड़े बूढ़ों को वस्त्र-खण्ठ या भात नहीं देना चाहिए ?

"तात, मैं स्वयं कुछ नहीं पाती। तुम्हें क्या दूंगी। जब मिलता था दिया। अब राजा मुझे कुछ नहीं देता दूसरी किसी चीज की बातें जाने दें। राज्य ग्रहण करने के लिए आने के समय में भात की पोटली पा मुझे-भात तक न दे अपने ही खाया।"

"अम्म! क्या राजा के सामने ऐसा कह सकेगी ?"

"तात! कह सकूंगी।"

"तो आज ही जब मैं राजा के सामने खड़ा होकर पूछूं तो ऐसा कहना। मैं आज ही तेरे गुण प्रकट करूँगा।

ऐसा कह बोधिसत्व पहले से जाकर राजा के सामने खड़ा हुआ। वह भी जा राजा के सामने खड़ी हुई।

बोधिसत्व ने उसे कहा—अम्म ! तुम अति कठोर-हृदया हो। क्या बड़े-बूढ़ों को वस्त्र या भात नहीं देना चाहिए ?

"तात ! मुझे ही राजा से कुछ नहीं मिलता। तुम्हें क्या दूंगी।"

"क्या पटरानी नहीं हो ?"

"तात ! कुछ सम्मान न मिलने पर पटरानी होने से क्या होगा ? अब मुझे तुम्हारा राजा क्या देगा। उसने रास्ते में भात की पोटली पा, उसमें से कुछ भी न दे स्वयं खाया।"

बोधिसत्व ने पूछा—

"महाराज, क्या ऐसी बात है ?"

राजा ने स्वीकार किया। बोधिसत्व ने राजा 'स्वीकार करता है' जान देवी को कहा—

"देवी ! राजा को अप्रिय होने पर तुम्हें यहाँ रहने से क्या लाभ ? संसार में अप्रिय का साथ दुखदायी होता है। तुम्हारे यहाँ रहने से राजा को अप्रिय के साथ रहने का दुख होगा। प्राणी 'मिलने वाले के साथ मिलते हैं, न मिलने वाले के साथ नहीं मिलते' जान दूसरी जगह चला जाना चाहिए। दुनिया बहुत बड़ी है।'

इतना कह ये गाथाएँ कहीं—

नमे नमन्तस्स भजे भजन्तं
किच्चानुकुब्बस्स करेय्य किच्चं,
नानत्थकामस्स करेय्य अत्थं
असम्भजन्तम्पि न सम्भजेय्य ॥१॥
चजे चजन्तं वणथं न कयिरा
अपेतचित्तेन न सम्भजेय्य

द्विजो दुमं खीणफलं ति ञत्वा
अञ्ञं समेक्खेय्य महा हि लोको ॥२॥

[झुकनेवाले के सामने झुके। संगति करने वाले के साथ संगति करे। जो अपने काम आता हो उसका काम करे। अनर्थ चाहने वाले का अर्थ न करे। जो संगति करना चाहता न हो, उससे संगति न करे ॥१॥

[छोड़ने वाले को छोड़ दे। ऐसे से स्नेह न करे। जिसका दिल विमुख हो गया हो, उससे संगति न करे। जिस तरह पक्षी वृक्ष को फलरहित जानकर दूसरे (वृक्ष) को ढूढ़ते हैं; उसी तरह दूसरे को ढूढ़े। संसार बड़ा है ॥२॥

नमे नमन्तस्स भजे भजन्तं जो अपने सामने झुके उसी के सामने झुके। जो संगति करता है उसी से संगति करे। **किच्चानुकुब्बस्स करेय्य किच्चं**, काम पड़ने पर जो काम आवे, काम पड़ने पर उसका भी काम करे।

चजे चजन्तं वणथं न कयिरा अपने को छोड़ने वाले को छोड़ ही दे। उससे तृष्णा नामक स्नेह न करे। **अपेतचित्तेन** विगत चित्त से वा बदले हुए चित्त (वाले) के साथ। **न सम्भजेय्य** वैसे के साथ न मिले जुले। **द्विजो दुमं** जैसे पक्षी पहले फले होने पर भी जब वृक्ष के फल नहीं रहते तो क्षीणफल हुआ जान उसे छोड़ दूसरे को देखता है, खोजता है उसी तरह **अञ्ञं समेक्खेय्य महा हि** यह **लोको**। तुम्हें स्नेह करने वाला एक न एक आदमी मिल जायेगा।

यह सुन वाराणसी राजा ने देवी को सब ऐश्वर्य दिये। तब से लगातार वे मिल-जुलकर प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर दोनों पति-पत्नी स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुए।

उस समय पति पत्नी यह दोनों पति पत्नी थे। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

२२४. कुम्भाल जातक[1]

"यस्सेते चतुरो धम्मा. . ." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

यस्सेते चतुरो धम्मा वानरिन्द यथा तव,
सच्चं धम्मो धिति चागो दिट्ठं सो अतिवत्तति
यस्स चेते न विज्जन्ति गुणा परमभद्दका
सच्चं धम्मो धिति चागो दिट्ठं सो नातिवत्तति ॥

[वानरेन्द्र, जिसमें तेरे समान यह चारों गुण हैं—सत्य, धर्म, धृति और त्याग—वह शत्रु को जीत लेता है। जिसमें यह चार परम श्रेष्ठ गुण नहीं हैं—सत्य, धर्म, धृति और त्याग—वह शत्रु को नहीं जीत सकता।]

गुणा परमभद्दका जिसमें यह चार परम श्रेष्ठ एकत्रित होकर संक्षिप्त रूप से गुण नहीं हैं, वह शत्रु को नहीं जीत सकता है।

बाकी सब पूर्वोक्त **कुम्भाल जातक**[2] में कहे अनुसार ही है, मेल बैठाना भी।

⊙

---

१. देखें वानरिंद जातक (५७)! कथा समान है। केवल एक गाथा अधिक है।

२. कुम्भील जातक = वानरिंद जातक (१.६.५७)

२२५. खन्तिवण्णन जातक

"अत्थि मे पुरिसो देव...." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय कोशल राजा के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसके एक बहुत उपकारी अमात्य ने अन्तःपुर दूषित किया। राजा ने 'मेरा उपकारी है' सोच सहन करके शास्ता से कहा। शास्ता ने कहा—"महाराज! पुराने राजाओं ने भी इस प्रकार सहन किया है।" उसके प्रार्थना करने पर (शास्ता) ने पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय एक अमात्य ने उसके रनिवास को दूषित किया। अमात्य के सेवक ने उसके घर को दूषित किया। अमात्य ने उसके अपराध को सहन न कर सकने के कारण उसे राजा के पास ले जाकर पूछा—देव! मेरा एक सेवक है। वह मेरे सभी काम करने वाला है। उसने मेरे घर में दूषित-कर्म किया है। उसका क्या करना चाहिए? इस प्रकार पूछते हुए पहली गाथा कही—

अत्थि मे पुरिसो देव! सब्बकिच्चेसु ब्यावटो,
तस्स चेको पराधत्थि तत्थ त्वं किन्ति मञ्ञसि॥

[देव मेरा एक सभी काम करने वाला आदमी है। उसका एक अपराध है। उस विषय में आप क्या कहते हैं?]

तस्स चेको पराधत्थि उस पुरुष का एक अपराध है। **तत्थ त्वं किन्ति मञ्ञसि** उस पुरुष के अपराध के बारे में आप क्या करना चाहिए मानते हैं। जैसे आपके मन में आये वैसा दण्ड दें।

यह सुन राजा ने दूसरी गाथा कही—

अम्हाकञ्चत्थि पुरिसो एदिसो इध विज्जति,
दुल्लभो अंगसम्पन्नो खन्तिरस्माकरुच्चति ॥

[हमारा भी ऐसा आदमी यहाँ है। सब गुणों से युक्त आदमी दुर्लभ है। हमें (इस विषय में) सहन करना ही अच्छा लगता है।]

अम्हाकम्पि राजाओं का भी एदिसो बहुत उपकारी (किन्तु) घर में दूषित कर्म करने वाला आदमी है। और वह **इध विज्जति** अभी भी यहीं रहता है। हम राजा होते हुए भी बहुत उपकारी होने से सहन करते हैं। तुम्हें राजा न होने पर भी सहना भार हुआ। **अंगसम्पन्नो** सभी गुणों से युक्त मनुष्य **दुल्लभो** इस कारण से **अस्माकं** ऐसे स्थानों पर सहन करना ही **रुच्चति**।

अमात्य समझ गया कि राजा ने उसी के बारे में कहा है। उसके बाद से उसने रनिवास को दूषित करने का साहस नहीं किया। उसके सेवक ने भी यह जानकर कि अमात्य को पता लग गया है उसके बाद से वह कर्म करने का साहस नहीं किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मैं ही वाराणसी-राजा था। वह अमात्य भी, राजा ने शास्ता को कह दिया जान तब से वह कर्म नहीं कर सका।

२२६. कोसिय जातक

"काले निक्खमणा साधु. . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल नरेश के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशल राजा प्रत्यन्त देश को शान्त करने के लिए गैर मुनासिब समय पर निकल पड़ा। कथा उपरोक्त कथा[1] के सदृश ही है।

ख. अतीत कथा

शास्ता ने पूर्व (-जन्म) की कथा लाकर कहा--महाराज ! पूर्वकाल में बाराणसी नरेश ने नामुनासिब समय निकल उद्यान में पड़ाव डलवाया। उसी समय एक उल्लू बाँसों के झुण्डों में घुस कर छिप रहा। कौओ की सेना ने आकर उसे घेर लिया कि निकलते ही पकड़ेंगे। उसने सूर्यास्त तक बिना रुके, समय रहते ही निकल भागना आरम्भ किया। कौओं ने उसे घेर चोंच से ठोंगे मार-मार कर गिरा दिया। राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर पूछा--तात ! यह कौवे उल्लू को क्यों मार गिरा रहे हैं ? बोधिसत्व ने उत्तर दिया--महाराज ! अपने निवास-स्थान से असमय बाहर निकलने वाले इस प्रकार का दुःख अनुभव करते ही हैं। इसलिए नामुनासिब समय पर अपने स्थान से नहीं निकलना चाहिए। यह बात कहते हुए ये दो गाथाएँ कहीं—

काले निक्खमणा साधु नाकाले साधु निक्खमो
अकालेनहि निक्खम्म एककम्पि बहूजनो,
न किञ्च अत्थं जोतेति धंकसेनाव कोसियं ॥

---

१. देखे कळाय मुट्ठि जातक (१७६)

धीरो च विधिविधानञ्ञू परेसं विवरञ्ञगू[1]
सब्बामिते वसीकत्वा कोसियोव सुखो सिया ॥

[समय पर (घर से बाहर) निकलना अच्छा है। असमय निकलना अच्छा नहीं। असमय पर निकलने से किसी लाभ को प्राप्त नहीं करता। अकेले को भी बहुत जन (मार देते हैं) जैसे कौओं की सेना उल्लू को।]

[धीर-विधि-विधान को जानने वाला, तथा दूसरों के मार्ग पर चलने वाला सभी शत्रुओं को वशीभूत कर (पण्डित) उल्लू की तरह सुखी होवे]

काले निक्खमणा साधु महाराज निष्क्रमण का मतलब है निकलना वा पराक्रम करना; यह उचित समय पर ही अच्छा होता है। **नाकाले साधु निक्खमो** असमय अपने निवासस्थान से दूसरे स्थान पर जाना--निकलना वा पराक्रम करना--ठीक नहीं। **आकालेनहि** इत्यादि चारों पदों में पहले से तीसरे और दूसरे से चौथे का सम्बन्ध जोड़कर इस प्रकार अर्थ जानना चाहिए। अपने निवास-स्थान से असमय निकलकर आदमी **न किञ्चि अत्थं जोतेति** अपनी कुछ भी उन्नति नहीं कर सकता। सो **एककम्पि बहुजनो** बहुत से भी वे शत्रु इसे अकेला निकला वा जाता देख मारकर महाविनाश को पहुँचा देंगे। यह उपमा है--**धंकसेनाव कोसियं** जिस प्रकार यह कौओं की सेना इस असमय पर निकले, जाते उल्लू को चोच से ठोंगे मारती है, महाविनाश को प्राप्त करती है, वैसे ही। इसलिए पशु-पक्षियों तक को भी--किसी को भी असमय पर अपने निवासस्थान से नहीं निकलना चाहिए, नहीं चल पड़ना चाहिए।

दूसरी गाथा में **धीर** का मतलब है पण्डित। **विधि** पुराने बुद्धिमान लोगों द्वारा स्थापित परम्परा। **विधानं** हिस्सा या क्रम। **विवरञ्ञगू** भेद को जानते हुए। **सब्बामितें** सभी शत्रु **वसी कत्वा** अपने वश में करके। **कोसियोव** इस मूर्ख उल्लू से भिन्न किसी दूसरे बुद्धिमान उल्लू की तरह।

------

१. गाथाओं का टीकाकार ने जो अर्थ किया है वह ठीक नहीं है। प्रतीत होता है कि कथा अन्यथा हो गई है।

मतलब यह है कि जो बुद्धिमान 'इस समय निकलना चाहिए, पराक्रम करना चाहिए; इस समय नहीं निकलना चाहिए, नहीं पराक्रम करना चाहिए' पुराने पण्डितों द्वारा स्थापित परम्परा नामक जो यह विधि है उसके विभाग नामक विधान को, अथवा विधि के विधान, क्रम वा अनुष्ठान को जानता है; वह विधि-विधान को जानने वाला पराये और अपने भेद को जानकर जैसे बुद्धिमान उल्लू रात्रि को अपने समय पर निकल, पराक्रम कर, जहाँ तहाँ सोये हुए कौओं के सिरों को छेदता हुआ उन सभी शत्रुओं को वश में कर सुखी होता है; इस प्रकार बुद्धिमान आदमी समय पर निकल, पराक्रम कर, शत्रुओं को वश में कर, सुखी होवे, दुःखरहित होवे।

राजा बोधिसत्व का कहना सुन रुका।

शास्ता ने धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

२२७. गूथपाणक जातक

"सूरो सूरेन संगम्म. . ." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन से गव्यूति[1], आधे योजन की दूरी पर एक निगम-ग्राम था। वहाँ से बहुत **शलाका-भोजन**[2] मिलता था। वहाँ एक प्रश्न पूछने वाला ठिगना व्यक्ति रहता था। वह शलाका-भोजन तथा पाक्षिकभोजन लेने के लिए गये तरुण भिक्षु तथा सामणेरों से 'कौन खाते हैं? कौन पीते हैं? कौन भोजन करते हैं?' आदि प्रश्न पूछता। उत्तर न दे सकने पर उन्हें लज्जित करता। वे उसके भय से शलाका-भोजन तथा पाक्षिक-भोजन लेने उस गाँव न जाते।

एक दिन एक भिक्षु शलाका बाँटने के स्थान पर जाकर बोला—भन्ते? क्या अमुक गाँव में शलाका-भोजन वा पाक्षिक-भोजन है?

"आयुष्मान! है, किन्तु वहाँ एक ठिगना व्यक्ति है जो प्रश्न पूछता है। उत्तर न दे सकने पर गाली देता है, अपशब्द कहता है। उसके भय से कोई नहीं जा सकते हैं।"

"भन्ते! वहाँ का भोजन मेरे जिम्मे करें। मैं उसका दमन कर, उसे निर्विष करके ऐसा बना दूंगा कि आगे से तुम्हें देख कर भागे।"

भिक्षुओं ने 'अच्छा' कह वहाँ का भोजन उसके जिम्मे कर दिया।

उसने वहाँ ग्राम-द्वार पर पहुँच चीवर पहना। उसे देख ठिगने ने चण्डमेढ़े की तरह जल्दी से आकर कहा—श्रमण! मेरे प्रश्न का उत्तर दे।

---

१. गव्यूति = १/४ योजन।

२. शलाक भत—गृहस्थों के घर से शलाका से प्राप्त होने वाला भोजन।

"उपासक ! गाँव से भिक्षा माँग कर, यवागु लाकर आसनशाला लौट आने दे।"

उसने उसके यवागु लेकर आसन-शाला लौट आने पर भी वैसे ही कहा। उस भिक्षु ने अभी यवागु पीने दे, फिर आसन-शाला बुहार लेने दे, फिर शलाका-भात ले आने दे कह शलाका-भात ला उसी को पात्र पकड़ा कर कहा—आ। तेरे प्रश्न का उत्तर दूँगा। इस प्रकार उसे गाँव के बाहर ले जा चीवर को इकट्ठा कर कंधे पर रख, हाथ से पात्र ले खड़ा हुआ। वहाँ भी वह बोला—श्रमण ! मेरे प्रश्न का उत्तर दे। उसने 'तेरे प्रश्न का उत्तर देता हूँ' कह एक ही मार से गिरा हड्डियों को चूर-चूर करते हुए पीटा। फिर मुँह में मुँह डाल धमाका कर गया—अब से यदि इस गाँव में आने वाले किसी भिक्षु से प्रश्न पूछा तो खबर लूँगा। उसके बाद से वह भिक्षु को देखकर ही भाग जाता।

आगे चलकर उस भिक्षु की वह करनी धर्मसभा में प्रकट हो गयी। एक दिन धर्मसभा में बातचीत चली—आयुष्मानों ! अमुक भिक्षु ठिगने के मुँह में मुँह डाल कर कहा। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओं ! यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो? "अमुक बातचीत" कहने पर "भिक्षुओं ! उस भिक्षु ने केवल अभी उसे गन्दगी नहीं लगायी, पहले भी लगायी है" कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में अङ्गमगध वासी एक दूसरे के राष्ट्र को जाते हुए, एक दिन दोनों राष्ट्रों की सीमा के बीच एक तालाब के पास बैठ, शराब पी, मत्स्य-मांस खा प्रात:काल ही गाड़ियों को जोत चल पड़े। उनके चले जाने पर एक गूँह खाने वाला कीड़ा गूँह की दुर्गन्ध से वहाँ आ, उनकी छोड़ी शराब को पानी समझ पी मस्त होकर गूँह के ढेर पर चढ़ा गीला गूँह उसके चढ़ने से थोड़ा नीचे को दबा। वह चिल्लाया—पृथ्वी मेरा बोझ नहीं उठा सकती है। उसी समय एक मस्त हाथी उधर आया। गूँह की दुर्गन्ध सूँघ घृणा कर चल दिया। कीड़े ने उसे देख सोचा—यह मेरे भय से ही भागा जा रहा है। मेरा इसका युद्ध होना चाहिए। उसने उसे ललकारते हुए पहली गाथा कही—

सूरो सूरेन संगम्म विक्कन्तेन पहारिना,
एहि नाग निवत्तस्सु किन्नु भीतो पलायसि;
पस्सन्तु अंगमगधा मम तुय्हञ्च विक्कमं ॥

[तू शूर है । लड़ने में, प्रहार करने में समर्थ शूर के सम्मुख होने पर हे नाग रुक; डर कर भाग क्यों रहा है । जरा अंगमगध के लोग मेरा और तेरा पराक्रम देखें ।

तू **सूरो** मुझ **सूरेन** साथ आकर वीर्य-विक्रम से **विक्कन्तेन** प्रहार करने की सामर्थ्य होने से **पहारिना** किस कारण से बिना लड़े ही जाता है । एक प्रहार तो देने दे । इसलिए **एहि नाग निवत्तस्सु** इतने से ही मरने से भयभीत हो **किन्नु भीतो पलायसि** । यह इस सीमा में रहने वाले **पस्सन्तु अंगमगधा मम तुय्हञ्च विक्कमं** हम दोनों का पराक्रम देखें ।

उस हाथी ने ध्यान देकर उसकी बात सुन, रुक कर उसके पास जा उसे अप्रसन्न करते हुए दूसरी गाथा कही—

न तं पादा वधिस्सामि न दन्तेहि न सोण्डिया,
मिळ्हेन तं वधिस्सामि पूति हञ्ञतु पूतिना ॥

[न तुझे पाव से मारूँगा, न दाँतों से, न सूण्ड से । तुझे गूँह से मारूँगा । गन्दगी गन्दगी से ही मरे ।]

तुझे पाँव आदि से नहीं मारूँगा । तेरे योग्य गूँह से ही तुझे मारूँगा ।

ऐसा कह 'गन्दगी में रहने वाला कीड़ा गन्दगी से ही मरे' (करके) उसके सिर पर बड़ा सा लेण्डा गिरा कर जल छोड़ उसे वहीं मार क्रौञ्चनाद करता हुआ अरण्य में गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय गूँह का कीड़ा ठिगना था । हाथी वह भिक्षु था । उस बात को प्रत्यक्ष देखने वाला, उस वन-खण्ड में रहने वाला देवता मैं ही था ।

२२८. कामनीत जातक

"तयो गिरिं...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय **कामनीत** ब्राह्मण के बारे में कही। वर्तमान कथा तथा अतीत-कथा बारहवें परिच्छेद की **काम जातक**[1] में आएगी।

उन दोनों राजपुत्रों में ज्येष्ठ भाई वाराणसी का राजा हुआ। छोटा भाई उपराजा। राजा की काम भोगों से तृप्ति न होती थी। वह धन का लालची था।

तब बोधिसत्व शक्र देवेन्द्र राजा था। उसने जम्बूद्वीप पर नजर डालते हुए उस राजा को दोनों प्रकार के भोगों में अतृप्त जान उसका निग्रह कर उसे लज्जित करने के उद्देश्य से ब्राह्मण-ब्रह्मचारी का रूप बना आकर राजा को देखा। राजा ने पूछा--

"ब्रह्मचारी ! किस मतलब से आया ?"

"महाराज ! मुझे तीन नगर ऐसे दिखायी देते हैं जो शान्त हैं; धनधान्य से पूर्ण हैं; जहाँ हाथी, घोड़े, रथ और पैदल बहुत हैं; तथा जो हिरण्य, स्वर्ण के अलंकारों से भरे हैं। उन नगरों को थोड़ी ही सेना से जीता जा सकता है। मैं तुम्हें वे नगर जीत कर देने के लिए आया हूँ।"

"ब्रह्मचारी ! कब चलेंगे।"

"महाराज ! कल"

"तो जा, प्रातःकाल ही आना।

"अच्छा महाराज ! जल्दी से सेना तैयार कराएँ" कह शक्र अपने स्थान को चला गया।

अगले दिन राजा ने मुनादी करवा सेना तैयार करवाई और अमात्यों को बुलाकर कहा--"कल एक ब्राह्मण-तरुण ने **उत्तर-पाञ्चाल, इन्द्रप्रस्थ** तथा **केकय**

---

१. काम जातक (४६७)

इन तीनों नगरों के राज्य को जीत कर देने के लिए कहा है। उस तरुण को लेकर तीनों नगरों का राज्य जीतेंगे। उसे जल्दी से बुलाओ।"

"देव ! उसे निवास स्थान कहाँ दिलवाया है ?"

"मैंने उसे निवास-गृह नहीं दिलवाया।"

"उसे भोजन-खर्च दिया ?"

"वह भी नहीं दिया।"

"उसे कहाँ ढूंढ़ें ?"

"नगर की गलियों में ढूंढ़ो।"

उन्होंने ढूंढ़ा। न मिलने पर कहा—

"महाराज ! दिखाई नहीं देता।"

माणवक को न देखने से राजा को महान शोक हुआ—अरे ! इतना बड़ा ऐश्वर्य जाता रहा। हृदय गर्म हो गया। रक्त प्रकुप्त हो गया। रक्तातिसार हो गया। वैद्य चिकित्सा न कर सके। तब तीन चार दिन गुजरने पर शक्र ने ध्यान देकर उसके रोग को जान उसकी चिकित्सा करूँगा सोच ब्राह्मण-रूप धारण कर दरवाजे पर खड़े हो कहलाया—वैद्य-ब्राह्मण तुम्हारी चिकित्सा के लिए आया है।

राजा ने उसे सुन कहा—बड़े-बड़े वैद्य भी मेरा इलाज नहीं कर सके। इसे खर्चा देकर बिदा करो। शक्र बोला—मुझे न भोजन की आवश्यकता है, न खर्चे की। वैद्य की फीस भी नही लूंगा। उसकी चिकित्सा करूँगा। राजा मुझे मिले। राजा ने यह सुनकर कहा—तो आ जाय।

शक्र प्रविष्ट हो जय बुलाकर एक ओर खड़ा हुआ। राजा ने पूछा—"तू मेरी चिकित्सा करेगा ?"

"देव ! हाँ।"

"तो चिकित्सा कर।"

"अच्छा महाराज ! मुझे रोग का लक्षण बताएँ। किस कारण से रोग पैदा हुआ ? कुछ खाने पीने के कारण हुआ वा कुछ देखने सुनने के ?"

"तात ! मेरा रोग सुनने से पैदा हुआ।"

"तूने क्या सुना ?"

"तात ! एक तरुण ने आकर कहा कि मैं तीन नगरों का राज्य जीत

कर दूंगा। मैंने उसे निवास स्थान वा भोजन-खर्च नहीं दिलवाया। वह मुझसे क्रुद्ध होकर दूसरे राजा के पास चला गया होगा। इस प्रकार 'मेरा इतना बड़ा ऐश्वर्य जाता रहा' सोचते रहने के कारण यह रोग पैदा हो गया। यदि कर सकते हो तो कामना रोग की चिकित्सा करो।" इस अर्थ को प्रकट करते हुए पहली गाथा कही--

तयोगिरिं अन्तरं कामयामि
पञ्चाला कुरयो केकये च;
तदुत्तरिं ब्राह्मण कामयामि
तिकिच्छ मं ब्राह्मण कामनीतं ॥

[तीनों नगर और वे जिनकी राजधानी हैं उन पाञ्चाल, कुरु तथा केकय देश की इच्छा करता हूँ। उससे अधिक भी इच्छा करता हूँ। हे ब्राह्मण ! मुझ कामना-ग्रस्त की चिकित्सा कर।]

तयोगिरिं का मतलब है तीन गिरि। अथवा **तयोगिरी** को ही पाठ समझें। जैसे **'यह सुनर्शनगिरि के द्वार को प्रकाशित करता है'** यहाँ सुदर्शन देवनगर को युद्ध करके ग्रहण करना कठिन होने से, अस्थिर करना कठिन होने से, सुदर्शन-गिरि कहा गया। इसी प्रकार यहाँ भी तीनों नगरों से मतलब है तीनों गिरि इसीलिए यही अर्थ है कि कि तीनों नगर और उनके अन्दर तीनों प्रकार के राष्ट्र की इच्छा करता हूँ। **पञ्चाला, कुरयो केकये** च यह उन राष्ट्रों के, नाम हैं। उनमें **पञ्चाला** से मतलब है **उत्तर पञ्चाल**, जहाँ **कम्पिल्ल** नगर है। कुरयो का मतलब है, कुरुराष्ट्र, उसमें **इन्दपत्त** नाम का नगर है। **केकये** प्रथमा विभक्ति के अर्थ में द्वितीया है। इससे केकय राष्ट्र का मतलब है। वहाँ केकय राजधानी ही नगर है। तदुत्तरि मैंने यहाँ वाराणसी राज्य तो प्राप्त किया है और तीन राज्य कामयामि। तिकिच्छ मं ब्राह्मण कामनीतं, इन वस्तु-कामनाओं तथा भोग कामनाओं से ले जाए गए, मारे गए मुझको, हे ब्राह्मण ! यदि सामर्थ्य है तो अच्छा कर।

शक्र ने 'महाराज ! जड़फूल की औषधियों से तेरी चिकित्सा नहीं हो सकती, ज्ञानौषध से ही तेरी चिकित्सा हो सकती' है कह दूसरी गाथा कही—

कण्हाहिदिट्ठस्स करोन्ति हेके
अमनस्सबद्धस्स[1] करोन्ति पण्डिता;
न कामनीतस्स करोति कोचि
ओकवन्तसुक्कस्स ही का तिकिच्छा ॥

[कोई कोई काले साँप से डसे की चिकित्सा करते हैं, कोई कोई पण्डित भूत-प्रेतादि अमनुष्यों से अभिभूतों की चिकित्सा करते हैं, लेकिन कामनाओं के जो वशीभूत हुआ है उसकी कोई चिकित्सा नहीं करता। जो शुक्लधर्म की मर्यादा को लाँघ गया, उसकी क्या चिकित्सा ?]

कण्हाहिदिट्ठस्स करोन्ति हेके कुछ चिकित्सक घोर विषैले सर्प, काले सर्प से डसे हुए की मन्त्रों से तथा औषधियों से चिकित्सा करते हैं। **अमनुस्सबद्धस्स करोन्ति पण्डिता** दूसरे पण्डित भूतवैद्य भूतयक्षादि अमनुष्यों द्वारा मारे गये, अभिभूत, ग्रहण किये गये लोगों की बलिकर्म, परित्तकर्म, औषध तथा भावना आदि से चिकित्सा करते हैं। **न कामनीतस्स करोति कोचि** कामनाओं के वशीभूत आदमी की पण्डितों को छोड़ दूसरा कोई चिकित्सा नहीं करता। यदि करे भी, तो कर नहीं सकता। किस कारण से? **ओकवन्तसुक्कस्स ही का तिकिच्छा** जिन्होंने कुशल-धर्म को पार कर लिया, जिन्होंने कुशलधर्म की मर्यादा लाँघ दी, जो अकुशल धर्म में प्रतिष्टित हो गये, ऐसे आदमियों की मन्त्र वा औषधि से क्या चिकित्सा होगी? ऐसे मूर्ख को दवाइयों से अच्छा नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार बोधिसत्व ने राजा को यह बात समझाते हुए आगे यूँ कहा— "महाराज ! यदि तू इन तीनों राज्यों को प्राप्त करेगा, तो इन चारों नगरों पर राज्य करता हुआ क्या तू एक ही साथ चार-चार वस्त्र पहनेगा? अथवा चार-चार सोने की थालियों में भोजन करेगा। अथवा चार-चार पलँगों पर सोयेगा? महाराज ! तृष्णा के वशीभूत न होना चाहिए। यह विपत्ति का

---

१. 'अमनुस्सविद्धस्स' पाठ अच्छा है।

मूल है। यह बढ़ने पर अपने को बढ़ाने वाले आदमी को आठ महा-निरयों में, सोलह उस्सद-निरयों में तथा शेष नाना प्रकार के अपायों में जा गिराती है।"

इस प्रकार राजा को निरय आदि के भय से धमका कर बोधिसत्व ने धर्मोपदेश दिया। राजा भी धर्म सुनकर शोकरहित हुआ। उसी समय उसका रोग जाता रहा। शक्र भी इसे उपदेश दे, शीलों में प्रतिष्ठित कर, देवलोक को ही चला गया।

वह भी उस समय से लेकर दानादि पुण्यकर्म करके यथाकर्म (परलोक) गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा कामनीत ब्राह्मण था। शक्र तो मैं ही था।

⊙

२२९. पलासी जातक

"गजग्गमेघेहि . . ." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय पलासी परि-ब्राजक के बारे में कही—

क.वर्तमान कथा

वह शास्त्रार्थ करने के उद्देश्य से सारे जम्बूद्वीप में घूमा। कोई शास्त्रार्थ करने वाला न मिला। घूमता-घूमता वह श्रावस्ती पहुँचा। वहाँ जाकर लोगों से पूछा कि मेरे साथ कोई शास्त्रार्थ कर सकता है? मनुष्यों ने इस प्रकार बुद्ध गुणों की प्रशंसा की—" तेरे जैसे हजार हों तो उनके साथ भी शास्त्रार्थ कर सकने वाले, सर्वज्ञ, मनुष्यों में श्रेष्ठ, धर्मेश्वर, दूसरे वादों को जीतने वाले महान् गौतम हैं। सारे जम्बूद्वीप में भी उत्पन्न हुआ विरोधी-मत उन भगवान् को नहीं हरा सकता। सभी मत उनके चरणों में आने पर इस प्रकार चूर्ण विचूर्ण हो जाते हैं जैसे लहरें किनारे पर पहुँच कर।"

परिब्राजक ने पूछा—इस समय वह कहाँ है? उत्तर मिला—-जेतवन में। उसने सोचा—-अब उसके साथ शास्त्रार्थ करूँगा। बहुत से आदमियों के साथ उसने जेतवन जाते समय, नौ करोड़ खर्च से जेत राजकुमार द्वारा बनाया हुआ जेतवन-द्वार देखा। उसने पूछा—-यही श्रवण गौतम के रहने के के प्रासाद हैं?

"यह तो ड्योढ़ी है।"

"ड्योढ़ी ऐसी है तो निवासस्थान कैसा होगा?"

"गन्धकुटी तो असीम है।"

उसने सोचा ऐसे श्रमण से कौन शास्त्रार्थ करेगा! वह वहीं से भाग गया। शोर मचाते हुए कुछ मनुष्यों ने जेतवन में प्रवेश किया। शास्ता ने पूछा—

---

१. पलायि जातक

क्यों असमय आये ? उन्होंने वह समाचार कहा। शास्ता ने कहा--उपासकों ! केवल अभी नहीं, यह पहले भी मेरे निवासस्थान की ड्योढ़ी को ही देख कर भाग गया था। उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में गन्धार राष्ट्र में तक्षशिला में बोधिसत्व राज्य करते थे। वाराणसी में था ब्रह्मदत्त। उसने तक्षशिला पर अधिकार करने की इच्छा से बड़ी सेना के साथ जाकर, नगर के समीप पहुँच, सेना को यह आज्ञा देते हुए कि 'इस तरह से हाथियों को भेजो, इस तरह से घोड़े, इस तरह से रथ, इस तरह से पैदल, इस तरह दौड़ कर शस्त्रों से प्रहार करो तथा इस प्रकार बादलों की घनी वर्षा की तरह बाणों की वर्षा बरसाओ' ये दो गाथाएँ कहीं--

गजग्गमेघेहि हयग्गमालिहि
रथूमिजातेहि सराभिवस्सहि;
थरुग्गहावट्टदळहप्पहारिहि
परिवारिता तक्कसिला समन्ततो ॥
अभिधावथा च पतथा च
विविधविनदिता च दन्तिहि;
वत्ततज्ज तुमुलो घोसो
यथा विज्जुता जलधरस्स गज्जतो ॥

[श्रेष्ठ हाथियों रूप बादलों से, उत्तम घोड़ों की पंक्तियों से, रथों की लहरों से, शरों की वर्षा से, तलवार-धारी चारों ओर प्रहार करने वालों से तक्षशिला को चारों ओर से घेर लो।

दौड़ो, उछलो तथा नाना प्रकार के नाद करने वाले हाथियों द्वारा आज तुमुल घोष करो; जैसे बिजली गर्जना करने वाले मेघों के साथ उछलती कूदती है।]

गजग्गमेघेहि श्रेष्ठ हाथियों रूप मेघों द्वारा। क्रौञ्चनाद गर्जना करने वाले, मस्त हाथियों रूप बादलों द्वारा, यही अर्थ है। **हयग्गमालिहि** श्रेष्ठ घोड़ों की

पंक्ति द्वारा । श्रेष्ठ घोड़ी की पंक्ति के समूह के द्वारा, अश्वों की सेना के द्वारा यही अर्थ है । **रथूमिजातेहि** लहरों के वेग वाले, सागर के जल की तरह रथों की लहरों वाले--रथसेना यही मतलब है । **सराभिवस्सहि** उन रथ-सेनाओं से मूसलाधार बरसने वाले मेघ की तरह तीरों की वर्षा बरसाते हुए । **थरुग्गहावट्ट दळहप्पहारिहि** इधर-उधर से घूम कर दृढ़ प्रहार करने वालों से, तलवार के दस्ते पकड़े हुए; पैदल योद्धाओं से । **परिवारिता तक्कसिला समन्ततो,** जिस प्रकार यह तक्षशिला चारों ओर से घिर जाय, वैसा करो ।

अभिधावथा च पतथा च जल्दी से दौड़ो तथा कूदो । **विविध विनदिता च दन्तिहि** श्रेष्ठ हाथियों के साथ नाना प्रकार से शोर मचाने वाले होओ । सीटी बजाने, गरजाने, बाजे बजाने आदि के नाना प्रकार के शब्द करो । **वत्ततज्ज तुमुलो घोसो** आज बिजली के सदृश महान घोष हो । **यथा विज्जुता जलधरस्स गज्जतो** जैसे गरजते हुए बादल के मुँह से निकली हुई बिजलियाँ विचरण करती हैं, उसी प्रकार विचरते हुए, नगर को चारों ओर से घेर कर, राज्य छीन लो, यही अभिप्राय है ।

वह राजा गरज कर सेना को आज्ञा दे नगर-द्वार के समीप गया । वहाँ ड्योढ़ी को देखकर उसने पूछा कि क्या यह राजा के रहने का स्थान है ? यह 'ड्योढ़ी है' सुन उसने सोचा--जब ड्योढ़ी ऐसी है तो राजा का निवासस्थान कैसा होगा ? उत्तर मिला--वैजयन्त-प्रासाद जैसा । इस प्रकार के ऐश्वर्यशाली राजा के साथ युद्ध न कर सकूँगा, सोच ड्योढ़ी देख कर ही रुक, भाग कर वाराणसी चला आया ।

शास्ता ने यह धर्म देशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय वाराणसी राजा पलासी परिव्राजक था । तक्षशिला-राजा तो मैं ही था ।

२३०. दुतियपलासो जातक

"धजमपरिमितं . . " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक पलासी परिव्राजक के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इस कथा में वह परिव्राजक जेतवन में दाखिल हुआ। उस समय जनसमूह से घिरे हुए अलंकृत धर्मासन पर बैठे हुए, शास्ता मनोशिला तक पर सिंहनाद करते हुए; सिंह-बच्चे के समान धर्म-देशना कर रहे थे। परिव्राजक दशबल-धारी के ब्रह्म शरीर जैसे रूप, पूर्णचन्द्र जैसी शोभा वाले मुँह तथा स्वर्णपट जैसे ललाट को देख कर, 'इस प्रकार के उत्तम पुरुष को कौन जीत सकेगा ?" सोच, रुका और दूसरी मण्डली में घुस कर भाग गया। जनता ने उसका पीछा कर, रुक, शास्ता से वह वृत्तान्त कहा। शास्ता बोले--"न केवल अभी वह परिव्राजक मेरे स्वर्ण-वर्ण मुख को देख कर भाग गया है, वह पहले भी भागा है।" इतना कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बोधिसत्व वाराणसी में राज्य करते थे। तक्षशिला में एक गन्धार राजा था। उसने वाराणसी जीतने की इच्छा से चतुरंगिणी सेना के साथ आकर, नगर घेर लिया। फिर नगर-द्वार पर खड़े हो अपनी सेना को देखते हुए 'इतनी सेना को कौन जीत सकेगा' सोच अपनी सेना की प्रशंसा करते हुए पहली गाथा कही—

धजमपरिमित्तं अनन्तपानं
दुप्पसहं धङ्केहि सागरमिव;
गिरिमिव अनिलेन दुप्पसहो
दुप्पसहो अहमज्ज तादिसेन ॥

[मेरी असीम ध्वजाएँ हैं, अनन्त सेना है। जिस प्रकार कौवों के द्वारा सागर दुर्लंघ्य होता है (अथवा) हवा के द्वारा पर्वत दुर्जेय होता है, उसी प्रकार मैं आज वैसे शत्रु द्वारा दुर्जेय हूँ।]

धजमपरमितं यह मेरे रथों में मोरपंखों में लगा कर ऊँची की हुई ध्वजायें अपरिमित हैं, बहुत हैं, सैकड़ों हैं। **अनन्तपारं** मेरी सेना भी, इतने हाथी हैं, तथा इतने घोड़े हैं इस प्रकार गिनी नहीं जा सकती।

दुप्पसहं शत्रुओं द्वारा जीती नहीं जा सकती। जैसे क्या? **कन्केहि सागर-मिव** जैसे सागर बहुत कौवों द्वारा भी अतिक्रमण नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार दुरधर्ष। **गिरिमिव अनिलेन दुप्पसह** यह मेरी सेना, दूसरी सेना के सामने उसी तरह स्थिर रहती है जैसे हवा के सामने पर्वत। **दुप्पसहो अहमज्ज तादिसेन** इस सेना के साथ मैं आज वैसे (शत्रु) से दुर्जेय हूँ। महल पर खड़े बोधिसत्व के बारे में कहता है।

उसने उसे अपना पूर्ण चन्द्र की-सी शोभा वाला मुख दिखला कर धमकाया—मूर्ख, बकवास मत कर, जिस प्रकार मस्त हाथी सरकण्डे के वन को नष्ट कर देता है उसी प्रकार अभी तेरी सेना को विध्वंस करूँगा। और दूसरी गाथा कही—

मां बालियं विप्पलपि न हिस्स तादिसं
विळय्हसे नहि लभसे निसेधकं,
आसज्जसि गजमिव एकचारिनं
यो तं पदा नळमिव पोथयिस्सति ॥

[मूर्खता की बात मत बक। ऐसा नहीं हो सकता; 'मुझे रोकने वाला नहीं मिलेगा' सोच उबलता है। तू एकचारी हाथी के सामने आया है जो तुझे वैसे ही पाँव से कुचल देगा जैसे सरकण्डे को।]

मा बालियं विप्पलपि अपनी मूर्खता मत बक । **न हिस्स तादिसं** अथवा **न हिस्स तादिसो** पाठ है । मेरी सेना अनन्त है, इस प्रकार विचार कर राज्य जीत सकने वाला तेरे जैसा न होवे वा नहीं होता है । **बिळय्हसे** तू केवल राग, द्वेष, मोह तथा मान से जलकर उबल रहा है । **नहिलभसे निसेधकं** मेरे जैसे को जीत कर फिर और रुकावट डालने वाला तुझे न मिलेगा । जिस रास्ते से तू आया है उसी से भगाऊँगा । **आसज्जसि** प्राप्त हुआ है । **गजमिव एक-चारिनं** एक चारी मस्त हाथी की तरह । **यो तं पदा नळमिव पोथयिस्सति** जो तुझे उसी तरह कुचल देगा जिस तरह मस्त हाथी पाँवों से सरकण्डे को कुचलता है, अच्छी तरह पीस डालता है । तू उसे प्राप्त हुआ, यह अपने बारे में कहा ।

इस प्रकार धमकाते हुए का कहना सुन, गन्धार राजा उसके स्वर्ण-पट सदृश महा-ललाट को देख, भयभीत हो रुक, भाग कर अपने नगर ही चला गया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय गन्धार राजा पलासी परिब्राजक था । वाराणसी राजा तो मैं ही था ।

दूसरा परिच्छेद

६. उपाहन वर्ग

२३१. उपाहन जातक

"**यथापि कीता.** . ." यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय, देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

धर्मसभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानों ! देवदत्त आचार्य को छोड़, तथागत का विरोधी शत्रु बन विनाश को प्राप्त हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओं, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत'। शास्ता ने, 'भिक्षुओं, न केवल अभी देवदत्त आचार्य को त्याग, मेरा विरोधी बन, महाविनाश को प्राप्त हुआ है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हथवानों के कुल में पैदा हो, बड़े होने पर हस्ति-शिल्प में पारङ्गत हो गये।

काशी के एक गामड़े के माणवक ने आकर उनसे विद्या सीखी। बोधिसत्व शिल्प सिखाते हुए आचार्य मुट्ठी[1] नहीं रखते। जो-जो जानते हैं, वह सब सिखा देते हैं। उस माणवक ने बोधिसत्व की सारी विद्या सीख चुकने पर कहा—"आचार्य ! अब मैं राजाओं की सेवा में रहूँगा।" बोधिसत्व ने 'तात ! अच्छा' कह महाराजा से कहा—

---

१. विद्या को छिपा कर रखना।

"महाराज ! मेरा शिष्य आपकी सेवा में रहना चाहता है।"

"अच्छा ! रहे।"

"तो उसका वेतन कह दें।"

'आपका शिष्य आपके बराबर नहीं पा सकता। आपको सौ मिलने पर उसे पचास मिलेंगे, दो (सौ) मिलने पर एक (सौ)।

उसने घर जाकर शिष्य से कहा। शिष्य बोला--

"आचार्य ! मैं आपके बराबर शिल्प जानता हूँ। यदि जितना आप पाते हैं उतना ही वेतन मिलेगा तो राजा की सेवा में रहूँगा, नहीं तो नहीं रहूँगा।"

बोधिसत्व ने वह वृत्तान्त राजा से कहा। राजा बोला—यदि वह तुम्हारे जितना शिल्प जानता है तो तुम्हारे बराबर शिल्प दिखा सकने पर उसे तुम्हारे बराबर मिलेगा। बोधिसत्व ने अपने शिष्य से वह बात कही। उसने कहा 'अच्छा, मैं दिखाऊँगा।' बोधिसत्व ने राजा से कहा। राजा बोला, तो कल शिल्प दिखा। शिष्य ने कहा--दिखाऊँगा, नगर में मुनादी करा दें। राजा ने मुनादी करा दी कि कल आचार्य और उनका शिष्य हस्तिशिल्प दिखायेंगे। जो देखना चाहे वे राजागण में इकट्ठे होकर देखें। आचार्य ने यह सोच कि मेरा शिष्य उपाय-कुशल नहीं है एक हाथी ले उसे एक ही रात में 'उल्टीबात' सिखाई--चल कहने पर पीछे हटो कहने पर चलना, खड़ा हो कहने पर लेटना, लेट कहने पर खड़ा होना, पकड़ करने पर रखना तथा रख कहने पर पकड़ना। इस प्रकार सिखा, अगले दिन वह उस हाथी पर चढ़ राजदरबार में पहुँचा। शिष्य भी एक सुन्दर हाथी पर चढ़ा। जनता इकट्ठी हुई। दोनों ने बराबर शिल्प दिखाया। बोधिसत्व ने अपने हाथी से (हाथी) बदल लिया। वह चल कहने पर पीछे हटा। पीछे हट कहने पर आगे दौड़। खड़ा हो कहने पर लेट गया। लेट कहने पर पर खड़ा हुआ। (उसने) पकड़ करने पर रख दिया। रख कहने पर पकड़ा।

जनता बोली—अरे दुष्ट शिष्य ! तू आचार्य के साथ झगड़ा करता है। अपनी सामर्थ्य नहीं जानता। समझता है कि मै आचार्य के बराबर जानता हूं। फिर जनता ने उसे ढेले और डण्डे की मार से वहीं मार डाला।

बोधिसत्व ने हाथी से उत्तर राजा के पास जाकर कहा—महाराज ! विद्या अपने को सुखी बनाने के लिए सीखी जाती है। लेकिन किसी-किसी के लिए शिल्प विनाश का कारण होता है जैसे ठीक से न बनाया हुआ जूता। इतना कह ये दो गाथाएँ कहीं—

यथापि कीता पुरिसस्सुपाहना
सुखस्स अत्थाय दुखं उदब्बहे;
घम्मभितत्ता तलसा पपीलिता
तस्सेव पादे पुरिसस्स खादरे ॥
एवमेव यो दुक्कुलीनो अनरियो
तम्हाकविज्जञ्च सुतञ्च मादिय;
तमेव सो तत्थ सुतेन खादति
अनरियो वुच्चति पानदूपमो ॥

[जिस प्रकार सुख के लिए खरीदे गये जूते गर्मी से तप्त होकर तथा पाद तल से पीड़ित होकर उसी आदमी के पैर को काट खाते हैं; उसी प्रकार जो नीच कुल का अनार्य होता है वह जिस (आचार्य) से विद्या तथा श्रुत ग्रहण करता है उसी को वह अपने ज्ञान (श्रुत) से खाता है। अनार्य आदमी खराब जूते के समान समझा जाता है।]

उदब्बहे, कष्ट दे। **घम्माभितत्ता तलसा पपीलिता** घाम से अभितप्त और पैर के तलुवे से पीड़ित। **तस्सेव** जिसने वह खराब जूते सुख की आशा से खरीद कर पाँव में डाले उसी के। **खादरे** जखम करते हैं व पाँव खाते हैं।

दुक्कुलीनो खराब जाति का, कुलहीन पुत्र। **अनरियो** लज्जा-भय रहित असत्पुरुष। **तण्हाकविज्जञ्ज सुतञ्च मादिय** उस उसको सिखाता है इसलिए तंमाको की जगह तम्हाको। मतलब है उस उसको हुनर का अभ्यास कराता है, उसमें लगाता है। आचार्य ही इसका अर्थ है, इसलिए **तम्हाका**। गाथा-बन्धन को सरल करने के लिए ह्रस्व किया गया है। **विज्जं**, अठारह विद्याओं में से कोई। **सुतं** जो कुछ श्रुतशास्त्र। **आदिय**, लेकर। **तमेव सो तत्थ सुतेन**

खादति अपने ही आपको वह अर्थात् जो दुष्टकाल का अनार्य आचार्य से विद्या और ज्ञान ग्रहण करता है वह वहाँ ज्ञान से खाता है अर्थात् उसके पास से श्रुतज्ञान से वह अपने को ही नष्ट करता है।

अट्ठकथा[1] में **तेनेव सो तत्थ सुतेन खादति** भी पाठ है। उसका भी 'वह वहाँ ज्ञान से अपने को खाता है' ही अर्थ है। **अनरियो वुच्चति पानदूपमो** अनार्य (आदमी) खराब जूते जैसा कहा जाता है। जिस प्रकार खराब जूते आदमी को खाते हैं, उसी प्रकार यह ज्ञान से खाता है तो अपने आप को ही खाता है। अथवा जूते से जखमी पानदू। जूते से पीड़ित, जूते से खाये गये पैर से मतलब है। इसलिए अपने आपको जो ज्ञान से हानि पहुँचाता है, वह उस ज्ञान से खाया जाने के कारण अनार्य कहलाता है। पानदूपमों का यही अर्थ है कि जूते से पीड़ित पाँव की तरह।

राजा ने सन्तुष्ट हो बोधिसत्व को महान् सम्पत्ति दी।

शास्ता ने धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शिष्य देवदत्त था। आचार्य तो मैं ही था।

⊙

---

१. पुरानी सिंहल अट्ठकथा।

२३२. वीणथूण जातक

"**एकचिन्तितोव अयमत्थो...**" यह शास्ता ने जेतवन में विचरते समय एक कुमारी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती के एक सेठ की लड़की थी। उसने अपने घर में वृषभराज का सत्कार होते हुए देख दाई से पूछा--माँ, यह कौन है जिसका इस प्रकार सत्कार होता है ?

"बेटी, यह वृषभराज है"

एक दिन उस लड़की ने प्रासाद पर खड़े होकर गली में एक कुबड़े को देखा। उसने सोचा—बैलों में जो ज्येष्ठ होता है उसकी पीठ पर एक ककुध होता है, मनुष्यों में जो बड़ा हो उसकी पीठ पर भी होना चाहिए। यह मनुष्यों में वृषभराज होगा। मुझे इसकी चरणसेविका बनना चाहिए। उसने दासी को भेजकर उसे कहलवाया कि सेठ की लड़की तेरे साथ जाना चाहती है। तू अमुक स्थान पर जा ठहर। वह कीमती चीजें ले, भेष बदल, महल से उतर उसके साथ भाग गयी। आगे चलकर वह बात नगर में और भिक्षु-संघ में प्रकट हो गयी। धर्मसभा में भिक्षुओं ने बात चलायी--"आयुष्मानों ! अमुक सेठ-लड़की कुबड़े के साथ भाग गयी।"

शास्ता ने आकर पूछा—'भिक्षुओं, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?' 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा--"भिक्षुओं, न केवल अभी यह कुबड़े को चाहती है, इसने पहले भी कुबड़े की ही इच्छा की है।" इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व ने एक निगम-ग्राम में सेठ के कुल में पैदा हो, गृहस्थी बसाते हुए, पुत्र-पुत्री के साथ बढ़ते हुए अपने पुत्र के लिए वाराणसी-सेठ की लड़की पक्की कर दिन का निश्चय किया। सेठ की लड़की ने अपने घर पर वृषभ का सत्कार-सम्मान होते देख दाई से पूछा—यह कौन है ? उसने कहा—यह वृषभ है। तब सेठ की लड़की ने गली में जाते हुए एक कुबड़े को देखकर समझा कि यह पुरुषों में वृषभ होगा। उसने कीमती समान लिया और उसके साथ भाग गयी।

बोधिसत्व भी सेठ की लड़की को घर लाने की इच्छा से बड़ी बारात के साथ वाराणसी जाते हुए उसी रास्ते पर हो लिए। वे दोनों सारी रात रास्ता चलते रहे। रात भर सर्दी खाने के कारण अरुणोदय होने पर कुबड़े के शरीर का वायु कुपित हो गया। बड़ी पीड़ा होने लगी। वह रास्ते से हट; पीड़ा से बेहोश होने के कारण वीणा के दण्डे की तरह मुड़कर पड़ रहा। सेठ की लड़की भी उसके चरणों में बैठ रही। बोधिसत्व ने सेठ की लड़की को कुबड़े के चरणों में बैठे देख, पहचान कर पास आ, सेठ की लड़की से वार्तालाप करते हुए पहली गाथा कही—

एकचिन्तितोंव अयमत्थो बालो अपरिनायको,
नहि खुज्जेन वामेन भोति संगन्तुमरहसि॥

यह (कुबड़े के साथ भागने की बात) एक-देशी चिन्ता है। (कुबड़ा) मूर्ख है, जाने में असमर्थ है। कुबड़े बौने के साथ आपका जाना उचित नहीं।]

एकचिन्तितोंव अयमत्थो, अम्म ! यह जो तू सोचकर इस कुबड़े के साथ निकल भागी यह बात तेरी अकेली की ही सोची होगी। **बालो अपरिनायको** यह कुबड़ा मूर्ख है, दुर्बुद्धि होने से बूढ़ा होने पर भी बाल ही है। दूसरा पकड़ कर ले जाने वाला न होने पर जाने में असमर्थ होने से अपरिनायक। **नहि खुज्जेन वामेन भोति संगतुमरहसि**, इस कुबड़े के साथ, वामनरूप होने से बौने

के साथ, तुम्हें जो महान् कुल में उत्पन्न हुई हो, सुन्दर हो, दर्शनीय हो जाना योग्य नहीं।

उसकी इस बात को सुनकर सेठ की लड़की ने दूसरी गाथा कही—

पुरिसूसभं मञ्ञमाना अहं खुज्जमकामयिं,
सोयं संकुटितो सेति छिन्नतन्ति यथा वुणा ॥

[मैंने कुबड़े को पुरुषों में वृषभ समझ कर उसकी इच्छा की। यह तार टूटी वीणा की तरह सुकड़ा हुआ पड़ा है।]

आर्य! मैंने एक साँड़ को देखकर सोचा कि बैलों में जो ज्येष्ठ होता है उसकी पीठ पर एक ककुध होता है। इसकी पीठ पर भी यह है। इसलिए यह पुरुषों में वृषभ होगा। इस प्रकार मैंने इस कुबड़े को पुरुष-वृषभ मान कर इसकी इच्छा की। यह तो जैसे, भग्न-तार तूमड़ी सहित वीणा-दण्ड हो वैसे मुड़ा हुआ पड़ा है।

बोधिसत्व यह जान कि वह अज्ञान के ही कारण घर से निकल पड़ी, उसे नहला, अलंकृत कर, रथ पर चढ़ा घर ले गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय यही सेठ की लड़की थी। वाराणसी-सेठ तो मैं ही था।

२३३. विकण्णक जातक

"**कामं यहिं इच्छसि तेन गच्छ**. . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उत्कण्ठित भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह धर्मसभा में लाया गया । शास्ता ने पूछा—भिक्षु, क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ? 'सचमुच' कहने पर पूछा—किस कारण उत्कण्ठित है ? बोला —कामुकता के कारण । शास्ता ने उसे कहा—"भिक्षु, कामुकता तीखे शल्य की तरह है । एक बार हृदय में प्रतिष्टित होने पर तीर लगे मगरमच्छ की तरह मार ही डालती है ।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बोधिसत्व वाराणसी में धर्म से राज्य करते हुए एक दिन उद्यान में जाकर पुष्करिणी के किनारे बैठे। नृत्यगीतादि में जो चतुर थे उन्होंने नाचना गाना आरम्भ किया । नृत्यगीतादि से आकृष्ट होने के कारण मच्छ कछुवे इकट्ठे होकर राजा के ही साथ-साथ चलते । ताड़ के तने के समान इकट्ठे हुए मच्छों को देखकर राजा के अमात्यों ने उत्तर दिया—यह देव की सेवा में हैं । राजा ने 'यह मेरी सेवा में हैं' सन्तुष्ट हो उनके लिए नित्य-भोजन बाँध दिया । रोज **अम्मण**[1] भर चावल पकता । भात खिलाने के समय कोई मच्छ आते, कोई न आते । भात नष्ट होता । राजा से वह बात कही गयी । राजा ने कहा—अब से नगाड़ा बजाकर नगाड़े की आवाज पर मच्छों के इकट्ठे होने पर उन्हें भात दिया जाय । तब से भात का प्रबन्ध करने वाला नगाड़ा बजवा

---

१. एक अम्मण = १ करीस = ११ द्रोण ।

कर, आये हुए मच्छों को भात देता। वे भी नगाड़े की आवाज पर इकट्ठे होकर खाते। उनके इस प्रकार इकट्ठे होकर भात खाने के समय एक मगर मच्छ आकर उन्हें खा जाता। भोजन-प्रबन्धक ने राजा से कहा। राजा ने उसे सुनकर कहा—जिस समय मगर-मच्छ मच्छों को खाता हो उसे तीर से बींध कर पकड़ लो। उसने 'अच्छा' कह, जाकर नौका पर खड़े हो मच्छ खाने के लिए आये मगरमच्छ पर तीर चलाया। वह उसकी पीठ में घुस गया। मगरमच्छ पीड़ा से व्याकुल हो उसे लेकर ही भाग गया। भोजन-प्रबन्धक ने उसका बिंधना जान उसे सम्बोधित कर पहली गाथा कही—

कामं यहिं इच्छसि तेन गच्छ
विद्धोसि मम्मम्हि विकण्णकेन;
हतोसि भत्तेन सवादितेन
लोलो च मच्छे अनुबन्धमानो ॥

[जहाँ इच्छा हो वहाँ जा। तीर से मर्म-स्थान में बिंधा है। स्वादिष्ट भोजन के कारण मच्छों का पीछा करता हुआ लोभवश मारा गया है।]

कामं निश्चय से। **यहिं इच्छसि तेन गच्छ** जहाँ चाहे वहाँ जा। **मम्मम्हि** मर्म-स्थान में। **विकण्णकेन** उल्टी नोक वाले शल्य से। **हतोसि भत्तेन सवादितेन लोलो च मच्छे अनुबन्धमानो** तू नगाड़ा बजाकर भात दिये जाते समय लोभी बन खाने के लिए मच्छों का पीछा करता हुआ उस स्वादिष्ट भोजन द्वारा मारा गया। जाने की जगह भी तू जीवित नहीं रहेगा।

वह अपने वासस्थान पर पहुँच कर मर गया। शास्ता ने यह बात कह, अभिसम्बुद्ध होने पर दूसरी गाथा कही—

एवम्पि लोकामिसं ओपतन्तो
विहञ्ञती चित्तवसानुवत्ती;
सो हञ्ञति ञातिसखानमज्झे
मच्छानुगो सोरिव सुंसमारो ॥

[इस प्रकार लौकिक लाभ के पीछे भागता हुआ, अपने चित्त के वशीभूत आदमी मारा जाता है। वह रिश्तेदारों और दोस्तों के बीच वैसे ही मारा जाता है जैसे मच्छों का पीछा करने वाला मगरमच्छ।]

लोकामिसं पाँच विषय। उन्हें संसार इष्ट; कान्त तथा सुन्दर समझ ग्रहण करता है, इसलिए लोकामिसं कहलाते हैं। **ओपतन्तो** उन लौकिक चीजों के पीछे भागता हुआ राग के वशीभूत आदमी **विहञ्ञति** कष्ट पाता है **सो हञ्ञति** इस प्रकार का वह आदमी रिस्तेदारों तथा मित्रों के बीच में भी **सो** तीर से बिंधे **मच्छानुगो सुंसुमारो विय** पाँच विषयों को सुन्दर मानकर हञ्ञति कष्ट पाता है, महाविनाश को प्राप्त होता है।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के प्रकाशन के अन्त में उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय वाराणसी राजा मैं ही था।

⊙

२३४. असिताभू जातक

"त्वमेवदानिमकर. . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक कुमारी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में दोनों प्रधान शिष्यों की सेवा करने वाले एक कुल में एक कुमारी थी--सुन्दर, सौभाग्यशाली। वह बड़ी होने पर अपनी बराबर की जाति के कुल में गयी। उसका स्वामी उसे कुछ न समझ किसी दूसरी जगह ही आसक्त रहता। वह उसके अनादर का कुछ ख्याल न कर, दोनों श्रावकों को निमन्त्रित कर महादान दे धर्मोपदेश सुनती हुई स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुई। उसके बाद से वह मार्ग-सुख तथा फल-सुख का आनन्द लेती हुई सोचने लगी कि स्वामी भी मुझे नहीं चाहता और गृहस्थी से भी मुझे प्रयोजन नहीं। मैं प्रव्रजित होऊँगी। वह माता-पिता को कह, प्रव्रजित हो अर्हत्व को प्राप्त हुई। उसकी वह करनी भिक्षुओं को ज्ञात हो गयी।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलायी--आयुष्मानों! अमुक कुल की लड़की सदर्थ की खोज करने वाली है। उसने यह जान कि स्वामी उसे नहीं चाहता है, प्रधान शिष्यों का धर्मोपदेश सुन, स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हो, फिर माता-पिता की आज्ञा ले, प्रव्रजित हो अर्हत्व प्राप्त किया। ऐसी है वह सदर्थ की खोज करने वाली लड़की। शास्ता ने आकर पूछा--भिक्षुओं, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा--भिक्षुओं, वह कुलकुमारी केवल अभी सदर्थ की खोज करने वाली नहीं है, वह पहले भी सदर्थ की खोज करने वाली ही रही है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ऋषियों के क्रम से प्रव्रजित हो अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर हिमालय प्रदेश में रहने लगे। उस समय वाराणसी नरेश ने यह देख कि उसके पुत्र ब्रह्मदत्त कुमार के साथ बहुत लोग हैं उनसे आशंका होने के कारण उसे राष्ट्र के बाहर करवा दिया। वह असिताभू नामक अपनी देवी को साथ ले, हिमालय में प्रविष्ट हो मछली, मांस, फलमूल खाता हुआ पर्णशाला में रहने लगा। एक किन्नरी को देख, उसके प्रति आसक्त हो उसने सोचा कि इसे अपनी भार्या बनाऊँगा और असिताभू का ख्याल न कर उसके पीछे-पीछे गया। उसने उसे किन्नरी के पीछे जाता देख सोचा यह मुझे छोड़ किन्नरी के पीछे जाता है, मुझे इससे क्या ? उसने उसके प्रति बिरक्त हो बोधिसत्त्व के पास जा, प्रणाम कर, अपने योग्य कसिन पूछ, कसिन की भावना कर अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त की। फिर बोधिसत्व को प्रणाम कर आकर स्वयं पर्णशाला-द्वार पर खड़ी हुई। ब्रह्मदत्त भी किन्नरी का पीछा करता हुआ घूमता रहा। उसे उसके जाने का मार्ग तक न दिखायी दिया वह निराश होकर पर्णशाला के सामने आया। असिताभू ने उसे आते देख आकाश में उठ, मणि के गगनतल में खड़ी हो 'आर्यपुत्र ! तेरे कारण मुझे यह ध्यान सुख प्राप्त हुआ' कह पहली गाथा कही--

त्वमेवदानिमकर यं कामो व्यगमा तयि,
सो यं अप्पटिसन्धिको खरा छिन्नंव रेरुकं ॥

[यह तो तेरे प्रति आसक्ति जाती रही, यह अब तूने ही किया है। आरी से कटे हाथीदांत की तरह यह अब जुड़ नहीं सकती।]

त्वमेवदानिमकर ! मुझे छोड़ कर किन्नरी का पीछा करते हुए तूने ही यह क्या किया है। **यं कामो व्यगमा तयि** जो मेरी तेरे प्रति आसक्ति जाती रही विषकम्भन-ग्रहण द्वारा प्रहीण हो गयी, जिसके प्रहीण होने से मुझे यह विशेष-अवस्था प्राप्त हुई। **सोयं अप्पटिसन्धिको** वह आसक्ति अब बिना जुड़ सकने वाली हो गयी, फिर जोड़ी नहीं जा सकती **खरा छिन्नंव रेरुकं** खर कहते हैं आरी

को और रेरुक कहते हैं हाथी दाँत को। जैसे आरी से कटा हुआ हाथीदाँत फिर जुड़ नहीं सकता' फिर पहले की तरह से नहीं मिलता । इसी प्रकार मेरा तेरे साथ फिर चित्त का संयोग नहीं हो सकता।

यह कह उसके देखते हुए ही ऊपर उठकर दूसरी जगह चली गयी। उसने उसके जाने पर रोते हुए दूसरी गाथा कही--

अत्रिच्छा अतिलोभेन अतिलोभमदेन च,
एवं हायति अत्थम्हा अहंव असिताभुया ॥

[जहाँ तहाँ इच्छा करने से, अति लोभ से तथा अतिलोभमद से आदमी उसी प्रकार अपने लाभ को गँवा देता है जैसे मैंने असिताभू को।]

अत्रिच्छा अतिलोभेन अत्रिच्छा कहते हैं जहाँ तहाँ पैदा होने वाली असीम को। अतिलोभ कहते हैं सीमा लाँघने वाले लोभ को। **अतिलोभमदेन** मद पैदा होने से अतिलोभ मद हो गया। भावार्थ यह है कि जहाँ-तहाँ इच्छा करने वाला आदमी अतिलोभ से तथा अतिलोंभमद से **अहं व असिताभुया** जैसे मैं असिताभू राज्य कन्या से जुदा हो गया वैसे वह अपने लाभ को गँवा देता है।

उसने यह गाथा कह रोते रहकर, अरण्य में अकेला ही विचर, पिता के मरने पर जाकर राज्य ग्रहण किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राज - पुत्र और राज्यकन्या यही दो व्यक्ति थे तपस्वी तो मैं ही था।

⊙

२३५. वच्छनख जातक

"सुखा घरा वच्छनख..." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय रोजमल्ल के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह आयुष्मान् आनन्द का गृहस्थी-काल का मित्र था। उसने एक दिन स्थविर के पास आने के लिए सन्देश भेजा। स्थविर शास्ता से आज्ञा लेकर गये। उसने स्थविर को नाना प्रकार के बढ़िया भोजन खिला, एक ओर बैठ; स्थविर के साथ कुशल क्षेम बतियाते हुए स्थविर को गृहस्थ-भोगों तथा पाँच विषयों का निमन्त्रण दिया। वह बोला--भन्ते आनन्द ! मेरे घर में बहुत सी जड़चेतन सम्पत्ति है, इसे बीच में से आधी बाँटकर तुम्हें देता हूं। आयें दोनों घर में रहें।

स्थविर ने उसे कामभोगों के दुष्परिणाम कहे और आसन से उठकर विहार चले गये। शास्ता ने पूछा—आनन्द ! तूने रोज को देखा?

"हाँ, भन्ते।"

',उसे क्या कहा ?"

"भन्ते ! मुझे रोज होने का निमन्त्रण देता था। मैंने उसे गृहस्थ जीवन के तथा विषयों के दोष बताये।"

शास्ता ने कहा—आनन्द ! रोजमल्ल केवल अभी प्रव्रजितों को गृहस्थ होने का निमन्त्रण नहीं देता। इसने पहले भी निमन्त्रण दिया है। उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक निगम ग्राम में किसी ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर ऋषियों के प्रव्रज्या क्रम से प्रव्रजित हो हिमालय में रहने लगे। वहाँ चिरकाल तक रह कर निमक-

खटाई खाने के लिए वाराणसी पहुँच, राजा के बाग में रह, अगले दिन वाराणसी में प्रवेश किया। वाराणसी का सेठ उनकी चाल ढाल से प्रसन्न हुआ। उसने उन्हें घर ले जा कर भोजन खिलाया। फिर उद्यान में रहने का वचन ले सेवा करते हुए उद्यान में बसाया। उनमें परस्पर स्नेह पैदा हो गया

बोधिसत्त्व के प्रति प्रेम और विश्वास होने के कारण वाराणसी-सेठ एक दिन इस प्रकार सोचने लगा प्रव्रजित रहना दुःखकर है। मैं अपने मित्र वच्छनख परिब्राजक को गृहस्थ बना सारा धन बीच में से आधा-आधा बाँट कर उसे दे दूँ। दोनों मिलकर रहें। उसने एक दिन भोजन के अनन्तर उसके साथ मधुर बातचीत करते हुए कहा--'भन्ते वच्छनख ! प्रव्रजित रहना दुःख है। गृहस्थ रहने में सुख है। आयें दोनों मिलकर विषयों का भोग करते हुए रहें।' यह कह पहली गाथा कही—

सुखा घरा वच्छनख सहिरञ्ञा सभोजना,
यत्थ भुत्वा च पीत्वा च सयेय्याथ अनुस्सुको ॥

[वच्छनख ! सोने और खाद्य पदार्थों से भरपूर घर सुखकर हैं, जहाँ खा पीकर आदमी निश्चिन्त सोता है।]

सहिरञ्ञा सात रत्नों से युक्त। **सभोजन** बहुत खाद्य भोज्य पदार्थों से युक्त। **यत्थ भुत्वा च पीत्वा च** जिन सोने और भोजनों से युक्त घरों में नाना प्रकार के बढ़िया भोजन खाकर और नाना प्रकार के पान पीकर। **सयेय्याथ अनुस्सुको** जिन (घरों) में अलंकृत शयनासनों पर निश्चित होकर सोयेगा, उससे घर बहुत ही सुखकर है।

उसकी बात सुन बोधिसत्त्व ने कहा--सेठ ! तू अज्ञान के कारण काम-भोगों में आसक्त होकर गृहस्थी का गुण और प्रव्रज्या का अवगुण कह रहा है। अब तू सुन, मैं गृहस्थी के दोष बताता हूँ। यह दूसरी गाथा कही--

घरा नानीहमानस्स घरा नाभणतो मुसा,
घरा नादिन्नदण्डस्स परेसं अनिकुब्बतो;
एवं छिद्दं दुरभिभवं को घरं पटिपज्जति ॥

[(नित्य) मेहनत न करने वाले की गृहस्थी नहीं चलती। झूठ न बोलने वाले की गृहस्थी नहीं चलती। दूसरों को न ठगते हुए की गृहस्थी नहीं चलती। दण्डत्यागी की गृहस्थी नहीं चलती। इस प्रकार की छिद्रों से पूर्ण, मुश्किल से चलने वाली गृहस्थी को कौन करता है।]

घरा नानीहमानस्स नित्य कृषि गोरक्षा आदि करने में परिश्रम न करने वाले की गृहस्थी नहीं (चलती)। गृहस्थी स्थिर नहीं होती **घरा नाभणतो मुसा**, खेत, वस्तु, हिरण्य, स्वर्ण आदि के लिए झूठ न बोलने वाले की भी गृहस्थी नहीं। **घरा नादिन्नदण्डस्स परेसं अनिकुब्बतो** जिसने दण्ड नहीं लिया, जिसने दण्ड ग्रहण नहीं किया, जिसने दण्ड रख दिया वैसे दूसरों को न ठगने वाले की भी गृहस्थी नहीं। जो दण्डधारी होकर दूसरों के दासों तथा नौकर-चाकर आदि की उस-उस अपराध के लिए अपराध के अनुसार वध करना, बाँधना, (अंग-) छेद करना, ताड़ना आदि करता है उसी की गृहस्थी ठहरती है। **एवं छिद्दं दुरभिभवं को घरं पटिपज्जति** सो अब इस प्रकार ढोंग आदि के न करने पर अनेक हानियाँ होने के कारण छिद्र-पूर्ण, करने पर नित्य ही करना पड़ने के कारण कठिन, मुश्किल से निभने वाली; नित्य करने पर भी दुरभिसम्भव तथा मुश्किल से पूरा पड़ने वाले घर को मैं चिन्ता-रहित होकर करूँगा ? (ऐसा बोलकर) गृहस्थी को कौन करे ?

इस प्रकार बोधिसत्व गृहस्थी के दोष कह उद्यान ही चले गये। शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय वाराणसी-सेठ रोजमल्ल था। वच्छनख परिब्राजक तो मैं ही था।

२३६. बक जातक

"**भद्दको वतयं पक्खी...**" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुए एक ढोंगी के बारे में कही।

उसे ले जाने पर शास्ता ने देखकर कहा--"भिक्षुओं, यह न केवल अभी ढोंगी है, यह पहले भी ढोंगी रहा है।" और पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश के एक तालाब में बड़े परिवार सहित मच्छ होकर रहते थे। मच्छों को खाने की इच्छा से एक बगुला तालाब के पास सिर गिरा कर तथा पंखों को पसार कर मछलियों की प्रमादावस्था को धीरे-धीरे देखता हुआ खड़ा था। उसी समय मच्छों के समूह से घिरे हुए बोधिसत्व शिकार पकड़ते-पकड़ते वहाँ पहुँचे। मच्छों के गण ने उस बगुले को देख पहली गाथा कही—

भद्दको वतयं पक्खी द्विजो कुमदसन्निभो,
वूपसन्तेहि पक्खेहि मन्द मन्दोव झायति ॥

[कुमुद सदृश यह पक्षी बहुत अच्छा है। शान्त परों से यह शनैः शनैः ध्यान करता है।]

मन्दमन्दोव झायति अशक्त की तरह से, कुछ न जानता हुआ-सा अकेला ही ध्यान करता है।

उसे देख बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

नास्स सीलं विजानाथ अनञ्ञाय पसंसथ,
अम्हे द्विजो न पालेति तेन पक्खी न फन्दति ॥

[इसके स्वभाव कों नही जानते। बिना जाने प्रशंसा करते हो। यह पक्षी हमारी रक्षा नहीं करता। इसीलिए पर नहीं फड़फड़ाता।]

अनञ्ञाय--न जानकर। अम्हे द्विजो न पालेति यह पक्षी हमारी रक्षा नहीं करता, हमें सँभालता। यह सोचता है कि मैं इनमें से किसे खाऊँगा? तेन पक्खी न फन्दति इसी से पक्षी न फड़फड़ाता है, न चलता है।

ऐसा कहने पर मच्छों के समूह ने पानी में क्षोभ पैदा करके बगुले को भगा दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बगुला (यह) ढोंगी था। मच्छराज तो मैं ही था।

⊙

२३७. साकेत जातक

"**को नु खो भगवा हेतु....**" यह शास्ता ने साकेत के समीप विहार करते समय साकेत ब्राह्मण के बारे में कही।

अतीत कथा और वर्तमान कथा भी **एकक निपात** (पहले परिच्छेद) की पूर्वोक्त **साकेत जातक**[1] में आ ही चुकी है। हाँ, तथागत के विहार जाने पर भिक्षुओं ने पूछा—भन्ते ! यह स्नेह कैसे स्थापित हो जाता है ? यह पूछते हुए उन्होंने पहली गाथा कही—

को नु खो भगवा हेतु एकच्चे इध पुग्गले,
अतीव हृदयं निब्बाति चित्तञ्चापि पसीदति ॥

[भगवान् ! इसका क्या कारण है कि किसी-किसी आदमी के प्रति हृदय अति शान्त हो जाता है और चित्त प्रसन्न हो जाता है।]

अर्थ—इसका क्या कारण है कि किसी-किसी आदमी को देखते ही हृदय अति शान्त हो जाता है, सुगन्धित शीतल जल के हजारों घड़ों से सींचे हुए की तरह शीतल हो जाता है; किसी के प्रति नहीं होता ? किसी को देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है, कोमल पड़ जाता है, प्रेम से जुड़ जाता है; किसी से नहीं जुड़ता ?

शास्ता ने उन्हें प्रेम का कारण बताते हुए दूसरी गाथा कही—

पुब्बेव सन्निवासेन पच्चुप्पन्नहितेन वा
एवं तं जायते पेमं उप्पलंव यथोदके ॥

---

१. साकेत जातक (१.७.६८)

[पूर्व जन्म के सम्बन्ध से वा इस जन्म के उपकार से प्रेम पैदा होता है जैसे जल में कमल ।]

———

भिक्षुओं, प्रेम इन दो कारणों से ही पैदा होता है । पूर्व जन्म में चाहे माता, चाहे पिता, चाहे पुत्र, चाहे भाई, चाहे बहिन; चाहे पति, चाहे भार्या, चाहे सहायक, चाहे मित्र होकर जो कोई जिस किसी के साथ एक स्थान में रहता है उससे इस **पुब्बेव सन्निवासेन वा** दूसरे जन्म में भी वह स्नेह नहीं छूटता । इस जन्म में किये गये **पच्चुप्पन्नहितेन वा एवं तं जायते पेमं** । इन दो कारणों से प्रेम पैदा होता है । जैसे क्या ? **उप्पलंव यथोदके** 'व' का ह्रस्व कर दिया । समुच्चय अर्थ में ही इस का प्रयोग है । इसलिए उत्पल तथा जल में पैदा होने वाले शेष जितने भी पुष्प हैं वे दो ही कारणों से पैदा होते हैं—जल से और गारे से । उसी प्रकार इन दो ही कारणों से प्रेम पैदा होता है ।

———

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय के ब्राह्मण और ब्राह्मण यही दो जन थे । पुत्र तो मैं ही था ।

⊙

२३८. एकपद जातक

"इंघ एकपदं तात...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक कौटुम्बिक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कौटुम्बिक श्रावस्ती निवासी था। एक दिन गोद में बैठे हुए पुत्र ने अर्थ का द्वार नामक प्रश्न पूछा। उसने सोचा यह प्रश्न बुद्ध का ही विषय है। इसका उत्तर अन्य कोई नहीं दे सकेगा। वह पुत्र को लेकर जेतवन गया और शास्ता को प्रणाम करके कहा--भन्ते ! इस बालक ने गोद में बैठे-बैठे अर्थ का द्वार प्रश्न पूछा है। मैं उसको नहीं जानता था। इसलिए यहाँ आया हूं। भन्ते ! इस प्रश्न को कहें।

शास्ता ने कहा--उपासक ! यह बालक केवल अभी अर्थ की खोज करने वाला नहीं है। इसने पहले भी अर्थ-खोजी होकर पण्डितों से यह प्रश्न पूछा है। पुराने पण्डितों ने इसे यह कहा भी है। किन्तु जन्मान्तर की बात होने से अब इसे उसका ध्यान नहीं।" इतना कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने सेठ के कुल में पैदा हो, बड़े होने पर पिता के मरने के बाद सेठ का स्थान ग्रहण किया। उसके पुत्र ने जब वह बच्चा ही था गोदी में बैठे-बैठे पूछा--तात ! मुझे अनेकार्थ वाला एक कारण, एक बात कहें। यह पूछते हुए उसने यह गाथा कही—

इंघ एकपदं तात अनेकत्थपदनिस्सितं,
किञ्चि संगाहिकं ब्रूहि येनत्थे साधयामसे ॥

[तात ! अनेक अर्थपदों से युक्त कोई एक सङ्ग्राहक पद कहें, जिससे अर्थ की प्राप्ति हो।

इंघ याचना के वा प्रेरणा के अर्थ में निपात है। **एकपदं** एक पद वा एक बात से युक्त पद। **अनेकत्थपदनिस्सितं** अनेक अर्थों वा बातों से युक्त। **किञ्चि संगाहिकं ब्रूहि** कोई एक बहुत से पदों का सङ्ग्राहक पद कहें। अथवा यही पाठ है। **येनत्थे साधयामसे** जिस अनेकार्थ युक्त एक पद से ही हम अपनी वृद्धि सिद्ध करें, वह हमें कहें—यही पूछता है।

उसके पिता ने कहते हुए दूसरी गाथा कही—

दक्खेय्येकपदं तात अनेकत्थपदनिस्सितं,
तञ्च सीलेन संयुत्तं खन्तिया उपपादितं;
अलं मित्ते सुखापेतुं असित्तानं दुखाय च ॥

[तात ! दक्षता अनेक अर्थपदों से युक्त एक पद है। वह शील और क्षमा के सहित हो तो मित्रों को सुख तथा शत्रुओं को दुख देने के लिए पर्याप्त है।]

दक्खेय्येकपदं दक्षता एक पद है। दक्षता कहते हैं लाभ उत्पन्न करने वाले, होशियार कुशल आदमी का ज्ञानपूर्ण प्रयत्न (=वीर्य)। **अनेकत्थपदनिस्सितं** इस प्रकार कहा गया वीर्य अनेक अर्थ पदों से युक्त। किनसे ? शीलादि से। इसीलिए **तञ्चसीलेन संयुत्तं** आदि कहा। उसका अर्थ है कि वह वीर्य आचार-शील तथा सहनशक्ति से युक्त। **मित्ते सुखापेतुं अमित्तानञ्च दुक्खाय अलं,** समर्थ है। कौन है जो लाभ उत्पन्न करने वाले, ज्ञानपूर्ण कुशल वीर्य से युक्त हो' आचारशील तथा क्षमा से युक्त हो और मित्रों को सुख देने तथा शत्रुओं को दुख देने में समर्थ न हो ?

इस प्रकार बोधिसत्व ने पुत्र के प्रश्न का उत्तर दिया। वह भी पिता के कथनानुसार अपनी उन्नति कर यथाकर्म परलोक गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के प्रकाशन के अन्त में पिता पुत्र स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए। उस समय पुत्र यही था। वाराणसी सेठ तो मैं ही था।

⊙

२३९-हरितमात जातक

"**आसिविसं ममं सन्तं....**" यह शास्ता ने वेलुवन में रहते समय अजातशत्रु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशलराज के पिता महाकोशल ने राजा बिम्बिसार को अपनी लड़की देने के समय लड़की का स्नान-मूल्य काशीगाँव दिया। अजातशत्रु द्वारा पिता मार दिये जाने से वह राजा के प्रति स्नेह होने के कारण शीघ्र ही मर गयी। माता के मर जाने पर भी अजातशत्रु उस गाँव का उपभोग करता ही था। कोशलराज उससे लड़ता था कि मैं पिता की हत्या करने वाले चोर को अपने कुल का गाँव न दूँगा। कभी मामा विजयी होता, कभी भानजा। जब अजातशत्रु जीतता तब रथ पर ध्वजा बँधवा बड़ी शान के साथ नगर में प्रवेश करता। जब पराजित होता तब दुःखी मन से चुपचाप बिना किसी को खबर किये प्रवेश करता।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलायी—आयुष्मानों, अजातशत्रु मामा को हराकर प्रसन्न होता है हारने पर चिन्तित होता है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओं, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओं, केवल अभी नहीं, यह पहले भी जीतने पर प्रसन्न होता था, हारने पर दुखी होता था।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व नीले मेढक होकर पैदा हुए। उस समय मनुष्यों ने नदी कन्दरा आदि में

जहाँ-तहाँ मछलियाँ पकड़ने के लिए जाल[1] फैलाए थे। एक जाल में बहुत-सी मछलियाँ दाखिल हुईं। एक जल-सर्प भी मछलियाँ खाता हुआ उसी जाल में फँसा। बहुत सी मछलियों ने इकट्ठे हो उसे खा लहू-लुहान कर दिया। जब उसे कहीं शरण न दिखायी दी तो मृत्यु से भयभीत वह जाल से निकल वेदना से बेहोश हो पानी के किनारे जा पड़ा। नील मेंढक भी उस समय उछल कर जाल के सिरे पर आ पड़ा था। सर्प को कोई दूसरा निर्णायक न दिखायी दिया तो उसने उस मेंढक को वहाँ पड़े देख पूछा--"सौम्य नील मेंढक ! क्या तुझे इन मछलियों की यह करतूत अच्छी लगी है ?" उसने यह पहली गाथा कही--

आसीविसं ममं सन्तं पविट्ठं कुमिनामुखं,
रुच्चते हरितामाता यं मं खादन्ति मच्छका ।।

[हे हरी माता वाले ! यह जो जाल में दाखिल होने पर मुझ सर्प को मछलियाँ खाती हैं, क्या यह तुझे अच्छा लगता है ?]

आसिविसं ममं सन्तं सर्प को। **रुच्चते हरितामाता यं मं खादन्ति मच्छका** कहता है कि हे हरे मेंढक पुत्र क्या यह तुझे अच्छा लगता है ?

हरे मेंढक ने उत्तर दिया--हाँ, मित्र अच्छा लगता है। किस कारण से ? यदि तू अपने प्रदेश में आने पर मछलियों को खाता है तो मछलियाँ भी तुझे अपने प्रदेश में आने पर खाती हैं। अपने अपने प्रदेश में, विषय में, गोचर-भूमि में कोई कमजोर नहीं होता। यह कहकर दूसरी गाथा कही--

विलुम्पतेव पुरिसो यावस्स उपकप्पति,
यदा चञ्ञे विलुम्पन्ति सो विलुत्तो विलुम्पति ।।

[जब तक सामर्थ्य होती है आदमी (दूसरों) को लूटता है। जब दूसरे लूटते हैं, तो वह लूटने वाला लुटता है।]

---

१ मछलियाँ पकड़ने का बाँस का फन्दा।

विलुम्पतेव पुरिसो यावस्स उपकप्पति जब तक पुरुष का ऐश्वर्य रहता है तब तक वह दूसरों को लूटता ही है, अर्थ है। **या व सो उपकप्पति** यह भी पाठ है। जितने समय तक वह आदमी लूट सकता है, अर्थ है। **यदा चञ्ञे विलुम्पन्ति** जब दूसरे ऐश्वर्यशाली होकर लूटते हैं। **सो विलुत्तो विलुम्पति** वह लुटेरा लूटा जाता है। **विलुम्पते** भी पाठ है। अर्थ यही है **विलुम्पनं** भी पढ़ते हैं। उसका अर्थ ठीक नहीं बैठता। इस प्रकार लूटने वाला फिर लूटा जाता है।

बोधिसत्व के मुकदमे का निर्णय देने पर मछलियों ने जल-सर्प की दुर्बलता जान, शत्रु को धर पकड़ने के लिए जाल से निकल उसे वहीं मार डाला और चली गयीं।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय जल-सर्प अजातशत्रु था। नील-मेंढक तो मैं ही था।

२४०. महापिंगल जातक

"सब्बो जनो ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त के शास्ता के प्रति बैर बाँध लेने के नौ महीने के बाद जेतवन के द्वार-कोठे पर (उसके) पृथ्वी द्वारा निगल लिए जाने पर जेतवनवासी तथा सकल नगर के निवासी यह सोच कि बुद्ध के मार्ग का कण्टक देवदत्त पृथ्वी के द्वारा निगल लिया गया और अब सम्यक सम्बुद्ध का शत्रु मर गया बड़े सन्तुष्ट हुए। उनसे **परम्परा घोष**[1] से सुनकर सारे जम्बूद्वीपवासी तथा यक्ष भूत और देवगण भी बड़े हर्षित हुए।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलायी––आयुष्मानों, देवदत्त के पृथ्वी द्वारा निगल लिए जाने पर महा-जन-समूह यह सोचकर कि बुद्ध का विरोधी देवदत्त पृथ्वी द्वारा निगल लिया गया हर्षित हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओं, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओं, न केवल अभी देवदत्त के मरने पर जन-समूह हर्षित होता है और प्रसन्न होता है पहले भी हर्षित हुआ है और प्रसन्न हुआ है।" इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही––

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में महापिङ्गल नाम का राजा अधर्म से, अनुचित तौर पर राज्य करता था। छन्द आदि के वशीभूत हो पापकर्म करता हुआ दण्डबलि जङ्घ-कार्षापण आदि ले जनता को ऐसे पीड़ता था जैसे ऊख-यन्त्र ऊख को। वह

---

१. एक से दूसरा और फिर उससे तीसरा सुने।

रौद्र स्वभाव का था, कठोर था और दुस्साहसी था। उसमें दूसरों के लिए तनिक भी दया नहीं थी। घर में स्त्रियों का, लड़के-लड़कियों का, अमात्य-ब्राह्मणों का तथा गृहपति आदि का भी अप्रिय था। वह ऐसा था मानों आँख में धूल हो, भात के कौर में कंकर हो अथवा ऐड़ी को बींध कर काँटा घुस गया हो।

उस समय बोधिसत्व महापिंगल का पुत्र होकर पैदा हुए। महापिंगल चिरकाल तक राज्य करके मर गया। उसके मरने पर सभी वाराणसी वासियों ने हर्षित हो, सन्तुष्ट हो, खूब प्रसन्न हो एक हजार गाड़ी लकड़ी से महापिंगल को जलाकर अनेक सहस्र घड़ों से आग बुझायी। फिर बोधिसत्व को राज्य पर अभिषिक्त कर 'हमें धार्मिक राजा मिला' सोच (वे) प्रसन्न हो नगर में उत्सव-भेरी बजवा, ऊँची ध्वजाओं तथा पताकाओं से नगर को अलंकृत कर, दरवाजे दरवाजे पर मण्डप बनवा, खील-पुष्प बिखरे, सजे हुए मण्डपों में बैठ कर खाने पीने लगे।

बोधिसत्व भी अलंकृत महान् तल पर (बिछे) श्रेष्ठ आसन के बीच में, जिस पर श्वेत छत्र छाया हुआ था बैठे। अमात्य, ब्राह्मण, गृहपति, राष्ट्रिक तथा द्वारपाल आदि राजा को घेर कर खड़े थे। एक द्वारपाल थोड़ी ही दूर पर खड़ा हो आश्वास-प्रश्वास लेता हुआ रोने लगा। बोधिसत्व ने उसे देख पूछा--सौम्य ! मेरे पिता के मरने पर सभी प्रसन्न हो उत्सव मना रहे हैं। लेकिन तू खड़ा रो रहा है। क्या मेरा पिता तुझे ही प्रिय था ? यह पूछते हुए पहली गाथा कही--

सब्बो जनो हिंसितो पिंगलेन
तस्मिं मते पच्चयं वेदयन्ति,
पियो नु ते आसि अकण्हनेत्तो
कस्मा नु त्वं रोदसि द्वारपाल ॥

[पिंगल ने सब जनों को कष्ट दिया। उसके मरने पर सभी आनन्द का अनुभव करते हैं। हे द्वारपाल ! क्या वह तेरा ही प्रिय था ? तू क्यों रोता है ?

हिंसितो नाना प्रकार के दण्ड बलि आदि से पीड़ा दी। **पिङ्गलेन** पिङ्गल **आंख** वाले ने, उसकी दोनों आँखें एकदम पिंगल वर्ण की, बिल्ली की आँखों के

समान थीं। इससे उसका नाम पिङ्गल हुआ। पच्चयं वेदयन्ति प्रीति अनुभव करते हैं। अकण्हनेत्तो पिङ्गल आँख वाला। कस्मा नु त्वं तू किस कारण से रोता है? अट्ठकथा में कस्मा तुवं पाठ है।

उसने उसकी बात सुन उत्तर दिया—"मैं इस शोक से नहीं रोता हूँ कि महापिङ्गल मर गया। मेरे सिर को तो सुख हुआ है। पिङ्गल राजा प्रसाद से उतरते हुए और चढ़ते हुए हथौड़ी से चोट लगाने की तरह मेरे सिर पर आठ-आठ टोके लगाता था। वह परलोक जाकर भी जैसे मेरे सिर पर टोके लगाता था उसी तरह निरय-पालकों तथा यमराज के सिर में भी टोके लगायेगा। 'यह हमें बहुत कष्ट देता है' सोच वह इसे फिर यहाँ लाकर छोड़ जा सकते हैं। वह मेरे सिर में फिर टोके मारेगा। मैं इस कारण रोता हूँ।" यह अर्थ प्रकट करते हुए दूसरी गाथा कही—

न मे पियो आसि अकण्हनेत्तो
भायामि पच्चागमनाय तस्स,
इतो गतो हिंसेय्य मच्चुराजं
सो हिंसितो आनेय्य पुन इध ॥

मुझे पिङ्गल नेत्र प्रिय न था। मुझे डर है कि वह फिर न लौट आये। यहाँ से जाकर वह यमराज कष्ट पाकर उसे फिर यहाँ ले आये।]

बोधिसत्व ने उसे आश्वासन दिया—वह राजा लकड़ी के हजार भारों से जला दिया गया है। सैकड़ों घड़ों से (चिता) बुझा दी गयी है। जिस जगह जलाया गया, वह जगह चारों ओर से खन दी गयी है। जो परलोक जाते हैं उनका यह स्वभाव है कि वह दूसरी जगह जन्म ग्रहण करते हैं। फिर उसी शरीर से नहीं आते हैं। इसलिए तू मत डर।

यह गाथा कही—

दड्ढो वाहसहस्सेहि सित्तो घटसतेहि सो,
परिक्खता च सा भूमि मा भायि नागमिस्सति ॥

[हजार भारों से जला दिया गया है। सैकड़ों घड़ों से (चिता) ठंडी कर दी गयी है। वह भूमि खन दी गयी है। मत डर, वह नहीं आएगा।]

तब द्वारपाल को सन्तोष हुआ। बोधिसत्व धर्म से राज्य करके दान आदि पुण्य कर यथाकर्म (परलोक) गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पिङ्गल देवदत्त था। पुत्र तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

१०. सिगाल वर्ग

२४१. सब्बदाठ जातक

"**सिगालोमानत्थद्धो...**" यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

अजातशत्रु को प्रसन्न कर देवदत्त ने जो लाभ सत्कार पैदा किया था वह उसे देर तक स्थिर न रख सका। नालागिरि (हाथी) का प्रयोग करने के समय जो आश्चर्य देखा गया उस समय से वह लाभ-सत्कार नष्ट हो गया।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलायी--आयुष्मानों, देवदत्त लाभ-सत्कार पैदा करके चिरकाल तक स्थिर न रख सका। शास्ता ने आकर पूछा--भिक्षुओं, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—'भिक्षुओं, न केवल अभी देवदत्त ने अपने लाभ-सत्कार को नष्ट किया है, पहले भी नष्ट किया ही है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसका पुरोहित था, तीनों वेदों तथा अठारह शिल्पों में पारङ्गत। वह पृथ्वीजय मन्त्र जानता था। पृथ्वीजय मन्त्र जापमन्त्र है।

एक दिन बोधिसत्व उस मन्त्र को सिद्ध करने की इच्छा से एक खुली जगह में एक पत्थर पर बैठ कर मन्त्र जाप करने लगा। वह मन्त्र किसी दूसरे विधि रहित व्यक्ति को नहीं सुनाया जा सकता था, इसीलिए वह वैसी जगह जाप करने लगा था।

उसके पाठ करने के समय एक गीदड़ ने एक बिल में पड़े-पड़े उस मन्त्र को सुनकर अभ्यास कर लिया। वह अपने पूर्व-जन्म में पृथ्वीजय मन्त्र का अभ्यासी एक ब्राह्मण था। बोधिसत्व ने पाठ कर चुकने पर कहा–मुझे इस मंत्रका अभ्यास हो गया गीदड़ ने बिल से निकल कर कहा—भो ब्राह्मण ! मुझे इस मन्त्र का तुझसे भी अधिक अभ्यास है। इतना कह वह भाग गया।

बोधिसत्व ने यह सोच कि यह गीदड़ बहुत खराबी करेगा 'पकड़ो-पकड़ो' करते हुए उसका पीछा किया। गीदड़ भागकर जंगल में जा घुसा। वहाँ जाकर उसने एक गीदड़ी के सरीर में थोड़ा सा बुरका भरा। वह बोली—स्वामी ! क्या है ? 'मुझे पहचानती है वा नहीं ?' उसने कहा—स्वामी ! पहचानती हूँ।

उसने पृथ्वीजय मन्त्र का जाप कर सैंकड़ों गीदड़ों को आज्ञा दे सब हाथी, अश्व, सिंह व्याघ्र, सुअर, मृग आदि चौपायों को अपने पास बुलाया। सब को अपने अधीन कर स्वयं **सब्बदाठ** नामक राजा बन एक गीदड़ी को पटरानी बनाया। दो हाथियों की पीठ पर बैठता। सिंह की पीठ पर पटरानी सहित **सब्बदाठ** राजा बैठता। बड़ी शान थी।

वह ऐश्वर्य-मद में चूर हो, अभिमान के मारे वाराणसी राज्य जीतने की इच्छा से सब चौपायों को ले वाराणसी से कुछ ही दूर पर आ पहुँचा। बारह योजन की परिषद् थी। उसने कुछ ही दूर से ही राजा के पास सन्देश भेजा—राज्य दे अथवा युद्ध करे। वाराणसी निवासियों ने भयभीत हो डर के मारे नगर के द्वार बन्द कर लिए।

बोधिसत्व ने राजा के पास आकर कहा—महाराज। मत डरें। **सब्बदाठ** गीदड़ के साथ युद्ध करने की जिम्मेदारी मेरी है। मेरे अतिरिक्त और कोई उससे युद्ध नहीं कर सकता। उसने राजा तथा नगर वासियों को आश्वासन दे सब्बदाठ क्या करके राज्य जीतेगा पूछने की इच्छा से नगर-द्वार की अट्टालिका पर चढ़कर पूछा—सब्बदाठ ! क्या करके इस राज्य को लेगा ?

सिंहनाद कराकर, जन समूह को शब्द से भयभीत कर राज्य लूँगा।"

बोधिसत्व ने "यह है" जान अट्टालिका पर चढ़ मुनादी करवा दी कि सारे बारह योजन वाराणसी के नगरनिवासी अपने-अपने कानों के छिद्रों को

भाष (की दाल) के आटे से लेप लें। जनता ने मुनादी सुन बिल्लियों से लेकर सभी जानवरों के तथा अपने कानों के छिद्र माष के आटे से इस प्रकार लेप लिए कि दूसरे का शब्द न सुन सकें।

बोधिसत्व ने फिर अट्टालिका पर चढ़कर पुकारा—

"सब्बदाठ !"

"ब्राह्मण ! क्या है ?"

"इस राज्य को कैसे ग्रहण करेगा ?"

"सिंहनाद करवाकर, मनुष्यों को डराकर, जान मरवा कर ग्रहण करूँगा।"

"सिंहनाद नहीं करवा सकेगा। जाति-सम्पन्न, लाल हाथ पाँव वाले केशर सिंहराज तेरे जैसे नीचे गीदड़ की आज्ञा नहीं मानेंगे।"

गीदड़ ने अभिमान से चूर हो कहा—दूसरे सिंह रहें। जिस सिंह की पीठ पर मैं बैठा हूँ उसी से सिंहनाद करवाऊँगा।

"यदि सामर्थ्य है तो सिंहनाद करवा।"

जिस सिंह पर बैठा था उसने उसे पाँव से इशारा किया कि सिंहनाद कर। सिंह ने हाथी के सिर पर मुंह रख तीन बार ऐसा सिंहनाद किया, जैसा कोई न कर सके। हाथियों ने डरकर गीदड़ के पैरों में गिरा पाँव से उसके सिर को कुचल चूर्ण विचूर्ण कर दिया। सब्बदाठ वहीं मर गया। वे हाथी भी सिंहनाद सुनकर भय के मारे एक दूसरे से भिड़कर वहीं मर गये। सिंहों को छोड़कर शेष जितने भी खरगोश और बिल्लों से लेकर मृग, सूअर आदि थे सभी जानवर वहीं मर गये। सिंह भाग कर अरण्य में चले गये। बारह योजन में माँस का ढेर लग गया।

बोधिसत्व ने अटारी से उतर नगर-द्वारों को खोल मुनादी करा दी कि सभी अपने कानों में से माष के आटे को निकाल दें और जिन्हें मांस की जरूरत हो मांस ले जाएँ। मनुष्यों ने गीला मांस खाया और बाकी को सुखा कर बल्लूर[1] बना लिया। कहते हैं उसी समय से मांस सुखाना आरम्भ हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला यह अभिसम्बुद्ध गाथाएँ कह जातक का मेल बैठाया—

---

१. बल्लूर = सूखा मांस।

सिगालो मानत्थद्धोव परिवारेन अत्थिको,
पापुणी महतिं भूमिं राजासि सब्बादाठिनं ।
एवमेवं मनुस्सेसु यो होति परिवारवा,
सो हि तत्थ महा होति सिगालो विय दाठिनं ॥

[गीदड़ अभिमान में चूर था। उसे और भी "परिवार" चाहिए था। वह महान् पद को प्राप्त हो गया—सभी चौपायों का राजा हो गया। इसी प्रकार मनुष्यों में भी जिसका "परिवार" बड़ा होता है वह भी महान् हो जाता है जैसे गीदड़ जानवरों में।]

मानत्थद्धो अनुचरों के कारण उत्पन्न अभिमान से चूर **परिवारेन अत्थिको** और भी "परिवार" की इच्छा वाला होकर। **महतिं भूमिं** महासम्पत्ति को। **राजासि सब्बदाठिनं** सब चौपायों का राजा था। **सो हि तत्थमहा होति** जो परिवार युक्त आदमी है वह उन परिवारों में महान् होता है। **सिगालो विय दाठिनं** जैसे गीदड़ चौपायों में महान् हुआ उसी प्रकार महान् होता है। वह उस गीदड़ की तरह प्रमाद के कारण विनाश को प्राप्त होता है।

उस समय गीदड़ देवदत्त था। राजा सारिपुत्र था। पुरोहित तो मैं ही था।

२४२. सुनख जातक

"बालो वतायं सुनखो...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय अम्बल-कोष्ठक आसनशाला में भात खाने वाले कुत्ते के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसके जन्म के समय से ही कहारों ने उसे वहाँ पोसा था। वह वहाँ भात खाता हुआ आगे चलकर मोटा गया। एक दिन एक ग्रामवासी वहाँ आया उसने कुत्ते को देखा और कहारों को चादर तथा कार्षापण दे कुत्ते को चमड़े के पट्टे से बाँध कर ले गया। वह ले जाने के समय भौंका नहीं। जो-जो दिया गया, खाता हुआ पीछे-पीछे गया।

तब उस आदमी ने सोचा कि अब यह मुझसे प्रेम करता है। और पट्टा खोल दिया। वह छूटते ही एक दौड़ में आसनशाला आकर पहुँचा। भिक्षुओं ने उसे देख और उसका किया जान शाम को धर्मसभा में बातचीत चलायी–आयुष्मानों आसनशाला का कुत्ता बन्धन से मुक्त होने में चतुर है। छूटते ही फिर आ गया है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओं, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओं, वह कुत्ता केवल अभी बन्धन से मुक्त होने में चतुर नहीं है, पहले भी चतुर ही था।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी राष्ट्र के एक बड़े सम्पन्न घराने में पैदा हुए। बड़े होने पर गृहस्थी बसायी।

उस समय वाराणसी में एक आदमी के पास एक कुत्ता था। वह भात के कौर खा-खाकर मोटा गया। एक ग्रामवासी वाराणसी आया। उस कुत्ते को देख उस आदमी को चादर और कार्षापण दे, कुत्ते को चमड़े की डोरी से बाँध डोरी में एक सिरे को पकड़ कर ले चला। चलते-चलते जंगल के द्वार पर एक शाला में दाखिल हो कुत्ते को बाँध एक तख्ते पर लेट कर सो गया। उस समय बोधिसत्व ने किसी काम से उस जंगल में प्रवेश होते वक्त उस कुत्ते को चमड़े की डोरी से बँधे बैठे देख पहली गाथा कही—

बालो वतायं सुनखो यो वरत्तं न खादति,
बन्धना चपमुञ्चेय्य असितो च घरं वजे ॥

[यह कुत्ता मूर्ख है जो चमड़े की डोरी को नहीं खाता है। (यदि खा डाले) तो बन्धन से छूट जाए और भरे पेट ही घर चला जाए।]

पमुञ्चेय्य मुक्त करे ; अथवा **पमोच्चेय्य** ही पाठ है। **असितो च घरं वजे** भरे पेट ही अपने निवास-स्थान पर चला जाए।

उसे सुन कुत्ते ने दूसरी गाथा कही—

अट्ठितं मे मनस्मिं मे अथो मे हदये कतं,
कालञ्च पतिकंखामि याव पस्सुपतु जनो ॥

[यह मेरा अधिष्ठान था, यह मेरे मन में था; और यह (तुम्हारा) कहना भी हृदय में रख लिया। मैं समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जबकि लोग सो जाएँ।]

अट्ठितं मे मनस्मिं में जो तुम कहते हो वह पहले से मेरा संकल्प है, वह मेरे मन ही में है। **अथो मे हदये कतं** तुम्हारा वचन भी मैंने हृदय में कर लिया है। **कालञ्चपतिकङ्खामि** समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। **याव पस्सुपतु जनो** जब तक यह लोग सो जाते हैं, इन्हें नींद आ जाती है, तब तक मैं समय की

प्रतीक्षा करता हूँ। नहीं तो हल्ला हो जायेगा कि यह कुत्ता भाग रहा है। इस-लिए रात को जब सब सो जाएँगे चमड़े की डोरी खाकर भाग जाऊँगा।

———

यह कहकर वह लोगों के सो जाने पर चमड़े की डोरी खा, पेट भर कर, भागा और अपने स्वामी के ही घर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का कुत्ता इस समय का कुत्ता है। पण्डित पुरुष तो मैं ही था।

२४३, गुत्तिल जातक

"सत्ततन्तिं सुमधुरं..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षुओं ने देवदत्त से पूछा—आयुष्मान् देवदत्त! सम्यक् सम्बुद्ध तेरे आचार्य हैं। तूने सम्यक् सम्बुद्ध के कारण तीनों पिटक सीखे, चारों ध्यान प्राप्त किये, अब आचार्य का विरोधी बनना उचित नहीं। देवदत्त ने आचार्य का प्रत्याख्यान करते हुए कहा—आयुष्मान श्रमण गौतम मेरे कैसे आचार्य हैं? क्या मैंने अपनी सामर्थ्य से ही तीनों पिटक नहीं सीखे हैं तथा चारों ध्यान नहीं प्राप्त किये हैं।

भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलायी—आयुष्मानों! देवदत्त अपने आचार्य का प्रत्याख्यान कर सम्यक् सम्बुद्ध का विरोधी बन महाविनाश को प्राप्त हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुक, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओं न केवल अभी देवदत्त आचार्य का प्रत्याख्यान कर मेरा शत्रु बन नष्ट होता है, पहले भी विनष्ट हुआ ही है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गन्धर्व कुल में पैदा हुआ। उसका नाम हुआ **गुत्तिल कुमार**। वह बड़े होने पर गन्धर्व-शिल्प में ऐसा पारङ्गत हुआ कि सारे जम्बूद्वीप में गुत्तिल गन्धर्व ही सब गन्धर्वों से बढ़ गया। वह स्त्री का पालन न कर अपने अन्धे मातापिता का पालन करता था।

उस समय वाराणसी निवासी बनियों ने व्यापार के लिए उज्जैनी जाकर उत्सव घोषित होने पर चन्दा करके बहुत-सा माला गन्ध विलेपन आदि तथा खाद्य भोज्य ले क्रीड़ा-स्थान पर इकट्ठे हो कहा कि वेतन देकर एक गन्धर्व को लाओ। उस समय उज्जैनी में मूसिल नामक ज्येष्ठ गन्धर्व था। उन्होंने उसे बुलवाकर अपना गन्धर्व बनाया।

मूसिल वीणा भी बजाता था। उसने वीणा को स्वर चढ़ाकर बजाया। गुत्तिल गन्धर्व के गन्धर्व से परिचित उन लोगों को मूसिल का बजाना चटाई खुजलाने जैसा प्रतीत हुआ। कोई भी कुछ न बोला। उन्होंने अपनी प्रसन्नता न प्रकट की। मूसिल ने उनकी प्रसन्नता न देखी तो सोचा—मालूम होता है मैं बहुत तीखा बजाता हूँ। उसने मध्यम स्वर चढ़ा मध्यम स्वर से बजाया। वे तब भी उपेक्षावान् ही रहें। उसने सोचा—मालूम होता है यह कुछ नहीं जानते। स्वयं भी कुछ न जानने वाला बन उसने वीणा के तारों को ढीला कर बजाया। उन्होंने तब भी कुछ न कहा।

मूसिल बोला—भो व्यापारियों! क्या आप लोग मेरे वीणा-वादन से प्रसन्न नहीं होते?

"क्या तू वीणा बजाता था? हम तो समझते रहे कि तू वीणा को कस रहा है।"

"क्या तुम मुझसे बढ़कर आचार्य को जानते हो? अथवा अपने अज्ञान के कारण प्रसन्न नहीं होते हो?"

"वाराणसी में जिन्होंने गुत्तिल गन्धर्व का वीणा-वादन सुना है उन्हें तुम्हारा वीणा बजाना ऐसा ही लगता है जैसे स्त्रियाँ बच्चों को सन्तुष्ट कर रही हों।"

"अच्छा, तो आपने जो खर्चा दिया है उसे वापिस लें। मुझे यह नहीं चाहिए। लेकिन हाँ, वाराणसी जाते समय मुझे साथ लेकर जाएँ।"

उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। जाते समय उसे साथ वाराणसी ले गये। वहाँ 'यह गुत्तिल का निवास स्थान है' बताकर अपने-अपने घर चले गये।

मूसिल ने बोधिसत्व के घर में प्रवेश कर वहाँ टँगी हुई बोधिसत्व की बहुत ही अच्छी वीणा देख उतारकर बजाई। बोधिसत्व के माता-पिता अन्धे होने

के कारण उसे न देख सके। वे समझे चूहे वीणा खा रहे हैं। इसलिए उन्होंने कहा—सू सू चूहे वीणा खा रहे हैं।

उस समय मूसिल ने वीणा रखकर बोधिसत्व के माता-पिता को प्रणाम किया। उन्होंने पूछा—"कहाँ से आया ?"

"उज्जेनी से आचार्य के पास शिल्प सीखने आया हूँ।"

"अच्छा।"

"आचार्य कहाँ हैं ?"

"ताता ! बाहर गया है। आज आ जाएगा।"

यह सुन मूसिल वहीं बैठ गया। बोधिसत्व के आने पर, उसके द्वारा कुशल समाचार पूछे जा चुकने पर उसने अपने आने का कारण कहा। बोधिसत्व अङ्गविद्या के जानकार थे। वे जान गये कि यह सत्पुरुष नहीं है। उन्होंने अस्वीकार किया—तात ! जा तेरे लिए शिल्प नहीं है।

मूसिल ने बोधिसत्व के माता-पिता के चरण पकड़े। उन्हें अपनी सेवा से सन्तुष्ट कर उसने उनसे याचना की कि मुझे शिल्प सिखलवा दें। बोधिसत्व ने माता-पिता के बारबार कहने पर उनकी आज्ञा का उल्लंघन न कर सकने के कारण उसे शिल्प सिखा दिया।

वह बोधिसत्व के साथ राजदरबार जाता। राजा ने उसे देखकर पूछा—आचार्य ! यह कौन है ?

"महाराज ! यह मेरा शिष्य है।"

वह शनैः शनैः राजा का विश्वासी हो गया। बोधिसत्व ने बिना कुछ छिपाए अपना जाना सारा शिल्प सिखाकर कहा—तात ! शिल्प समाप्त हो गया। उसने सोचा—मैंने शिल्प सीख लिया। यह वाराणसी नगर सारे जम्बूद्वीप में श्रेष्ठ नगर है। और आचार्य भी बूढ़े हो गये हैं। मुझे यहीं रहना चाहिए। उसने आचार्य से कहा—आचार्य ! मैं राजा की सेवा करूँगा। आचार्य बोला—अच्छा तात ! मैं राजा से कहूँगा। उसने राजा से जाकर कहा—"महाराज ! हमारा शिष्य देव की सेवा में रहना चाहता है। उसको जो देना हो, जानें।"

राजा बोला—"आपको जितना मिलता है, आपके शिष्य को उसका आधा

मिलेगा।" उसने मूसिल को वह बात कही। मूसिल बोला—"मुझे आपके बराबर ही मिलेगा तो सेवा करूँगा, नहीं मिलेगा तो सेवा नहीं करूँगा।"

"क्यों ?"

"क्या आप जितना शिल्प जानते हैं वह सब मैं नहीं जानता ?"

"हाँ जानते हो।"

"यदि ऐसा है तो मुझे आधा क्यों देता है ?"

बोधिसत्व ने राजा से कहा। राजा बोला—यदि आपके समान शिल्प दिखा सकेगा तो बराबर मिलेगा। बोधिसत्व ने राजा की बात उसे सुनायी। वह बोला—अच्छा दिखाऊँगा। राजा को कहा गया। उसने कहा—दिखाए। यह पूछने पर कि किस दिन मुकाबला होगा, उसने उत्तर दिया—महाराज आज के सातवें दिन।

राजा ने मूसिल को बुलवाकर पूछा—क्या तू सचमुच आचार्य के साथ मुकाबला करेगा ?

"देव ! सचमुच।"

"आचार्य के साथ मुकाबला करना उचित नहीं। मत कर।"

"महाराज ! आज से सातवें दिन मेरा और आचार्य का मुकाबला होने ही दें। एक दूसरे के ज्ञान को जानेंगे।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार कर मुनादी करा दी—आज से सातवें दिन आचार्य गुत्तिल तथा उनका शिष्य मूसिल राजदरबार में एक दूसरे के मुकाबले अपना शिल्प दिखाएँगे। नगर निवासी इकट्ठे होकर शिल्प देखें।

बोधिसत्व सोचने लगे—यह मूसिल आयु में कम है, जवान है। मैं बूढ़ा हो गया हूँ, शक्ति घट गयी है। बूढ़े आदमी से काम नहीं हो सकता। शिष्य हार गया तो उसमें मेरी कुछ विशेषता नहीं, लेकिन शिष्य जीत गया तो उस लज्जा से तो अच्छा है जंगल में जाकर मर जाना। वह जङ्गल में जाते; लेकिन मृत्यु-भय से लौट आते। फिर लज्जा के मारे (जंगल) में जाते।

इस प्रकार उसे आना जाना करते ही छः दिन बीत गये। तृण भर गये। रास्ता चलने का निशान बन गया। उस समय शक्र का आसन गरम हुआ। शक्र ने ध्यान लगा कर देखा तो उसे मालूम हुआ कि गुत्तिल गन्धर्व शिष्य के

भय से जंगल में महान् दुख भोग रहा है 'मुझे इसका सहायक होना चाहिए' सोच शक्र ने जल्दी से आकर बोधिसत्व के सामने खड़े हो पूछा—

:'आचार्य ! जंगल में क्यों दाखिल हुए हो ?"

"तू कौन है ?"

"मैं शक्र हूँ।"

बोधिसत्व ने उसे 'देवराज ! मैं शिष्य के भय से जंगल में दाखिल हुआ हूँ' कह पहली गाथा कही—

सत्ततन्तिं सुमधुरं रामणेय्य आवाचयिं,
सोमंरंगम्हि अव्हेति सरणम्मे होहि कोसिय ॥

अर्थ—हे देवराज ! मैंने मूसिल नाम के शिष्य को सात तारों वाली सुमधुर रमणीक वीणा जितनी मैं जानता था उतनी सिखायी। अब वह मुझे रंगमंच पर ललकारता है। हे कोसिय गोत्र (इन्द्र) ! तू मुझे शरण में ले।

शक्र उसकी बात सुन बोला—डरे मत। मैं तुम्हारा त्राण करूँगा। मैं तुम्हें शरण दूँगा। यह कह उसने दूसरी गाथा कही—

अहं ते सरणं सम्म अहमाचरियपूजको,
न तं जयिस्सति सिस्सो सिस्समाचरिय जेस्सति ॥

[सौम्य ! मैं तेरा शरणदाता हूँ। मैं आचार्य की पूजा करने वाला हूँ। शिष्य तुझे नहीं जीतेगा। आचार्य ही शिष्य को जीतेगा।]

अहं तं सरणं मैं शरण (दाता हूँ), सहायक होकर, प्रतिष्ठा देकर त्राण करूँगा। सम्म प्रिय वचन है। **सिस्समाचरिय जस्सति** आचार्य ! तू वीणा बजाता हुआ शिष्य को जीतेगा।

शक्र ने और भी कहा—"तुम वीणा बजाते हुए एक तार तोड़कर छः बजाना। वीणा से स्वाभाविक स्वर निकलेगा। मूसिल भी तार तोड़ देगा। उसकी वीणा से स्वर न निकलेगा। उसी क्षण पराजित हो जाएगा। उसका

पाराजित होना जान दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठीं और सातवीं तार भी तोड़ कर केवल वीणा-दण्ड ही बजाना । तार रहित खूँटियों से स्वर निकल कर सारी बारह योजन की वाराणसी नगरी को ढक लेगा ।" इतना कह कर शक्र ने बोधिसत्व को तीन गोटियाँ दीं और कहा—'सारे नगर पर वीणा के छा जाने पर इनमें से एक गोटी आकाश में फेंकना । तुम्हारे सामने तीन सौ अप्सराएँ उतर कर नाचने लगेंगी । उनके नाचने के समय दूसरी फेंकना । दूसरी तीन सौ उतर कर वीणा के सिरे पर नाचने लगेंगी । तब तीसरी भी फेंकना । और तीन सौ उतर कर रङ्गमण्डप में नाचेंगी । मैं भी तुम्हारे पास आऊँगा । जाएँ । डरें मत ।"

बोधिसत्त्व पूर्वाण्ह समय घर गये । राजदरबार में भी मण्डप बनाकर राजासन तैयार कर दिया गया । राजा प्रसाद से उतर सजे मण्डप में आसन के बीच में बैठा । दस हजार अलंकृत स्त्रियों तथा अमात्य ब्राह्मण राष्ट्रिक आदि ने राजा को घेर लिया । सभी नगरवासी इकट्ठे हो गये । राजाङ्गण में चक्रों के साथ चक्के तथा मञ्चों के साथ मञ्च बँध गये । बोधिसत्व भी स्नान करके लेप कर, नाना प्रकार के श्रेष्ट भोजन खा, वीणा ले, अपने लिए बिछे आसन पर बैठे । शक्र गुप्तरूप से आकश में आकर ठहरा । केवल बोधिसत्व ही उसे देख सकते थे । मूसिल भी आकर अपने आसन पर बैठा । जनता घेर कर खड़ी हुई । आरम्भ में दोनों ने बराबर-बराबर बजाया । जनता ने दोनों के बजाने से सन्तुष्ट हो हजारों हर्ष-नाद किये ।

शत्र ने आकाश में ठहर कर बोधिसत्व को ही सुनाते हुए कहा—एक तार तोड़ दें । बोधिसत्व ने भ्रमर-तार तोड़ दी । वह टूटने पर भी टूटे हुए सिरे से स्वर देती थी । देवगन्धर्व का-सा स्वर निकलता था । मूसिल ने भी तार तोड़ दी । उसमें से स्वर न निकला । आचार्य ने दूसरी, तीसरी करके सातों तारें तोड़ दीं । केवल दण्डे के बजाने से जो स्वर निकला उसने सारे नगर को छा लिया । हजारों वस्त्र फेंके गये तथा हजारों हर्षनाद हुए । बोधि-ने एक गोटी आकाश में फेंकी । तीन सौ अप्सराएँ उतर कर नाचने लगीं । इस प्रकार दूसरी और तीसरी गोटी के फेंकनें पर जैसे कहा गया उसी तरह नौ सौ अप्सराएँ उतर कर नाचने लगीं ।

उस समय राजा ने जनता को इशारा किया। जनता ने उठकर 'तू आचार्य से विरोध कर उसकी बराबरी का प्रयत्न करता है। अपनी सामर्थ्य नहीं देखता' कहते हुए मूसिल को डरा, जो-जो हाथ में आया पत्थर डण्डे आदि से चूर-चूर कर, जान मार, पैरों से पकड़ कूड़े के ढेर पर फेंक दिया। राजा ने सन्तुष्ट हो घनी वर्षा बरसाते हुए की तरह बोधिसत्व को बहुत धन दिया। नगरवासियों ने भी वैसे ही किया।

शक्र ने भी उससे विदा लेते हुए कहा--"पण्डित ! मैं सहस्र घोड़ों वाले आजानीय रथ के साथ मातली को भेजूंगा। तू सहस्र घोड़ों वाले श्रेष्ठ वैजयन्त रथ पर चढ़कर देवलोक आना।" उसके वहाँ जाकर पाण्डुकम्बलशिलातल पर बैठने पर देवकन्याओं ने पूछा—महाराज़ ! कहाँ गये थे ? शक्र ने उनको वह बात विस्तार से बतायी और बोधिसत्व के सदाचार तथा प्रज्ञा की प्रशंसा की। देवकन्याएँ बोलीं—महाराज ! हम आचार्य को देखना चाहती हैं। उसे यहाँ लाएँ।

शक्र ने मातली को बुलाकर कहा—तात ! देवप्सराएँ गुत्तिल गन्धर्व को देखना चाहती हैं। जा उसे वैजयन्त रथ में बिठाकर ला। उसने 'अच्छा' कहा और जाकर बोधिसत्व को ले आया। शक्र ने बोधिसत्व का कुशल क्षेम पूछ कहा—

"आचार्य ! देवकन्याएँ तुम्हारा गन्धर्व सुनना चाहती हैं।"

"महाराज ! हम गन्धर्व लोग शिल्प से ही जीविका चलाते हैं। मूल्य मिले तो गाऊँगा।"

"बजाएँ। मैं तुम्हें मूल्य दूंगा।"

"मुझे और मूल्य की जरूरत नहीं। यह देवकन्याएँ अपना सुकृत कहें। ऐसा होने से मैं बजाऊँगा।"

देवकन्याएँ बोलीं—"आचार्य ! हम अपने किये सुकृत पीछे सन्तुष्ट होकर कहेंगी। गन्धर्व करें।"

बोधिसत्व ने सप्ताह पर्यन्त देवताओं को गन्धर्व सुनाया। वह दिव्यवाद्य से भी बढ़ गया। सातवें दिन आरम्भ से देवकन्याओं का सुकृत पूछा।

काश्यप बुद्ध के समय एक भिक्षु को उत्तम वस्त्र देकर शक्र की परिचारिका

होकर उत्पन्न हुई, हजारों अप्सराओं से घिरी, एक उत्तम देवकन्या से पूछा—तू पूर्व जन्म में क्या कर्म करके (यहाँ) उत्पन्न हुई ?

उससे पूछा गया प्रश्न तथा उसका उत्तर विमानवत्थु[1] में आया है। वहाँ कहा है—

"अभिक्कन्तेन वण्णेन या त्वं तिट्ठसि देवते,
ओभासेन्ती दिसा सब्बा ओसधो विय तारका ॥
केन ते तादिसो वण्णो केन ते इध मिज्झति,
उप्पज्जन्ति च ते भोगा ये केचि मनसो पिया ॥
पुच्छामि तं देवि महानुभावे
मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं,
केनासि एवं जलितानुभावा
वण्णो च ते सब्बदिसा पभासति ॥"

[हे देवते ! यह जो तेरा कान्तिपूर्ण वर्ण है, यह जो सारी दिशाएँ इस प्रकार प्रकाशित हैं जैसे, औषधि तारा हो, सो यह तेरा ऐसा वर्ण किस कारण से है ? तू किस कारण से यहाँ ऋद्धिमान् है ? जो भोग तुझे प्यारे लगते हों, वह किस कारण से प्राप्त होते हैं ? हे महानुभाव देवि ! मैं तुझसे पूछता हूँ कि मनुष्य योनि में तूने क्या पुण्य कर्म किया ? किस कर्म के प्रभाव से तू प्रज्वलित प्रताप की है ? और तेरा वर्ण सब दिशाओं को प्रकाशित करता है।]

"वत्थुत्तमदायिका नारी पवरा होति नरेसु नारिसु,
एवं पियरूपदायिका मनापं दिब्बं सा लभते उपेच्च ठानं ॥
तस्सा मे पस्स विमानं अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि,
अच्छरासहस्साहं पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं ॥
तेन मेतादिसो वण्णो तेन मे इध मिज्झति,
उप्पज्जन्ति च मे भोगा ये केचि मनसो पिया,
तेनम्हि एवं जलितानुभावा
वण्णो च मे सब्बदिसा पभासति ॥"

---

१. खुद्दक निकाय का एक ग्रन्थ।

[उत्तम वस्त्र देने वाली नारी नरों में और नारियों में श्रेष्ठ होती हैं। इस प्रकार प्रिय रूप देने वाली वह (नारी) मरकर सुन्दर दिव्य स्थान को प्राप्त करती है। मेरे विमान को देखो। मैं इच्छित रूप धारण करने वाली अप्सरा हूँ। मैं हजार अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। यह पुण्य का फल है, देखो। उसी से मेरा ऐसा वर्ण है। इसी से मैं ऋद्धिमान हूँ। इसी से मन को जो प्यारे लगते हैं ऐसे भोग मुझे प्राप्त होते हैं। उसी से मैं प्रज्वलित प्रताप वाली हूँ। उसी से मेरा वर्ण सब दिशाओं को प्रकाशित करता है।]

दूसरी ने भिक्षा माँगते हुए भिक्षु को पूजने के लिए पुष्प दिये। दूसरी ने चैत्य में पञ्चङ्गुलि चिन्ह लगाने के लिए सुगन्धि दी। दूसरी ने मधुर फलमूल दिये। दूसरी ने उत्तम रस दिया। दूसरी ने काश्यप बुद्ध के चैत्य पर सुगन्धित पञ्चङ्गुलि चिन्ह लगाया। दूसरी ने रास्ते चलते भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों के घर में वास ग्रहण करने पर धर्म सुना। दूसरी ने नौका में बैठ भोजन किये भिक्षु को पानी में खड़े हो पानी दिया। दूसरी ने गृहस्थ में रह क्रोधरहित चित्त से सास ससुर की सेवा की। दूसरी ने अपने को मिले हिस्से में से भी बाँट कर ही खाया और शीलवान रहीं। दूसरी ने पराए घर में दासी होकर क्रोध-रहित रह अपने हिस्से को बाँट कर खाया। इसी से वे देवराज की परिचारिका होकर पैदा हुई।

इस प्रकार **गुत्तिलविमानवत्थु** में आई सैंतीस देवकन्याओं ने जो-जो कर्म करके वहाँ जन्म ग्रहण किया वह सब बोधिसत्व ने पूछा। उन सब ने भी अपना कर्म गाथाओं में ही कहा। यह सुन बोधिसत्व ने कहा—"मुझे बड़ा लाभ हुआ। मुझे बड़ी प्राप्ति हुई। मैंने जो यह यहाँ आकर अल्पमात्र कर्म से भी प्राप्त सम्पत्तियों की बात सुनी। अब यहाँ से मैं मनुष्यलोक जाकर दानादि कुशल कर्म ही करूँगा।" यह कह उसने यह हर्ष-वाक्य कहा—

स्वागतं वत में अज्ज सुप्पभातं सुवुट्ठितं,
यं अद्दसासिं देवतायो अच्छरा कामवण्णियो,
इमासाहं धम्मं सुत्वान काहामि कुसलं बहुं,
दानेन समचरियाय सञ्ञमेन दमेन च;
सोहं तत्थ गमिस्सामि यत्थ गन्त्वा न सोचरे॥

[आज मेरा आना शुभ है। आज का प्रभात शुभ है। आज का उठना शुभ है। आज मैंने इच्छित रूप धारण कर सकने वाली अप्सरा देवियों को देख लिया। इनसे धर्म सुन कर मैं बहुत कुशल कर्म करूँगा। दान से, समचर्या से तथा संयम के प्रताप से मैं वहाँ जाऊँगा जहाँ जाकर आदमी सोचता नहीं है।]

सप्ताह के बाद देवराज ने मातली सारथी को आज्ञा दे बोधिसत्व को रथ पर बिठा वाराणसी ही भेज दिया। उसने वाराणसी पहुँच देवलोक में जो देखा था वह मनुष्यों को बताया। उस समय से मनुष्यों ने उत्साहपूर्वक पुण्य-कर्म करना स्वीकार किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मूसिल देवदत्त था। शक्र अनुरुद्ध था। राजा आनन्द था। गुत्तिल गन्धर्व तो मैं ही था।

⊙

२४४. वीतिच्छ जातक

"यं पस्सति न तं इच्छति. . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक पलासिक परिव्राजक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसे सारे जम्बूद्वीप में कोई शास्त्रार्थ करने वाला न मिला। उसने श्रावस्ती पहुँचकर पूछा—मेरे साथ कौन शास्त्रार्थ कर सकता है? उत्तर मिला—सम्यक् सम्बुद्ध। उसने बहुत से आदमियों के साथ जेतवन पहुँच कर चारों प्रकार की परिषद को धर्मोंपदेश देते हुए तथागत से प्रश्न पूछा। शास्ता ने उसके प्रश्न का उत्तर दे उससे प्रश्न पूछा—एक (चीज) क्या है? वह उत्तर न दे सकने के कारण उठकर भाग गया। बैठी हुई परिषद बोली—भन्ते! एक ही शब्द से परिव्राजक को हरा दिया। शास्ता ने कहा—उपासकों! न केवल अभी मैंने उसको एक ही पद से हराया है, पहले भी हराया हूं।" यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी राष्ट्र में ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ। बड़े होने पर कामभोगों को छोड़ ऋषियों के प्रव्रज्या क्रम से प्रव्रजित हो दीर्घकाल तक हिमालय में रहा। वह पर्वत से उतर एक निगम-ग्राम के पास गङ्गा के मोड़ पर पर्णशाला में रहने लगा।

एक परिव्राजक को सारे जम्बूद्वीप में शास्त्रार्थ करने वाला न मिना। उसने उस निगम में पहुँच पूछा—मेरे साथ शास्त्रार्थ कर सकने वाला कोई है? पता लगा—है। वह बोधिसत्व की प्रशंसा सुन अनेक आदमियों के पास उनके निवास स्थान पर पहुँच, कुशल क्षेम पूछ कर बैठा। बोधिसत्व ने पूछा—बनगन्ध से सुगन्धित गङ्गाजल पीएगा? परिव्राजक ने शास्त्रार्थ आरम्भ करते हुए कहा—

कौन-सी गङ्गा ? बालू गङ्गा है ? जल गङ्गा है ? इधर का किनारा गङ्गा है ? अथवा उधर का किनारा गङ्गा है ? बोधिसत्व ने उत्तर दिया—परिब्राजक ! उदक, बालू, इधर के किनारे और उधर के किनारे के अतिरिक्त और गङ्गा कहाँ है ? परिब्राजक को कुछ उत्तर न सूझा । वह उठकर भाग गया । उसके भाग जाने पर बोधिसत्व ने बैठे हुए लोगों को उपदेश देते हुए यह गाथाएँ कहीं—

यं पस्सति न तं इच्छति
मञ्च न पस्सति तं किर इच्छति,
मञ्ञामि चिरं चरिस्सति
न हि तं लच्छति यं सो इच्छति ॥१॥
यं लभति न तेन तुस्सति
यं पत्थेति लद्धं हीळेति,
इच्छा हि अनन्तगोचरा
वीतिच्छानि नमो करोमसे ॥२॥

[जिसे देखता है उसकी इच्छा नहीं करता, जिसे नहीं देखता है उसकी इच्छा करता है । मैं समझता हूँ कि यह चिरकाल तक भटकेगा । जिसकी इच्छा करता है । वह इसे नहीं मिलेगा ॥१॥ जो मिलता है उससे सन्तुष्ट नहीं होता । जिसकी इच्छा करता है वह मिलने पर उसका अनादर करता है । इच्छा की गति अनन्त है । जो वितिच्छा है, उन्हें हम नमस्कार करते हैं ॥२॥

यं पस्सति जिस उदक आदि को देखता है, उसे गङ्गा नहीं मानता है । **यञ्च न पस्सति** जिस उदक आदि से रहित गङ्गा को नहीं देखता उसकी इच्छा करता है । **मञ्ञामि चिरं चरिस्सति** मैं ऐसा मानता हूँ कि यह परिब्राजक इस प्रकार की गङ्गा को खोजते हुए चिरकाल तक भटकेगा, अथवा जैसे उदक आदि से रहित गङ्गा को उसी तरह रूप आदि से रहित आत्मा को भी खोजते हुए संसार में चिरकाल तक भटकेगा । **न हि तं लच्छति** चिरकाल तक विचरते हुए भी वह जो इस प्रकार की गङ्गा वा आत्मा की इच्छा करता है उसे न कर सकेगा ।

यं लभति जो उदक वा रूप आदि मिलता है उससे सन्तुष्ट नहीं होता। **यं तत्थेपि लद्धं हीळति** इस प्रकार प्राप्त से असन्तुष्ट हो जिस-जिस सम्पत्ति को प्राप्त करता है, उस-उस को प्राप्त करके 'इससे क्या' कहकर उसका अनादर करता है, उसकी अवमानना करता है। **इच्छा हि अनन्तगोचरा** जो जो प्राप्त हो उसका अनादर कर दूसरी चीज की इच्छा करने के कारण यह इच्छा, यह तृष्णा अनन्त गति वाली है। **वीतिच्छानं नमो करोमसे** इसलिए जो इच्छा रहित बुद्ध आदि हैं उनको हम नमस्कार करते हैं।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का परिव्राजक ही इस समय का परिव्राजक है। तपस्वी तो मैं ही था।

⊙

२४५. मूलपरियाय जातक

"**कालो घसति भूतानि . . . .**" यह शास्ता ने उक्कट्ठा के पास सुभगवन में विहार करते हुए मूलपरियाय सुत्त[1] के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय तीन वेदों में पारंगत पाँच सौ ब्राह्मणों ने (बुद्ध-) शासन में प्रव्रजित हो तीनों पिटक सीख कर अभिमान में चूर हो सोचा––सम्यक् सम्बुद्ध भी तीन पिटक ही जानते हैं। हम भी जानते हैं। तब हमारा उनका क्या अन्तर है ? उन्होंने बुद्ध की सेवा में जाना छोड़ दिया। शास्ता की बराबरी के होकर घूमने लगे।

एक दिन शास्ता ने उनके पास आकर बैठे रहने के समय आठ भूमियों से सजाकर **मूलपरियाय सुत्त** का उपदेश दिया। उनकी कुछ समझ में नहीं आया। तब उनको विचार हुआ––हम अभिमान करते हैं कि हमारे समान पण्डित नहीं। लेकिन अब कुछ नहीं समझते। बुद्ध के सदृश पण्डित नहीं है। अहो बुद्ध-गुण ! उस समय से वह नम्र बन गये, वैसे जैसे सर्प के दाँत उखाड़ दिये गये हों, विष जाता रहा हो। शास्ता ने इकट्ठा में यथाभिरुचि रहकर वेशाली जा वहाँ **गोतमक** चेतिय में **गोतमकसुत्त** का उपदेश दिया। हजार लोक धातु काँप गयी। उसे सुनकर वह भिक्षु अर्हत्व को प्राप्त हुए। **मूलपरियाय** सुत्त के उपदेश के अन्त में, जिस समय शास्ता उक्कट्ठा में ही विहार करते थे, भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलायी––आयुष्मानों ! अहो बुद्धों की शक्ति ! वे ब्राह्मण प्रव्रजित वैसे अभिमानी थे। उन्हे भगवान् ने मूलपरियाय सुत्त से मान-रहित कर दिया। शास्ता ने आकर पूछा––भिक्षुओं, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा––भिक्षुओं

---

१. मज्झिम-निकाय का प्रथम सुत्त।

न केवल अभी इन अभिमानी सिर वालों को मान रहित किया है, पहले भी किया है । इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही--

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ । बड़े होने पर तीनों वेदों में पारंगत हो प्रसिद्ध आचार्य बन पाँच सौ माणवकों को मन्त्र बंचवाता था । वे पाँच सौ (माणवक) शिल्प सीखकर, उसका अभ्यास कर सोचने लगे--'जितना हम जानते हैं, आचार्य भी उतना ही । उसमें कुछ विशेष नहीं ।' यह सोच वह अभिमान से चूर हो आचार्य के पास न जाते, उसकी सेवा सुश्रूषा न करते । एक दिन जब आचार्य बेर के वृक्ष के नीचे बैठा था, उन्होंने उसे ठगने की इच्छा से बेर के वृक्ष को नाखून से खुरच कर कहा--यह वृक्ष निस्सार है । बोधिसत्व ने यह जान कि मुझे ठग रहे हैं कहा—शिष्यों ! एक प्रश्न पूछता हूँ । उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक कहा--पूछें, उत्तर देंगे । आचार्य ने प्रश्न पूछते हुए पहली गाथा कही—

कालो धसति भूतानि सब्बानेव सहत्तना,
यो च कालघसो भूतो स भत पचनि पचि ॥

[काल सभी प्राणियों को खाता है, अपने को भी (खाता है) । जो काल को खाने वाला प्राणी है वह सब प्राणियों को जलाने वाली को जलाता है ।]

कालो पूर्वाह्न समय तथा अपराह्न समय आदि । **भूतानि** प्राणी । काल प्राणियों का चर्म मांस आदि नोच-नोच कर उन्हें नहीं खाता किन्तु उनकी आयु वर्ण बल को नष्ट कर यौवन को मर्दन कर अरोग्य का विनाश करता हुआ खाता है । इस प्रकार खाता हुआ किसी को नहीं छोड़ता। **सब्बानेव** खाता है । केवल प्राणियों को ही नहीं किन्तु **सहत्तना** अपने को भी खाता है । पूर्वाण्ह अपराण्ह तक नहीं रहताः इसी प्रकार अपराण्ह आदि भी । **यो च कालघसो**

भूतो यह क्षीणास्रव के लिये कहा गया है। वह आर्यमार्ग से भविष्य के प्रति-सन्धि-ग्रहण करने के समय को नष्ट करने वाला होने से **कालघसो भूतो** कहलाता है। **सभूत पचनिं पचि** उसने इस तृष्णा को, जो प्राणियों को अपाय में जलाती है, ज्ञानाग्नि से जला दिया, भस्म कर दिया। इसी से **भूतपचनिं पचि** कहा जाता है। पजनिं भी पाठ है। जननि पैदा करने वाली अर्थ है।

इस प्रश्न को सुनकर माणवकों में एक भी न जान सका। तब बोधिसत्व ने कहा—तुम यह मत समझो कि यह प्रश्न तीनों वेदों में है। तुम यह समझ कर कि जो मैं जानता हूँ वह सब तुम जानते हो मुझे बेर का वृक्ष बनाते हो। तुम यह नहीं जानते कि ऐसा बहुत है जिसे तुम नहीं जानते और मैं जानता हूँ। जाओ, सात दिन का समय देता हूँ। इतने समय में इस प्रश्न पर विचार करो।

वे बोधिसत्व को प्रणाम कर अपने-अपने निवासस्थान पर गये। वहाँ सप्ताह भर सोचने पर भी न उन्हें प्रश्न का आरम्भ मिला न अन्त। वे सातवें दिन आचार्य के पास गये। प्रणाम करके बैठे। आचार्य ने पूछा—भद्रमुखो ! प्रश्न समझ में आया ? वे बोले—नहीं जानते। बोधिसत्व ने फिर उनकी निन्दा करते हुए दूसरी गाथा कही—

बहूनि नरसीसानि लोमसानि ब्रहानि च,
गीवासु पटिमुक्कानि कोचिदेवेत्थ कण्णवा ॥

अर्थ—बहुत आदमियों के सिर दिखायी देते हैं। वे बालों वाले हैं। सभी बड़े-बड़े हैं। गर्दनों पर रक्खे हैं। ताड़ के फल की तरह हाथ में पकड़े हुए नहीं हैं। इन बातों में किन्हीं में आपस में भेद नहीं है। लेकिन यहाँ कोई ही **कानवाला** है। (यह अपने बारे में कहा) **कण्णवा** प्रज्ञावान्। कान का छेद तो किसको नहीं है ?

इस प्रकार उन माणवकों की निन्दा कर कि तुम लोगों को कानों का छेद मात्र ही है, प्रज्ञा नहीं है प्रश्न समझाया। उन्होंने सुनकर 'ओह ! आचार्य महान् होते हैं' क्षमा माँग नम्र हो बोधिसत्व की सेवा की।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पाँच सौ माणवक यह भिक्षु थे। आचार्य मैं ही था।

२४६. तेलोवाद जातक

"हन्त्वा झत्वा वधित्वा च...." यह शास्ता ने **वैशाली** के आश्रय **कूटगार** शाला में विहार करते समय सिंह सेनापति के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसने भगवान् (बुद्ध) की शरण जा, निमन्त्रण दे, अगले दिन मांस सहित भोजन कराया। निगण्ठों[1] ने उसे सुन कुपित हो असन्तुष्ट हो तथागत को पीड़ा पहुँचाने की इच्छा से गाली दी—श्रमण गौतम जान बूझ कर अपने लिये बनाये मांस को खाता है। भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलायी—आयुष्मानों; परिषद सहित निगण्ठनाथपुत्र 'श्रमण गौतम जान बूझ कर अपने लिए बना मांस खाता है' कह गाली देता हुआ घूमता है। इसे सुन शास्ता ने कहा—:'भिक्षुओं, न केवल अभी निगण्ठनाथपुत्र 'अपने लिए बना मांस खाने वाला' कह मेरी निन्दा करता है, उसने पहले भी की है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए। बड़े होने पर ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो निमक-खटाई खाने के लिए हिमालय से वाराणसी आ अगले दिन नगर में भिक्षा के लिए प्रवेश किया। एक गृहस्थ ने तपस्वी को तंग करने के उद्देश्य से उसे घर में बुला, विछे आसन पर बिठा मत्स्य-मांस परोसा। भोजन कर चुकने पर एक ओर बैठ कर कहा—यह मांस तुम्हारे ही लिए प्राणियों को मार कर तैयार किया गया है। यह पाप केवल हमें न लगे, तुम्हें भी लगे।

---

१. निगण्ठ = निर्गन्थ—जैन सम्प्रदाय वाले साधु।

इतना कह पहली गाथा कही—

हन्त्वा झत्वा वधित्वा च देति दानं असञ्ञतो,
एदिसं भत्तं भुञ्जमानो सा पापेन उपलिप्पति ॥

[मारकर, कष्ट देकर तथा वध करके असंयमी दान देता है। इस प्रकार के भोजन को खाने वाला पाप का भागी होता है।]

हन्त्वा प्रहार देकर झत्वा क्लेश देकर वधित्वा मारकर। देति दानं असञ्ञतो असंयमी दुश्शील ऐसा करके इस प्रकार दान देता है एदिसं भत्तं भुञ्जमानो सा पापेन उपलिप्पति इस प्रकार उद्देश्य करके बनाए हुए भोजन को खाने वाला श्रमण भी पाप से युक्त होता है।

उसे सुन बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

पुत्तदारम्पि चे हन्त्वा देति दानं असञ्ञतो,
भुञ्जमानो पि सप्पञ्ञो न पापेन उपलिप्पति ॥

[यदि असंयमी (आदमी) पुत्र तथा स्त्री को मार कर भी दान देता है; तो भी बुद्धिमान् खाने वाले को पाप नहीं लगता।]

भुञ्जमानो पि सप्पञ्ञो दूसरे मांस की बात रहे। पुत्र स्त्री को भी मार कर दुश्शील द्वारा दिए गए दान को प्रज्ञावान् क्षमामैत्री आदि गुणों से युक्त खाने वाला पाप से लिप्त नहीं होता।

इस प्रकार बोधिसत्व धर्मोपदेश कर आसन से उठ कर चले गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गृहस्थ निगण्ठनाथपुत्र था। तपस्वी तो मैं ही था।

०

२४७. पादञ्जली जातक

"अद्धा पादञ्जली सब्बे...." यह शास्ता ने जेतवन में विहरते समय लालुदायी स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन दोनों प्रधान शिष्य प्रश्नों पर विचार करते थे। भिक्षु धर्मसभा में सुन स्थविरों की प्रशंसा करते थे। परिषद में बैठे हुए लाल उदायी स्थविर ने होंठ चबाये—यह हमारे बराबर क्या जानते हैं? धर्मसभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानों, लालुदायी ने दोनों श्रावकों की निन्दा कर होंठ चबाए। शास्ता ने यह सुन कर कहा—"भिक्षुओं, न केवल अभी, पहले भी लालुदायी होंठ चबाना छोड़ और अधिक कुछ नहीं जानता था।" इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके अर्थधर्मानुशासक अमात्य हुए। राजा का पादञ्जली नाम का पुत्र मूर्ख था, आलसी था। आगे चल कर राजा मर गया। अमात्यों ने राजा का क्रिया-कर्म करके, किसे राज्याभिषिक्त करें सलाह करते हुए कहा कि राज पुत्र पादञ्जली को। बोधिसत्व ने कहा—यह कुमार मूर्ख हैं, आलसी है। परीक्षा करके इसे राज्याभिषिक्त करें। अमात्यों ने मुकदमा बना कुमार को पास बैठा मुकदमे का फैसला करते हुए ठीक फैसला किया। उन्होंने अस्वामी को स्वामी बना कुमार से पूछा—कुमार! क्या हम लोगों ने ठीक फैसला किया? उसने होंठ चबाए। बोधिसत्व ने समझा मालूम होता है कुमार पण्डित है। वह समझ गया होगा कि मुकदमे का ठीक फैसला नहीं हुआ। ऐसा मानकर पहली गाथा कही—

अद्धा पादञ्जली सब्बे पञ्ञाय अतिरोचति,
तथाहि ओट्ठं भञ्जति उत्तरिं नून पस्सति ॥

[पादञ्जली निश्चय से प्रज्ञा में सबसे बढ़कर है। इसी से होंठ चबाता है। निश्चय से इसे दूसरी बात दिखाई देती है।

निश्चय से पादञ्जली कुमार सब्बे हम पञ्ञाय अतिरोचति तथाहि ओट्ठं भञ्जति नून उत्तरिं दूसरे कारण को पस्सति।

उन्होंने दूसरे दिन भी एक मुकदमा तैयार कर उस मुकदमे का ठीक से फैसला कर पूछा—देव ! कैसे क्या यह ठीक से फैसला हुआ है ? उसने फिर भी होंठ चबाए। उसकी मूर्खता की बात जान बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

नायं धम्मं अधम्मं वा अत्थानत्थं व बुज्झति,
अञ्ञमत्र ओट्ठनिब्भोग नायं जानाति किञ्चनं ॥

[यह धर्म-अधर्म वा अर्थ-अनर्थ कुछ नहीं बूझता है। यह होंठ चबाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता है।]

अमात्यों ने पादञ्जली कुमार की मूर्खता पहचान बोधिसत्व को राज्याभिषिक्त किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पादञ्जली लालुदायी था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

⊙

२४८. किंसुकोपम जातक

"सब्बेहि किंसुको दिट्ठो...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय किंसुकोपमसुत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

चार भिक्षुओं ने तथागत के पास आ कर्मस्थान माँगा। शास्ता ने उनको कर्मस्थान कहा। वे कर्मस्थान ले अपने-अपने रात्रि के निवास स्थान तथा दिन के निवास स्थानों को गये। उनमें से एक ने छः स्पर्श-आयतनों का परिग्रहण कर अर्हत्व प्राप्त किया। एक ने पञ्चस्कन्धों का, एक ने चारों महाभूतों का, एक ने अठारह धातुओं का। उन सबने अपनी-अपनी अर्हत्व-प्राप्ति तथागत से निवेदन की। उन भिक्षुओं में से एक को शंका हुई—कर्मस्थान तो भिन्न-भिन्न हैं। निर्वाण एक है। सभी को अर्हत्व की प्राप्ति कैसे हुई? उसने शास्ता से पूछा। शास्ता बोले—भिक्षु, क्या तुझे किंसुक देखने वाले भाइयों जैसा भेद (पैदा हुआ है)? भिक्षुओं ने प्रार्थना की—भन्ते! यह बात हमें कहें। शास्ता ने पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उसके चार पुत्र थे। उन्होंने सारथी को बुलाकर कहा—सौम्य! हम किंसुक देखना चाहते हैं। हमें किंसुक वृक्ष दिखाएँ। सारथी बोला—अच्छा दिखाऊँगा। उसने चारों को एक साथ न दिखा ज्येष्ठ पुत्र को रथ में बिठा जंगल में ले जा ठूँठ की अवस्था में किंसुक दिखाकर कहा कि यह किंसुक है, दूसरे को छोटे-छोटे पत्ते निकलने के समय, तीसरे को फूल निकलने के समय और चौथे को फल निकलने पर।

आगे चलकर एक बार जब चारों भाई एक साथ बैठे थे उन्होंने बातचीत

चलाई कि किंसुक कैसा होता है ? एक बोला—जैसे जला हुआ ठूंठ। दूसरा—जैसे न्यग्रोध वृक्ष। तीसरा—जैसे मांसपेशी। चौथा—जैसे सिरीष। वे परस्पर एक दूसरे के कथन से असन्तुष्ट हो पिता के पास गये और पूछा—देव ! किंसुक कैसा होता है ? राजा ने पूछा—तुमने कैसे-कैसे बताया ? सबने अपना अपना कहने का ढंग राजा से कहा। राजा बोला—तुम चारों ने किंसुक देखा है। हाँ, केवल किंसुक दिखाने वाले सारथी से इस समय में किंसुक कैसा होता है, इस समय में कैसा होता है यह बाँट कर नहीं पूछा। उसी से शक पैदा हुआ है। यह कह पहली गाथा कही—

सब्बेहि किंसुको दिट्ठो किन्त्वेत्थ विचिकिच्छथ,
नहि सब्बेसु ठानेसु सारथी परिपुच्छितो ॥

[सभी ने किंसुक देखा है, किन्तु उसमें शंका करते हो। सभी अवस्थाओं में सारथी से नहीं पूछा।]

नहि सब्बेसु ठानेसु सारथी परिपुच्छितो सभी ने किंसुक देखा है। **तुम यहाँ क्या शंका करते हो ?** सब जगह यह किंसुक ही था किन्तु तुमने सभी अवस्थाओं में सारथी को नहीं पूछा। उसी से शंका उत्पन्न हुई है।

शास्ता ने यह बात कह कर समझाया कि भिक्षु जैसे वे चार भाई विभाग करके न पूछने के कारण किंसुक के बारे में सन्देहशील हुए, उस तरह तू भी इस धर्म में शंका करता है। यह कह अभिसम्बुद्ध होने पर दूसरी कथा कही—

एवं सब्बेहि ञाणेहि येसं धम्मा अजानिता,
ते वे धम्मेसु कंखन्ति किंसुकस्मिंव भातरो ॥

[सभी विषयों में, जो धर्म के जानकार नहीं हैं वह धर्मों के बारे में वैसे ही शंका करते हैं जैसे किंसुक के बारे में (चारों) भाई।]

जैसे वे भाई सभी अवस्थाओं में किंसुक को न देखने के कारण सन्देह-शील हुए, उसी प्रकार विपश्यना ज्ञान से जिनको सब छह स्पर्शायतन, स्कन्ध महाभूत, धातु आदि धर्म अज्ञात हैं, स्रोतापत्ति धर्ममार्ग को प्राप्त न किए रहने के कारण, ज्ञानी न हुए रहने के कारण ही (वे) उन स्पर्श आयतन आदि धर्मों में शंका पैदा करते हैं। जैसे एक ही किंसुक में चारों भाई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय वाराणसी राजा मैं ही था।

२४९. सालक जातक

"एकपुत्तको भविस्ससि . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक महास्थविर के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह एक कुमार को प्रव्रजित कर उसे कष्ट पहुँचाता रहता था । श्रामणेर ने पीड़ा न सह सकने के कारण चीवर त्याग दिया । स्थविर जाकर उसे फुसलाता—कुमारक ! तेरा चीवर तेरा ही रहेगा । पात्र भी । तेरे पास जो पात्र चीवर है वह भी तेरा ही रहेगा । आ प्रव्रजित हो । 'मैं प्रव्रजित नहीं होऊँगा' कहते हुए भी वह बार-बार आग्रह किए जाने के कारण प्रव्रजित हो गया ।

प्रव्रजित होने के दिन से फिर स्थविर उसे तंग करने लगा । उसने कष्ट न सह सकने के कारण फिर चीवर त्याग दिया । अब स्थविर के अनेक बार कहने पर भी प्रव्रजित होना स्वीकार नहीं किया । बोला—मुझे तू सहन भी नहीं करता । मेरे बिना तू रह भी नहीं सकता । जा प्रव्रजित नहीं होऊँगा ।

भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात चलायी—आयुष्मानों ! उस बच्चे का दिल अच्छा था । महास्थविर के आशय को समझ कर वह प्रव्रजित नहीं हुआ । शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओं, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओं, यह केवल अभी सुहृदय नहीं है । यह पहले भी सुहृदय ही था । एक बार उसका दोष देखकर उसे फिर ग्रहण नहीं किया ।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक गृहस्थ कुल में पैदा हुआ । बड़े होने पर धान्य बेचकर जीविका चलाने लगा ।

एक सपेरा भी एक बन्दर को सिखा, औषध ग्रहण करवा, उसे तथा सर्प को खिलाता हुआ जीविका चलाता था।

वाराणसी में उत्सव घोषित होने पर उसमें खेलने की इच्छा से उस सपेरे ने वह बन्दर उस धान्य के व्यापारी को सौंपा और कहा—इसका ख्याल रखना। उत्सव खेल, आकर सातवें दिन उस व्यापारी के पास जाकर पूछा—बन्दर कहाँ है ? बन्दर स्वामी की आवाज सुनते ही अनाज की दूकान से जल्दी से निकला। उसने बन्दर को बाँस की छड़ी से पीठ कर मारा और लेकर उद्यान गया। वहाँ उसे एक तरफ बाँधा और सो गया। बन्दर ने उसे सोया देख अपना बन्धन खोला और भाग कर आम के वृक्ष पर चढ़ गया। वहाँ उसने पका आम खाकर गुठली सपेरे के शरीर पर गिराई। सपेरे ने उठकर देखा तो सोचा कि मधुर वाणी से उसे ठग वृक्ष से उतर पकड़ूँगा। उसने उसे फुसलाते हुए पहली गाथा कही—

एकपुत्तको भविस्ससि
त्वञ्च नो हेस्ससि इस्सरो कुले,
ओरोह दुमस्मा सालक
एहि दानि घरकं वजेमसे ॥

अर्थ—तू मेरा एक पुत्रक होकर रहेगा। मेरे कुल में (भोगों का) स्वामी होकर रहेगा। इस वृक्ष से उतर। आ, अपने घर चलें। सालक ! यह नाम लेकर सम्बोधन किया है।

उसे सुनकर बन्दर दूसरी गाथा कही—

ननु मं हदयेतिमञ्ञसि
यञ्च मं हनसि वेलुयट्ठिया,
पक्कम्बवने रमामसे
गच्छ त्वं घरकं यथासुखं ॥

[निश्चय से तू मुझे हृदय से बहुत चाहता है। तभी तो मुझे बाँस की छड़ी से मारता है। अब हम पके आम्रवन में रहेंगे। तू सुखपूर्वक घर जा।]

ननु मं हदयेति मञ्ञसि निश्चय से तू मुझे हृदय में बहुत मानता है। मतलब है कि तू समझता है कि यह सुहृदय है। **यञ्च मं हनसि वेलुयट्ठिया** इतना अधिक मानता है कि बाँस की छड़ी से मारता है। इससे प्रकट करता कि इस कारण से मैं नहीं आता हूँ। इसलिए हम **इस पक्कम्बवने रमामसे गच्छ त्वं घरकं यथासुखं** यह कह कूद कर वन में चला गया।

सपेरा भी असन्तुष्ट हो अपने घर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बन्दर श्रामणेर था। सपेरा महास्थविर। धान्य का व्यापारी तो मैं ही था।

२५०. कपि जातक

"अयं इसी उपसम सञ्ञमे रतो..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ढोंगी भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसका ढोंग भिक्षुओं में प्रकट हो गया। भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानों! अमुक भिक्षु कल्याणकारी बुद्धशासन में प्रव्रजित हो ढोंग करता है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओं, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत, कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओं, यह भिक्षु केवल अभी ढोंगी नहीं है, यह पहले भी ढोंगी रहा है। इसने जब यह बन्दर था केवल आग के लिए ढोंग किया। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशीदेश में ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ। बड़े होने पर पुत्र के भागने दौड़ने में समर्थ होने पर, ब्राह्मणी के मर जाने पर पुत्र को गोद में ले हिमालय चला गया। वहाँ ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो उस पुत्र को भी तपस्वी-कुमार बना पर्णशाला में रहने लगा। वर्षा ऋतु में मूसलाधार वर्षा होने के समय एक बन्दर पीड़ित, दाँत कटकटाता हुआ, काँपता हुआ भटकता था। बोधिसत्व बड़े-बड़े लक्कड़ लाकर आग बना मञ्च पर लेटा था। उसका पुत्र भी पाँव दबाता हुआ बैठा था। वह बन्दर एक मृत तपस्वी के वल्कल वस्त्र ओढ़ पहन, एक कन्ध पर अजिनचर्म रख, बैहँगी तथा कमण्डल ले ऋषिवेष बना पर्णशाला के द्वार पर जा आग के लिए ढोंग करके खड़ा हुआ।

तपस्वी कुमार ने उसे देख 'तात! एक तपस्वी शीत से पीड़ित है। काँप रहा है। उसे यहाँ बुला। सेंक लेगा' कहा। उसने पिता से प्रार्थना करते हुए यह गाथा कही—

अयं इसी उपसमसंयमे रतो
सन्तिट्ठति सिसिरभयेन अट्टितो,
हन्द अयं पविसतु मं अगारकं
विनेतु सीतं दरथञ्च केवलं ॥

[यह ऋषि उपशमन में तथा संयम में लगा है। शीतभय से पीड़ित है। यह इस घर में प्रवेश करे और अपने शीत तथा पीड़ा को दूर करे।]

उपसमसंयमे रतो रागादि क्लेश के उपशमन में तथा शीलसंयम लगा है। **संतिट्ठति**, वह ठहरता है। **सिसिरभयेन** वायु और वर्षा से उत्पन्न शीत-भय से। **अट्टितो** पीड़ित। **पविसतु मं**, यहाँ प्रवेश करे। **केवलं** सब।

बोधिसत्व ने पुत्र की बात सुन उठकर देखते हुए बन्दर का भाव समझ दूसरी गाथा कही--

नायं इसी उपसमसंयमे रतो
कपी अयं दुमवरसाखगोचरो,
सो दूसको रोसकोचापि जम्मो
सचे वजे इमम्पि दूसये घरं।

[यह उपशमन तथा संयम में लगा हुआ ऋषि नहीं। यह वृक्षों की शाखा पर घूमने वाला बन्दर है। यह दूषित करने वाला है। यह क्रोध करने वाला है। यह नीच है। यदि घर में आये तो इस घर को भी दूषित करे।]

दुमवरसाखगोचरो वृक्षों की शाखा पर घूमने वाला। **सो दूसको रोसको चापि जम्मो** जहाँ-जहाँ जाये उस-उस जगह को दूषित करने वाला होने से **दूसक**, झगड़ने वाला होने से **रोसको**, नीच होने से **जम्मो**। **सचे वजे** यदि इस पर्णशाला में आवे, दाखिल हो तो सब जगह पाखाना पेशाब करके और आग लगा कर खराब कर दे।

यह कह कर बोधिसत्व न जली लकड़ी ले उसे डरा भगाया। वह कूद कर वन में प्रवेश कर चला ही गया। फिर उस जगह नहीं गया। बोधिसत्व ने अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर तपस्वीकुमार को कसिन-परिकर्म सिखाया। उसने अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कीं। वे दोनों ध्यान-प्राप्त हो ब्रह्मलोक परायण हुए।

शास्ता ने 'भिक्षुओं, न केवल अभी किन्तु पुराने समय से भी यह ढोंगी ही है', कह यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी हुए।

उस समय बन्दर ढोंगी भिक्षु था। पुत्र राहुल। पिता तो मैं ही था।

●